

# तर्फचिंतन 2014



**भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्**  
(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त परिषद्)  
ब्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड)  
भारत

# किसको नमन करूँ मैं भारत ?

तुझको या तेरे नदीश, गिरि, बन को नमन करूँ, मैं?

मेरे प्यारे देश! देह या मन को नमन करूँ मैं ?

किसको नमन करूँ मैं भारत? किसको नमन करूँ मैं ?

भू के मानचित्र पर अंकित त्रिभुज, यहीं क्या तू है?

नर के नभश्चरण की दृढ़ कल्पना नहीं क्या तू है?

भेदों का ज्ञाता, निगूढ़ताओं का चिर ज्ञानी है

मेरे प्यारे देश ! नहीं तू पत्थर है, पानी है

जड़ताओं में छिपे किसी चेतन को नमन करूँ मैं ?

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है

एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है

जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है

देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है

निखिल विश्व को जन्मभूमि-वंदन को नमन करूँ मैं!

खंडित है यह मही शैल से, सरिता से सागर से

पर, जब भी दो हाथ निकल मिलते आ द्वीपांतर से

तब खाई को पाट शून्य में महामोद मचता है

दो द्वीपों के बीच सेतु यह भारत ही रचता है

मंगलमय यह महासेतु-बंधन को नमन करूँ मैं!

दो हृदय के तार जहाँ भी जो जन जोड़ रहे हैं

मित्र-भाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं

घोल रहे हैं जो जीवन-सरिता में प्रेम-रसायन

खोर रहे हैं देश-देश के बीच मुँदे वातायन

आत्मबंधु कहकर ऐसे जन-जन को नमन करूँ मैं!

उठे जहाँ भी घोष शांति का, भारत, स्वर तेरा है

धर्म-दीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है

तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने आता है

किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है

मानवता के इस ललाट-वंदन को नमन करूँ मैं!



# तर्फितन-2014



**भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्**

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)  
देहरादून (उत्तराखण्ड)

### **संरक्षक**

डॉ. अश्विनी कुमार, भा.व.से.

महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्  
देहरादून

### **सम्पादक मंडल**

प्रधान सम्पादक

श्री शैवाल दासगुप्ता, भा.व.से.,  
उपमहानिदेशक, (विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

### **सम्पादक**

श्रीमती नीना खाण्डेकर, भा.व.से.,  
सहा. महा. (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

### **सहायक सम्पादक**

श्री रमाकान्त मिश्र

अनुसंधान अधिकारी (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

### **प्रकाशन**

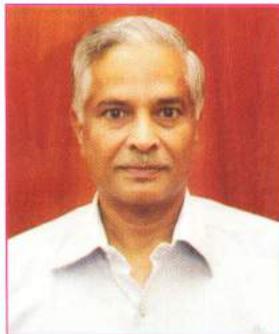
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग

विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्

डाकघर — न्यू फॉरेस्ट

देहरादून — 248 006 (उत्तराखण्ड), भारत



डॉ. अश्विनी कुमार

महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्  
देरहाडून

## संरक्षक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था है। यह परिषद् देश में वानिकी क्षेत्र में अग्रणी संस्था है जिसका कार्य वानिकी क्षेत्र में अनुसन्धान एवं शिक्षा को बढ़ावा देना है। परिषद् जहाँ एक ओर विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करती है वही देश में कियानों, वनवासियों एवं अन्य सीमांतरजनों की आजीविका में बढ़ोत्तरी, जीवन स्तर में उन्नयन के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण एवं वन क्षेत्र विस्तार के कार्य में सतत प्रयत्नशील है। अपने वैज्ञानिक एवं सामाजिक दायित्वों के निर्वहन के साथ-साथ परिषद् भारत सरकार के राजभाषा विषयक प्रावधानों के अनुपालन के लिए भी प्रतिबद्ध है।

राजभाषा दायित्वों के निर्वहन के अन्तर्गत राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से परिषद् हिन्दी में नियमित रूप से अनेक प्रकाशन प्रकाशित करती है। भारत एक बहुभाषी देश है और परिषद् के अंतर्गत 9 अनुसन्धान संस्थान एवं 4 अनुसन्धान केंद्र आते हैं जिनमें से 7 संस्थान हिन्दी भाषी राज्यों में स्थित हैं तथा 4 अहिन्दी भाषी राज्यों में। अतः परिषद् द्वारा वानिकी विषयक साहित्य अंग्रेजी एवं हिन्दी सहित भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रकाशित किया जाता है। इस प्रकार परिषद् राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार प्रयासों के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार के लिए भी निरंतर प्रयासरत है।

परिषद् द्वारा अनेक नियमित सावधिक प्रकाशन राजभाषा हिन्दी में किए जाते हैं। वार्षिक हिन्दी पत्रिका 'तर्फियतन' का प्रकाशन भी इसी प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है। यह पत्रिका वर्ष 2009 से प्रारंभ की गई और तब से यह निरंतर प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका परिषद् के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, विभिन्न तकनीकी एवं गैर तकनीकी कर्मचारियों एवं उनके परिवारों द्वारा रचित विभिन्न वैज्ञानिक एवं वानिकी लेखों, रोचक कहानियों, कविताओं इत्यादि का एक उपयोगी, रोचक एवं आकर्षक प्रकाशन है।

तर्फियतन के प्रत्येक अंक में यहीं प्रयत्न होता है कि इसके जरिए पाठकों को अच्छे एवं शानवृद्धक लेख, रोचक कहानियां एवं अच्छी कविताएं पढ़ने को मिलें। मैं आशा करता हूँ कि पत्रिका का यह अंक भी सदैव की तरह पाठकों की आशाओं पर खरा उतरेगा।

मैं इस अंक के सुरुचि पूर्ण सम्पादन और कलात्मक प्रस्तुति के लिए श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक (विस्तार), श्रीमती नीना खांडेकर, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार) एवं मीडिया एवं विस्तार प्रभाग के समस्त कर्मियों को बधाई देता हूँ।

डॉ. अश्विनी कुमार





श्री शैवाल दासगुप्ता  
उप महानिदेशक (विस्तार)  
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्  
देहरादून

## प्रधान संपादक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून के द्वारा राजभाषा नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने, हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान करने एवं हिन्दी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं का निराकरण करने के लिए तो नियमित रूप से प्रयास किए ही जा रहे हैं किंतु हिन्दी को रोकक एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने एवं उसके प्रति परिषद् के अधिकारियों, वैज्ञानिकों, कर्मचारियों एवं उनके परिवारों में जिजासा और सहजता का भाव विकसित करने का भी प्रयास रहता है।

वार्षिक हिन्दी पत्रिका 'तरुविंतन' का प्रकाशन इन्हीं लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। यह अत्यंत हर्ष की बात है कि पत्रिका के प्रति परिषद् में उत्सुकता का भाव रहता है तथा सभी वर्गों के लोग और उनके परिजन बढ़-चढ़ कर इसमें भाग लेते हैं। यह अत्यंत हर्ष एवं गर्व का विषय है कि इसमें अनेक अहिन्दी भाषी लोग भी अपनी रचनाएं प्रेषित करते हैं।

तरुविंतन के इस अंक में आप मुख्यालय सहित विभिन्न संस्थानों की विछ्ले १ वर्ष की गतिविधियों पर रिपोर्ट, वन एवं जैवविविधता पर रियो संथियों की प्रासंगिकता पर एक महत्वपूर्ण लेख सहित विभिन्न वानिकी प्रयासों पर २० लेख, चर्चित पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' के प्रकाशन के ७० वर्ष पूरे होने पर पुस्तक चर्चा और भारतीय संविधान में वन एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रावधानों पर एक लेख के साथ के साथ विभिन्न विविध विषयों पर २३ लेख एवं अनेक कविताएं और 'फ्रेंच कनेक्शन' के शीर्षक से फ्रांस के बोरबोंन राज घराने के केवल भारत में थेष रहे तंशजों पर एक महत्वपूर्ण लेख सहित अनेक ललित रचनाएं पाएंगी।

मुझे आशा है कि यह अंक भी अपनी सुखिपूर्ण रचनाओं से आपका ज्ञानवर्द्धन एवं मनोरंजन करने में सफल होगा।

श्री शैवाल दासगुप्ता





## श्रीमती नीना खांडेकर

सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार)  
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्  
देहरादून

## संपादक की कलम से...

वानिकी अनुसन्धान के लाभों को जन-जन तक पहुंचाने और वन एवं पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि लोगों तक उनकी भाषा में पहुंचा जाए। भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून इस कार्य में अहंर्निश जुटी हुई है। क्योंकि हिन्दी एक बहुत बड़े क्षेत्र में समझी और बोली जाती है अतः परिषद् का प्रयास रहता है कि हिन्दी भाषा में अधिक से अधिक कार्यक्रम किए जाएं और प्रकाशन निकाले जाएं। भारत सरकार के राजभाषा नियमों के अधीन भी परिषद् को राजभाषा के प्रचार प्रसार के कार्य करने होते हैं। इस प्रकार एक ओर जहां राजभाषा हिन्दी में कार्य को बढ़ावा देना हमारा सरकारी कर्तव्य है वहाँ दूसरी ओर देश की आधी से अधिक जनसंख्या द्वारा समझी जाने वाली भाषा में कार्य करना हमारा नैतिक और राष्ट्रीय कर्तव्य भी है।

परिषद् की वार्षिक हिन्दी पत्रिका 'तरलविंतन' की संकल्पना, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है, तरु अर्थात् 'वृक्ष' के विषय में चिंतन अर्थात् मनन, ध्यान, स्मरण है। इस प्रकार यह पत्रिका अपने सरल, ज्ञानवर्द्धक और रोचक कलेवर तथा नर्यनाभिराम साज-सज्जा से वृक्ष और पर्यावरण के प्रति धेतना को सहज ही प्रेरित करने का माध्यम बन रही है। एक ओर जहां यह प्रकाशन परिषद् के कर्मियों की सोत्साह भानीदारी व उनके राजभाषा हिन्दी से लगात को व्यक्त करती है तो दूसरी ओर पत्रिका का कलेवर उनके राजभाषा ज्ञान को समृद्ध करने में उपयोगी होता है।

पत्रिका के इस अंक में आपको परिषद् मुख्यालय एवं विभिन्न संस्थानों में हो रही राजभाषा गतिविधियों की सरित्र झलक मिलेगी तो अनेक औषधीय पौधों, मसालों इत्यादि पर उपयोगी जानकारी भी प्राप्त होगी। पर्यावरण और वन के विविध पक्षों पर परिषद् में किए जा रहे शोध के साथ-साथ अन्य विविध आयामों पर भी परिषद् के कर्मियों के ज्ञान, अनुभवों एवं चिंतन से सभी का परिचय हो सकेगा तो विविध विषयों पर सुंदर कविताएं भी आपके मनोरंजन के लिए मिलेंगी। मेरी कामना है कि अत्यंत सरल भाषा में १०० से भी अधिक लेखकों एवं सम्पादकों के सार्थक प्रयासों से सुसज्जित ७० से अधिक रचनाओं वाले इस अंक से आपको उच्चस्तरीय मनोविनोद एवं बौद्धिक संतुष्टि प्राप्त हो।

पत्रिका को इसके वर्तमान स्वरूप में लाने में इससे जुड़े सभी अधिकारियों व कर्मचारियों द्वारा उनके सराहनीय योगदान के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

श्रीमती नीना खांडेकर





## विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संरक्षक की कलम से		III
	प्रधान संपादक की कलम से		V
	संपादक की कलम से		VII

### राजभाषा

1.	परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन	श्री विवेक खाण्डेकर	3
2.	वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून की राजभाषा गतिविधियाँ		5
3.	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर में राजभाषा का प्रगामी प्रयोग	डॉ. एस. कै. शर्मा	6
4.	राजभाषा के प्रगामी प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रम की प्रगति रिपोर्ट वर्ष 2013–14		8
5.	वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियाँ	श्री शंकर शर्मा	9
6.	शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में हिन्दी पखवाड़ा	श्री कैलाश चन्द्र गुप्ता	11
7.	हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियाँ		12
8.	वन उत्पादकता संस्थान में हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन—2013		14
9.	वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान में मनाये गये हिन्दी दिवस समारोह की रिपोर्ट		16

### वानिकी

10.	जलवायु परिवर्तन तथा भारत के वन	डॉ. अश्विनी कुमार	19
11.	वन एवं जैवविविधता: रियो संधियों की प्रांसगिकता	श्री विजयराज सिंह रावत	24
12.	झूम खेती : पूर्वोत्तर हिमालय की एक पारंपरिक खेती	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, डॉ. विश्वजीत कुमार एवं श्री पवन कौशिक	27



क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
13.	पूर्वोत्तर भारत के बांस – विविधता एवं वितरण	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा,	30
14.	रोहिडा—मारवाड़ का टीक	डॉ. कृष्णा गिरी एवं श्री विजय प्रधान	
15.	शुष्क प्रदेशों का बहुपयोगी वृक्ष – कूमठा	डॉ. एन. के. बोहरा, डॉ. हेमलता एवं डॉ. सतीश शर्मा	33
16.	गूटी के माध्यम से कदम्ब के परिपक्व वृक्षों का प्रवर्धन	डॉ. संजय सिंह एवं श्री रवि शंकर प्रसाद	34
17.	वृक्षोद्यान का वनस्पति संरक्षण में महत्व	डॉ. वनीत जिष्ठा	36
18.	साल बोरर : एक विनाशकारी कीड़ा	श्री जोगिन्द्र सिंह चौहान एवं श्री धर्म देव	
19.	प्रदर्शन ग्राम परसवारा—जमतरा, जबलपुर (म.प्र.) में जैव तकनीक "वर्मीकम्पोस्टिंग" का प्रचार – प्रसार	डॉ. ममता पुरोहित, आनन्द दास, डॉ. नितिन कुलकर्णी एवं डॉ. एन. राय चौधरी	40
20.	उत्तराखण्ड क्षेत्र में काफल के पेड़ का महत्व एवं उसका कार्यिक प्रवर्द्धन – एक शोध	डॉ. ममता पुरोहित, श्रीमती नीलू सिंह,	
21.	सामुदायिक लाख बीज फार्म की अवधारणा, प्रबंधन एवं उपयोगिता	डॉ. पी. बी. मेश्राम, डॉ. ननीता बेरी एवं डॉ. नितिन कुलकर्णी	46
22.	मिजोरम के वनों में बांस पुष्टनः एक अद्भुत, विस्मयकारी और रहस्यमय घटना	डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल एवं सुश्री ज्योति काण्डपाल	49
23.	विरल होते वृक्षों के संरक्षण में वानस्पतिक उद्यान की भूमिका	डॉ. शरद तिवारी एवं श्री एस. एन. वैद्य	52
24.	व्यापारिक महत्व के वनौषधि पौधे का विनाशविहीन विदोहन आवश्यक है	श्री हंस राज शर्मा एवं श्री संदीप यादव	54
25.	मृदा की उर्वरता में मृदा के सूक्ष्म जीवों का महत्व	श्री हरी शंकर लाल, श्री रवि शंकर प्रसाद एवं डॉ. संजय सिंह	55
26.	मृदा के गुणवत्ता सूचकांक (SQI) द्वारा मृदा स्वास्थ्य का मूल्यांकन	डॉ. एस. सी. विश्वास, डॉ. प्रशांत हजारिका, 57	
27.	ताप प्रदूषण एवं वन	डॉ. ए. के. पाण्डे एवं सुश्री प्रणामी बरुवा	
28.	उत्तर भारत में बहुपयोगी वृक्ष प्रजातियों पर आधारित कृषि वानिकी	डॉ. पारुल भट्ट कोटियाल एवं डॉ. एम. के. गुप्ता	59
29.	पड़ती भूमि में कृषि वानिकी के अन्तर्गत महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की खेती एवं उपयोग	डॉ. पारुल भट्ट कोटियाल एवं डॉ. एम. के. गुप्ता	60
30.	वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून द्वारा विकसित आधुनिक वन आग नियंत्रक औजार	डॉ. ओम कुमार एवं श्री सुधीर कुमार डॉ. चरनसिंह एवं डॉ. रामबीर सिंह	61
			63
			66
			69

### विविधा

31.	जगन्नाथ रथ यात्रा के पहिये खींचता फासी का वृक्ष	डॉ. संजय सिंह एवं कुमारी प्रिया	73
32.	सिन्दूरी का अप्रतिम सौन्दर्य	डॉ. रवि शंकर प्रसाद, श्री पंकज सिंह एवं डॉ. संजय सिंह	75



क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
33.	साइलेंट स्प्रिंग—‘खामोश वसंत’—वर्तमान पर्यावरण क्रांति का पहला दस्तावेज	श्री अनूप सिंह चौहान	78
34.	कोकम ( <i>Garcinia indica</i> ): एक बहुउपयोगी पौधा	श्री रामवीर सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे	80
35.	वनस्पति एवं उनके औषधीय गुण व उपयोग	डॉ. राजीव राय	82
36.	दिव्य वृक्ष बेल (बिल्व) : एक वनौषधि	डॉ. राजेश कुमार मिश्रा एवं श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव	84
37.	पोषण एवं स्वास्थ्य के लिये रागी	सुश्री अमृता सिन्हा,	88
38.	सामाजिक व राष्ट्रीय विकास में सूचना की भूमिका	सुश्री कंचन कुमारी एवं श्री पंकज सिंह	
39.	फंफूद से बनता है – जैव-विष	श्रीमती अनुराधा भाटी	90
40.	भारतीय संविधान में वन एवं पर्यावरण संक्षरण के प्रावधन	डॉ. नवीन कुमार बोहरा,	93
41.	एलोवेरा (धृत कुमारी) – घर-घर का एक पौधा	डॉ. डी. के. मिश्रा एवं श्री के. एस. परमार	
42.	चिकित्सा शक्तियों के साथ दस रसोई मसाले	श्री नीलेश यादव	95
43.	पर्यावरण का परिचायक	आशुतोष कुमार पाण्डेय	97
44.	शैक : एक असाधारण सहजीवन	श्री रविन्द्र राज लाल एवं श्री बसंत कुमार	99
45.	नीम – सर्व रोग निवारण वृक्ष	श्री दिनेश धीमान	103
46.	मसाले एवं इसके औषधीय गुण	श्री संदीप यादव एवं श्री हंस राज शर्मा	105
47.	प्राकृतिक प्रतिअॉक्सीकारक : प्रकृति का वरदान	श्रीमती मंजु दास	107
48.	सूक्ष्म जीव एवं नियंत्रण	डॉ. एस. सी. बिश्वास,	108
49.	जस्टिसिया अधारोड़ा एल. अधारोड़ा वेसिका नीज	श्री अरबिन्द डेका एवं सुश्री प्रणामी बरुवा	
50.	केदारनाथ आपदा जून, 2013 : एक आंकलन	सुश्री हिमानी पाण्डे,	111
51.	नवप्रवर्तनशील प्रौद्योगिकियों की दुनिया	श्री लुत्फुलहक खान एवं श्री वी.के. वार्ष्य	
52.	थार प्रदेश का दुर्लभ जीव पीवणा सांप ( <i>Bungarus flaviceps</i> )	डॉ. के. पी. सिंह	113
53.	आपदा आमंत्रण—आपदा निवारण	श्री महेन्द्र सिंह	115
		डॉ. लक्ष्मी रावत	117
		सुश्री अंशु गर्ग	120
		डॉ. एस. आर. बालोच एवं डॉ. अशोक गाड़ी	123
		श्री विजय जड़धारी	124

### लालित्य

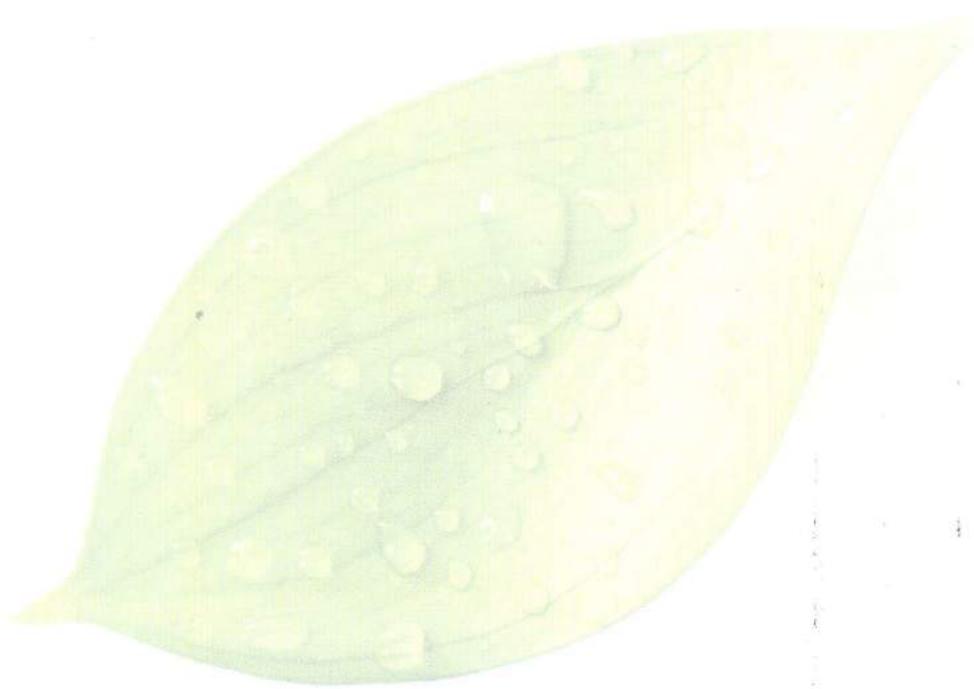
54.	फ्रेंच कनेक्शन	श्री विवेक खाण्डेकर	131
55.	स्मृति अंश	श्रीमती अर्चना जोशी	132
56.	तरुचिंतन	डॉ. आर. एस. रावत	137
57.	चिंतन	श्रीमती कला नैथानी	137
58.	त्रासदी	श्री छत्रपाल सिंह	138
59.	कितने सगे हैं मेरे	श्रीमती सुधा पाण्डेय ‘गुड़डी’	139



<b>क्र.सं.</b>	<b>विषय</b>	<b>लेखक</b>	<b>पृष्ठ</b>
60.	मिला नहीं	श्रीमती सुधा पाण्डेय 'गुड़डी'	139
61.	संकल्प	श्री प्रवीण कुमार नाग	139
62.	इंसानियत	श्री केशव सिंह मंद्रवाल	140
63.	जिंदगी क्यूँ अधूरी है ?	श्री प्रशान्त शर्मा	140
64.	हकीकत	श्री प्रताप सिंह बिछ	141
65.	महत्वाकांक्षायें	श्री नवनीत गुप्ता	141
66.	प्रकृति	श्री महेश कुमार चंचल	142
67.	वैज्ञानिक के हाथ – लकड़ी का फटटा	डॉ. शक्ति सिंह	142
68.	सागर	श्री अजय कुमार	143
69.	जीवन का संघर्ष	कुमारी अंजिपा	144
70.	आशा की किरणें	डॉ. पापोरी फुकन बोरपुजारी	145
71.	नम्रता का भाव	कुमारी रूपेन्द्रिका	147
72.	गिर अभयारण्य का अविस्मरणीय सफर	डॉ. मीता शर्मा एवं सुश्री नूपुर शर्मा	148
73.	मेरा गाँव	श्री रमेश सिंह	151
74.	भारतीय मूल की प्रकृति प्रदत्त अग्नि—तत्त्व गुण प्रधान बनस्पति—अरणि अग्निमंथः	श्री बाबूलाल शर्मा	160



# राजभाषा



## परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन

श्री विवेक खाण्डेकर

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था है और वह भारत सरकार के राजभाषा नियमों के अनुपालन हेतु प्रतिबद्ध है। इसी प्रतिबद्धता के अधीन भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा नियमों के अनुसार विभिन्न गतिविधियां यथा राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का आयोजन, हिन्दी सप्ताह का आयोजन और समय—समय पर हिन्दी के प्रयोग में बढ़ोत्तरी और इस दिशा में आने वाली समस्याओं के निराकरण हेतु प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित करती रहती है।

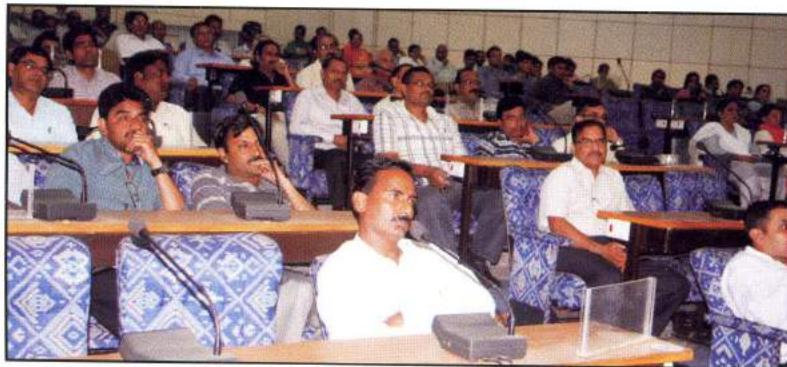
परिषद् के राजभाषा के प्रचार—प्रसार के लिए किए जा रहे प्रयासों के अंतर्गत दिनांक 16 से 23 सितम्बर 2013 तक हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया। इस सप्ताह के 5 विभिन्न प्रतियोगिताओं नामतः निबन्ध प्रतियोगिता, टिप्पण लेखन प्रतियोगिता, अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद प्रतियोगिता, कम्प्यूटर पर हिन्दी टंकण प्रतियोगिता तथा स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में कुल 57 प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया।

दिनांक 23 सितम्बर 2013 को भा.वा.अ.शि.प. के सभागार में स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता तथा समापन समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक (विस्तार) मुख्य अतिथि थे। कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्य अतिथि श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक (विस्तार) द्वारा द्वीप प्रज्ज्वलित कर किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक

(विस्तार) ने राजभाषा हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् राजभाषा हिन्दी के प्रचार—प्रसार के लिए कटिबद्ध है तथा इसके लिए वह विभिन्न प्रकार के हिन्दी से संबंधित कार्यक्रम जैसे हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशालाएं, सारांश सॉफ्टवेयर प्रशिक्षण आदि आयोजित करती रहती है जिससे दैनिक सरकारी काम—काज में वृद्धि तथा सुधार होता है। कार्यक्रम में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार वितरित किये गये। मुख्य अतिथि ने सभी विजेताओं को बधाई देते हुए कहा कि जीतने से अधिक महत्वपूर्ण भाग लेना होता है। समारोह का समापन श्री विवेक खाण्डेकर, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार) द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव के साथ हुआ। इस कार्यक्रम में लगभग 125 लोग उपस्थित थे।

राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में बढ़ोत्तरी के लिए यह आवश्यक है कि उसके प्रयोग में आने वाली कठिनाइयों का समय—समय पर निराकरण किया जाता रहे। इसी उद्देश्य से दिनांक 25 फरवरी 2014 को भा.वा.अ.शि.प. प्रमण्डल कक्ष में “राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में अभिवृद्धि में आने वाली समस्यायें एवं उनका समाधान” विषय पर एक हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया।

श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक (विस्तार), भा.वा.अ.शि.प., देहरादून, ने द्वीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का उद्घाटन किया। इस अवसर पर श्री विवेक खाण्डेकर, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.,



भा.वा.अ.शि.प., देहरादून में हिन्दी सप्ताह 2013 का समापन समारोह



श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक (विस्तार)  
प्रशिक्षण कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए

देहरादून तथा डॉ. दिनेश चमोला, राजभाषा प्रभारी, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून भी उपस्थित थे। श्री शैवाल दासगुप्ता ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि किसी भी कार्य को करने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति का होना परम आवश्यक है। उन्होंने चीन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों का उदाहरण देते हुए कहा कि इन देशों की उन्नति में उनकी मातृ भाषा का अत्यधिक योगदान है। हमें भी उनका अनुसरण करते हुए अपनी राजभाषा हिन्दी उन्नति के लिए प्रयास करना होगा। स्वागत सत्र के दौरान बोलते हुए डॉ. दिनेश चमोला ने कहा कि इस प्रकार की कार्यशालाओं का उद्देश्य मूलतः सभी के ज्ञान का पुनर्संरण कराने तथा अनुभवों को परस्पर चर्चा से उपयोगी बनाने के लिए किया जाता है। इससे पूर्व कार्यक्रम का प्रारम्भ श्री विवेक खाण्डेकर, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प., देहरादून द्वारा औपचारिक रूप से मुख्य अतिथि, मुख्य वक्ता तथा सभी सहभागियों के स्वागत से हुआ। अपने स्वागत भाषण में उन्होंने कार्यशाला की भूमिका पर बोलते हुए कहा कि अनुवाद के स्थान पर स्वतः मस्तिष्क में आने वाली



श्री विवेक खाण्डेकर, सहायक महानिदेशक (भी. व वि) प्रशिक्षण कार्यशाला के दौरान स्वागत भाषण देते हुए

शब्दावली का प्रयोग करने से भाषा भी प्रभावी बनेगी और सरल भी रहेगी। अतः किसी शब्द विशेष के हिन्दी अनुवाद के लिए रुकने की आवश्यकता नहीं है बल्कि हिन्दी में निरंतर लिखते रहने की आवश्यकता है।

तकनीकी सत्र में मुख्य वक्ता डॉ. दिनेश चमोला, राजभाषा प्रभारी, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून ने शब्दों के विभिन्न स्थानों पर उपयोग के विषय में जानकारी दी तथा राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में आने वाली कठिनाईयों को कैसे दूर किया जाए इस विषय पर कई उपयोगी तथ्यों पर प्रकाश डाला।



डॉ. दिनेश चमोला, राजभाषा प्रभारी, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून प्रशिक्षण कार्यशाला के दौरान बोलते हुए

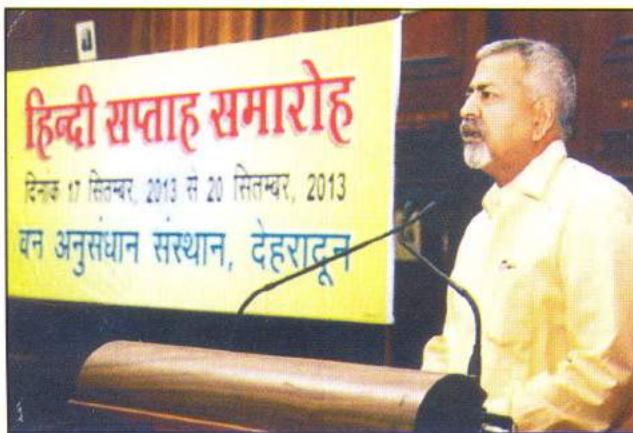
प्रशिक्षण कार्यशाला का समापन: श्री विवेक खाण्डेकर, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार) द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव के साथ हुआ। इस प्रशिक्षण कार्यशाला में भा.वा.अ.शि.प. के लगभग 50 अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने सहभागीता की।

परिषद् द्वारा मुख्यालय और उसके संस्थानों में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन में किए जा रहे प्रयासों के मूल्यांकन के लिए समय—समय पर राजभाषा निरीक्षण किए गए। परिषद् और उसके संस्थानों द्वारा नियमित रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें आयोजित की गईं। नराकास की बैठकों में भी नियमित रूप से भागीदारी की जाती है। परिषद् द्वारा हिन्दी वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' तथा हिन्दी न्यूजलैटर 'वानिकी समाचार' एवं शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा 'आफरी दर्पण' तथा उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर द्वारा हिन्दी—अंग्रेजी पत्रिका 'वन संज्ञान' का नियमित प्रकाशन किया जाता है।

# वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून की राजभाषा गतिविधियां

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

संस्थान में 17 से 20 सितम्बर 2013 तक हिन्दी सप्ताह समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। दिनांक 20 सितम्बर 2013 को हिन्दी सप्ताह समारोह के समापन का भव्य आयोजन किया गया। समापन समारोह के प्रारम्भ में सुश्री रशमा दीवान, अनुभाग अधिकारी एवं प्रभारी अधिकारी (हिन्दी) ने समारोह में उपस्थित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत किया और संस्थान में हो रही राजभाषा संबंधी गतिविधियों एवं राजभाषा के लिए निर्धारित लक्ष्यों के विषय में विस्तार से जानकारी उपलब्ध कराई। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. पी.पी. भोजवैद ने अपने सम्बोधन में कहा कि हम सब का दायित्व है कि हम संविधान की भावना के अनुरूप अपना अधिक से अधिक कार्य राजभाषा हिन्दी में करें। हिन्दी सरल व सुव्योध होने के साथ—साथ देश को एकसूत्र में पिरोने का कार्य करती है। हमें अपनी अंग्रेजी मानसिकता को छोड़ना होगा तभी हम हिन्दी का विकास कर सकेंगे। उन्होंने इस अवसर पर सभी लोगों को संकल्प दिलाया कि सभी अधिकारी व कर्मचारी संविधान के प्रति आस्था रखते हुए राजभाषा हिन्दी के विकास और उत्थान में अपना—अपना योगदान दें। निदेशक महोदय की अनुमति से स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता का आयोजन हुआ, जिसमें संस्थान कर्मियों ने अपनी—अपनी स्वरचित काव्य रचनाएं पढ़ी। इसके बाद मुख्य अतिथि द्वारा हिन्दी टिप्पणी व प्रारूप लेखन प्रतियोगिता, हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता एवं स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए गए। उक्त प्रतियोगिताओं में श्री अरविन्द जौहरी,



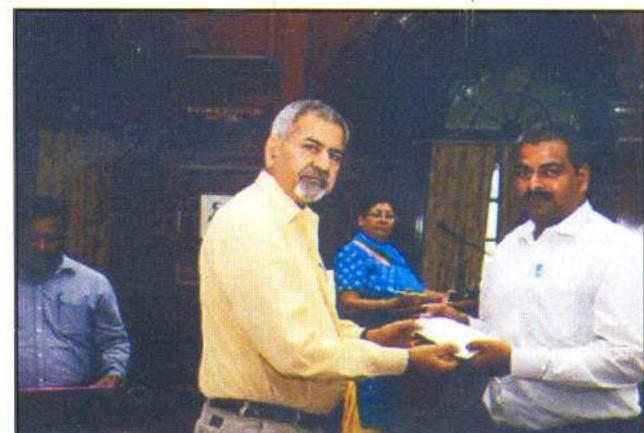
हिन्दी सप्ताह समारोह के समापन समारोह पर दर्शकदीर्घा में उपस्थित अधिकारियों/कर्मचारियों को सम्बोधित करते संस्थान निदेशक, डॉ. पी.पी. भोजवैद

सहायक, श्री विवेक गोयल, सहायक, श्रीमती संगीता भट्ट, अनुसन्धान सहायक, श्री नारायण सिंह बिष्ट, अनुसन्धान सहायक, श्री शार्देश कुमार चौरसिया, शोधछात्र, श्री आनन्द सिंह, कार्यालय परिचारक, श्री अमरेन्द्र भूषण, शोध छात्र, श्री अरविन्द कुमार, संविदाकर्मी, राखी पाल, संविदाकर्मी, श्री श्रीकान्त शर्मा, अ.क्षे. लिपिक, श्री बलवंत सिंह रावत, संविदाकर्मी, श्री संतोष कुमार, प्रोजेक्ट एसोसिएट एवं श्री अनूप, छात्र विजेता रहे। संस्थान के कुल सचिव श्री शशिकर सामंत के कुशल मार्गदर्शन में सुश्री रशमा दीवान, अनुभाग अधिकारी एवं श्री रमेश सिंह, उच्च श्रेणी लिपिक द्वारा सम्पूर्ण कार्यक्रम का कुशलतापूर्वक संयोजन किया गया।

संस्थान में समय समय पर राजभाषा सम्बन्धी बैठकों का आयोजन भी किया जाता है।

सुश्री रशमा दीवान, अनुभाग अधिकारी को भारतीय वन सर्वेक्षण विभाग द्वारा दिनांक 27 जून 2013 को उनके विभाग में आयोजित कार्यशाला में व्याख्यान देने हेतु मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया। निदेशक महोदय की स्वीकृति से सुश्री रशमा दीवान, अनुभाग अधिकारी द्वारा उक्त कार्यशाला में राजभाषा पर व्याख्यान दिया गया।

सुश्री रशमा दीवान, अनुभाग अधिकारी एवं श्री रमेश सिंह, उच्च श्रेणी लिपिक ने दिनांक 18 नवम्बर 2013 को भारतीय सर्वेक्षण विभाग, हाथीबड़कला, देहरादून में आयोजित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में भाग लिया।



हिन्दी सप्ताह समारोह में प्रतियोगिताओं को पुरस्कार प्रदान करते संस्थान निदेशक



## काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर में राजभाषा का प्रगामी प्रयोग

डॉ. एस.के. शर्मा

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर में राजभाषा हिन्दी का प्रगामी प्रयोग संघ की राजभाषा नीति का अनुपालन सुनिश्चित करने दिशा में अनुकूल रहा।

संस्थान द्वारा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाने के लिए किये गये उल्लेखनीय प्रयासों की राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय (दक्षिण), बैंगलोर कार्यालय की ओर से सरहाना की गयी तथा 'नराकास' बैंगलोर ने गौरवान्वित किया।

सहायक महानिदेशक (पर्यावरण प्रबंधन), भा.वा.आ. शि.प. मुख्यालय देहरादून द्वारा आई.डब्ल्यू.एस.टी. का राजभाषा निरीक्षण किया गया और निरीक्षण के दौरान संस्थान द्वारा संघ की राजभाषा नीति के अनुपालन की दिशा में की गयी पहल की प्रशंसा करते हुए संतोष प्रकट किया गया।

संस्थान में निदेशक महोदय की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें तय समय पर नियमित रूप से आयोजित की गयी और बैठकों में लिये गये निर्णयों पर संबंधितों की ओर से अमल किया गया। संस्थान ने बैंगलोर नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों में नियमित रूप से भाग लिया और बैठकों में दिये गये सुझावों पर अमल किया।

संस्थान में सेवारत अधिकारियों के लिए 'राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम' आयोजित कर संघ की राजभाषा नीति के अनुपालन में राजभाषा विभाग द्वारा समय—समय जारी किये निदेशों के पालन में अधिकारियों की भूमिका पर परस्पर वार्तालाप किया गया तथा अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन कर कार्यालयीन काम—काज में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग कैसे बढ़ाया जा सकता के प्रसंग में उन्हें अभ्यास करवाया गया।

संस्थान में भारत सरकार के निर्देशानुसार 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाया गया। साथ ही साथ सितम्बर माह में 14 से 28 तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह आयोजित किया गया जिसके दौरान संस्थान में हिन्दी की विविध प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयी। आयोजित प्रतियोगिताओं में संस्थान में सेवारत कर्मचारी, अधिकारी, विविध परियोजनाओं में अस्थायी

तौर तैनात परियोजना सहायक, कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता और वरिष्ठ अनुसन्धान अध्येता आदि प्रतिभागी रहे।

प्रतियोगिता के सफल प्रतिभागियों को हिन्दी पखवाड़ा समाप्ति दिवस पर सादर आमंत्रित मुख्य अतिथि महोदय माननीय श्री के.एस. रेड्डी, भा.व.से. अपर प्रधान मुख्य वन—संरक्षक, अपर प्रधान मुख्य वन—संरक्षक कार्यालय, (पर्यावरण एवं वन मंत्रालय) केन्द्रीय सदन, बैंगलोर तथा डॉ. वी. रमाकान्त, भा.व.से., निदेशक, आई.डब्ल्यू.एस.टी. एवं हिन्दी पखवाड़ा समाप्ति समारोह के अध्यक्ष महोदय के कर कमलों से पुरस्कार प्रदान किये गये।



**काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर की वर्ष 2013 की राजभाषा गतिविधियाँ**

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर ने जनवरी—मार्च 2013 से अक्टूबर—दिसम्बर, 2013 दौरान भारत

सरकार, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा समय—समय पर जारी किये दिशानिर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास किया गया।

इस दौरान संस्थान में समय—समय पर जारी किये सामान्य आदेश, परिपत्र, अनुस्मारक आदि हस्ताक्षरकर्ता अधिकारियों द्वारा द्विभाषी अर्थात् हिन्दी—अंग्रेजी में एक साथ जारी कर राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) का अनुपालन सुनिश्चित किया गया।

जनवरी—मार्च 2013 से अक्टूबर—दिसम्बर, 2013 दौरान प्रति तिमाही में एक बार संस्थान के निदेशक की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें नियमित रूप से आयोजित की गयी और बैठकों में लिये गये निर्णयों पर अमल करने हेतु संस्थान के हस्ताक्षरकर्ता अधिकारी वर्ग को अनुरोध किया गया।

बैठकों के कार्यवृत्त तथा राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की तिमाही रिपोर्ट तय समय पर भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, मुख्यालय, देहरादून, निदेशक, राजभाषा, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय दक्षिण, बैंगलौर तथा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कार्यालय बैंगलौर, के समीक्षा एवं सूचनार्थ भेज दिये गये।

जनवरी—मार्च 2013 से अक्टूबर—दिसम्बर, 2013 संस्थान में सेवारत लिपिकर्गीय कर्मचारियों के लिए दिनांक 24 जनवरी 2013 तकनीकी स्टाफ कर्मचारियों के लिए दिनांक 24 मई 2013 को हिन्दी कार्यशाला तथा वरिष्ठ अधिकारियों के लिए दिनांक 26 सितम्बर 2013 एवं दिनांक 30 दिसम्बर 2013 को राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस दौरान संस्थान के कुछ ब्रॉशर्स को अंग्रेजी से हिन्दी में रूपांतरित करवा लिया गया।

इस दौरान संस्थान ने नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बैंगलौर द्वारा आयोजित बैठकों एवं अन्य कार्यक्रमों में भाग लिया और समिति द्वारा राजभाषा के प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में दिये गये सुझावों पर अमल किया। इस दौरान, संस्थान में उच्च श्रेणी लिपिक पद पर सेवारत

श्री एम. थामा को केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, बैंगलौर केन्द्र में अक्टूबर—दिसम्बर, 2013 सत्र के तीन माह के अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के लिए मनोनीत कर अनुवाद कार्य के लिए प्रशिक्षित करवा लिया गया।

इस दौरान संस्थान ने सितम्बर 14 से 28 तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह मनाया जिसके दौरान हिन्दी की विविध प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयी और सफल प्रतियोगियों को हिन्दी पखवाड़ा समाप्ति समारोह के अवसर पर आमंत्रित मुख्य अतिथि एवं संस्थान के निदेशक महोदय के कमरकमलों से पुरस्कार प्रदान किये गये।



हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित हिन्दी प्रतियोगिता में भागी हुए प्रतियोगी



हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित हिन्दी प्रतियोगिता में सफल हुए प्रतियोगी पुरस्कार प्राप्त करते हुए



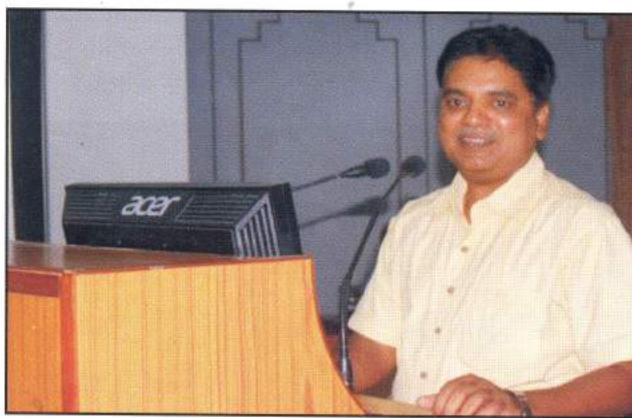
# राजभाषा के प्रगामी प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रम की प्रगति रिपोर्ट वर्ष 2013–14

उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

## संस्थान द्वारा राजभाषा के प्रचार प्रसार के लिए की जा रही गतिविधियाँ एवं वार्षिक कार्यक्रम :

**हिन्दी पखवाड़े का आयोजन :** राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा जारी दिशानिर्देशों की अनुपालन में उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 2 सितम्बर 2013 से 16 सितम्बर 2013 के दौरान "हिन्दी पखवाड़ा" में हिन्दी प्रश्न मंच प्रतियोगिता, प्रशासनिक हिन्दी भाषा ज्ञान प्रतियोगिता, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता, हिन्दी टंकण प्रतियोगिता, हिन्दी भाषण प्रतियोगिता, हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता, हिन्दी व्यवहार प्रतियोगिता, हिन्दी में तकनीकी लेखन प्रतियोगिता तथा हिन्दी कविता पाठ प्रतियोगिता इस कार्यक्रम आयोजित किये गये।

हिन्दी पखवाड़े का समापन दिनांक 16 सितम्बर 2013 को



निदेशक महोदय का उद्बोधन



काव्य पाठ प्रस्तुतिकरण



हिन्दी पखवाड़े में उपस्थित अधिकारीगण एवं कर्मचारी

संस्थान के निदेशक डॉ. यू. प्रकाशम की अध्यक्षता में काव्य पाठ प्रतियोगिता एवं पुरस्कार वितरण का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं अनुसन्धान अध्येताओं ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

**राजभाषा विभाग की हिन्दी में कार्य करने हेतु प्रोत्साहन योजना :** संस्थान में हिन्दी में कार्य करने वाले कर्मचारियों के प्रोत्साहन हेतु राजभाषा विभाग द्वारा जारी नकद पुरस्कार योजना भी लागू की गयी है। इस योजना के अन्तर्गत प्रतिवर्ष हिन्दी में किए गए कार्यों के लिए 10 कर्मचारियों को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार एवं 5 सांत्वना पुरस्कार दिए जाते हैं। वर्ष 2011–12 के दौरान संस्थान के कर्मचारियों द्वारा हिन्दी में किये गये कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर उन कर्मचारियों को नकद राशि के रूप में राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किये गये।



पुरस्कार वितरण



# वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियाँ

श्री शंकर शर्मा  
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

## हिन्दी कार्यशालायें

राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से संस्थान में तीन हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन किया गया।

संस्थान के सम्मेलन कक्ष में दिनांक 25 जून 2013 को प्रातः 11:00 बजे एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। राजभाषा कार्यान्वयन समिति (राकास) के दिनांक 22 मार्च 2013 को आयोजित 12<sup>वीं</sup> बैठक में लिए गये निर्णय अनुसार प्रत्येक प्रभाग/अनुभाग से सहायक स्तर एक एक कार्मिक को मनोनीत किया गया था। इन मनोनीत सदस्यों को राजभाषा प्रकोष्ठ की गतिविधियों के बारे में अवगत कराने के लिए हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया था। कार्यशाला के प्रारंभ में डॉ. विकास राना, कार्यकारी हिन्दी अधिकारी ने उपस्थित सभी का स्वागत किया और इसमें भाग लेने के लिए सभी को धन्यवाद दिया। इसके बाद कार्यशाला के उद्देश्य एवं व्यावहारिकता के संबंध में व्याख्या की गई। कार्यशाला में नव्य मनोनीत कर्मचारियों को राजभाषा अधिनियम एवं नियम की जानकारी दी गई। संस्थान के राजभाषा कार्यान्वयन समिति (राकास) के कार्य और इसके गठन के उद्देश्य के बारे में भी चर्चा की गई। प्रतिभागियों को कंप्यूटर के उपयोग से हिन्दी में प्रतिदिन के कार्यालयीन कार्य किस तरह सुगमता से किया जा सकता है उसके बारे में बताया गया।

कार्यशाला के द्वितीय सत्र में श्री शंकर शर्मा, कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक ने हिन्दी में नोट शीट लेखन पर एक प्रस्तुति रखी। उन्होंने सामान्य रूप से प्रभाग में ज्यादातर प्रयोग में आने वाले अंग्रेजी टिप्पणियों का हिन्दी रूपान्तर करके सभी को प्रदान किया। दौरा कार्यक्रम बनाने, वित्तीय अनुमोदन आदि लेने के लिए प्रस्तुत की जाने वाली टिप्पणी हिन्दी में किस तरह तैयार की जाती है उस पर भी चर्चा की गई। अंत में धन्यवाद ज्ञापन द्वारा कार्यशाला का समापन हुआ।

दिनांक 11 सितंबर, 2013 को “राजभाषा हिन्दी” विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में उत्तर-पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट के हिन्दी अधिकारी श्री अजय कुमार मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित थे।



कार्यशाला में उपस्थित प्रतिभागी

श्री कुमार ने अपने व्याख्यान में राजभाषा हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के अंतर को समझाते हुए राजभाषा हिन्दी के प्रति हमारे संवेदानिक उत्तरदायित्व को सरल एवं सुबोध भाषा में सभा के समक्ष रखा। कार्यशाला के उपरान्त राजभाषा ज्ञान पर एक लिखित परीक्षा आयोजित की गई।

संस्थान के सम्मेलन कक्ष में दिनांक 17 दिसंबर, 2013 को राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु कार्यालयीन कार्य हिन्दी में सुगमता से करने के लिए कंप्यूटर के उपयोग पर एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। आरंभ में कार्यशाला के



उद्देश्य एवं व्यावहारिकता के संबंध में व्याख्या की गई। कार्यशाला में कर्मचारियों को सारांश सॉफ्टवेयर तथा इसके सुविधाओं के बारे में समझाया गया। कार्यशाला के अंत में डॉ. एन. एस. बिष्ट, निदेशक, व.व.अ.सं., जोरहाट ने हिन्दी परीक्षाओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले कार्मिकों को नकद पुरस्कार से सम्मानित किया।

## हिन्दी सप्ताह समारोह—2013

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान में 9 से 16 सितंबर, 2013 तक विभिन्न कार्यक्रमों के साथ हर्षोल्लास से हिन्दी सप्ताह मनाया गया। हिन्दी सप्ताह का शुभारंभ 9 सितंबर को प्रातः उदघाटन समारोह के साथ किया गया था जिसमें संस्थान के सभी वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी और शोधार्थी उपस्थित थे। कार्यक्रम का शुभारंभ पारंपरिक तरीके से दीप प्रज्ज्वलित करके किया गया। सभा के आरंभ में संस्थान के शोधार्थियों ने श्री भुवन कछारी के निर्देशन में देश प्रेम की भावना से प्रेरित एक समूह गान प्रस्तुत किया। कार्यकारी हिन्दी अधिकारी डॉ. पी.के. वर्मा ने सर्वप्रथम डॉ. एन.एस. बिष्ट, निदेशक द्वारा देहारादून से प्राप्त हिन्दी सप्ताह का शुभकामना सन्देश सभी के समक्ष रखा। माननीय निदेशक महोदय ने अपने सन्देश में सभी को हिन्दी सप्ताह सफल बनाते हुए सभी प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए आहवान किया।

हिन्दी सप्ताह के प्रथम दिन अर्थात् दिनांक 9 सितंबर को कविता पाठ एवं निबंध लेखन प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। कविता पाठ प्रतियोगिता में प्रतिभागियों ने स्वलिखित व अन्य द्वारा लिखित कविताओं का पाठ किया। निबंध लेखन के विषय थे : क) भारत की सांस्कृतिक विविधता, ख) भ्रष्टाचार और समाज, और ग) पर्यावरण सुरक्षा में नागरिक का कर्तव्य।

हिन्दी सप्ताह के द्वितीय दिन (दिनांक 10 सितंबर) कर्मचारियों और स्कूली बच्चों के लिए आशुभाषण प्रतियोगिता आयोजित की गई। संस्थान के कर्मचारियों के बच्चों और निकटस्थ स्कूली बच्चों को इस प्रतियोगिता में आमंत्रित किया गया था। बच्चों के लिए तीन श्रेणी में, (जैसे, क) कक्षा पाँच तक, ख) कक्षा छह से आठ, और ग) कक्षा नौ से दस तक यह प्रतियोगिता आयोजित की गई थी।

हिन्दी सप्ताह के चौथे दिन अपराह्न 3 बजे सम्मेलन कक्ष में हिन्दी में वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित की गई। वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था “अलग-अलग राज्य की मांग सही है (पक्ष/विपक्ष)।” दिनांक 13 सितंबर को सभी

अधिकारी और कर्मचारी के लिए प्रश्नोत्तरी (विवज) प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता में तीन-तीन सदस्यों के कुल 9 दलों ने भाग लिया। इसका संचालन संस्थान के वैज्ञानिक श्री राजीब कुमार कलिता और डॉ. ध्रुव ज्योति दास ने किया। इसके अतिरिक्त “सभी के लिए शिक्षा” एवं “स्वास्थ्य ही परम धन है” विषय पर स्लोगन लेखन प्रतियोगिता भी आयोजित की गई थी।

हिन्दी सप्ताह का समाप्ति दिनांक 16 सितंबर, 2013 के अपराह्न आयोजित एक सांस्कृतिक कार्यक्रम के जरिए किया गया। इस सभा में संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ अरुण प्रताप सिंह, डॉ. आर. के. बोरा, श्री राजीब कुमार कलिता, श्री अरुप कुमार डेका, श्री बिजय प्रधान, अन्य वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी, शोधार्थी और स्कूली बच्चों ने भाग लिया। समारोह की अध्यक्षता समूह समन्वयक (अनु) डॉ. आर. के. बोरा ने किया। समाप्ति समारोह के प्रारंभ में सुश्री डेइजी बोरा, कनिष्ठ शोधार्थी ने वंदेमातरम गीत प्रस्तुत किया। इसके पश्चात कार्यकारी हिन्दी अधिकारी डॉ. पी. के. वर्मा ने हिन्दी दिवस पर भारत के गृहमंत्री श्री सुशील कुमार शिंदे द्वारा दिये गये हिन्दी दिवस के संदेश को सभा के समक्ष रखा। असमिया संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है “नाम-प्रसंग”, जहाँ भगवान की आराधना गीत एवं वाद के जरिए किया जाता है। इसकी एक प्रस्तुति श्री जगत बरुआ और उनके दल ने रखा। संस्थान के शोधार्थी मो. तफजिल अली और बसंत नायक ने हिन्दी कविता पाठ किया। इसके बाद श्री कल्याण हजारिका और उनके दल ने वायलिन वादन द्वारा सभा में सजीवता का संचार किया। वायलिन वादन के बाद संस्थान की ही एक बाल कलाकार कुमारी अनामिका कछारी ने जादू का प्रदर्शन किया। जादू ने सबका अच्छा मनोरंजन किया और सभी ने अनामिका कछारी की उज्जवल भविष्य की कामना की। श्री भुवन कछारी, अनुसंधान सहायक ने भी एक गज्जल प्रस्तुत की। इसके बाद उपस्थित सभासदों ने हिन्दी सप्ताह और आयोजित कार्यक्रमों के बारे में अपने विचार व्यक्त किये और इन कार्यक्रमों की सराहना की। रंगारंग कार्यक्रम के बाद सप्ताह भर आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं की घोषणा की गई और उनको पुरस्कार व प्रमाणपत्र प्रदान किये गये। सभा के सभापित डॉ. आर. के. बोरा ने अपने भाषण में राजभाषा हिन्दी में अधिक से अधिक कार्य करने के लिए जोर दिया। उन्होंने राजभाषा हिन्दी को समानीय आसन में बैठाने के लिए सबका सहयोग मांगा। कार्यक्रम के अंत में श्री शंकर शर्मा, हिन्दी अनुवादक ने सभी को धन्यवाद किया। समाप्ति समारोह का संचालन सुश्री मोनिषा नेउग ने किया।

# शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में हिन्दी पखवाड़ा

श्री कैलाश चन्द्र गुप्ता  
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

“वैज्ञानिक शोध कार्यों के परिणामों को हिन्दी में आमजन तक पहुँचाने से ही इनकी सार्थकता सिद्ध हो सकती है” ये उद्गार शु.व.अ.स., निदेशक, डॉ. त्रिलोक सिंह राठौड़ ने शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान (आफरी), जोधपुर में 13 से 27 सितम्बर तक मनाये जाने वाले हिन्दी पखवाड़ा की शुरूआत करते हुए व्यक्त किए।



डॉ. राठौड़ ने सभी से हिन्दी में अधिकाधिक कार्य करने का आह्वान किया। इस अवसर पर आफरी के हिन्दी अधिकारी ने बताया कि हिन्दी पखवाड़े के तहत विभिन्न प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। कार्यक्रम की शुरूआत में 13 सितम्बर को प्रश्न मंच प्रतियोगिता आयोजित की गई, जबकि दिनांक 16 सितम्बर को अनुवाद प्रतियोगिता एवं 17 सितम्बर को निबन्ध प्रतियोगिता आफरी कर्मियों के लिए आयोजित की गई, जिसका विषय “दरकते मानव मूल्य एवं बढ़ती हुई अपसंस्कृति” रखा गया था।

पखवाड़े के तहत 18 सितम्बर को सामान्य प्रशासनिक ज्ञान प्रतियोगिता, 20 सितम्बर को हिन्दी में वैज्ञानिक गोष्ठी सह हिन्दी कार्यशाला, 23 सितम्बर को हिन्दी टंकण



प्रतियोगिता एवं 25 सितम्बर को कामकाजी हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता आयोजित की गई। हिन्दी पखवाड़े का समापन 27 सितम्बर को स्वरचित काव्यपाठ से हुआ। वैज्ञानिक गोष्ठी में श्री कुम्हेर सिंह परमार, श्रीमती संगीता त्रिपाठी एवं डॉ. एन. के. बोहरा ने अपने पत्रों का वाचन किया। इस अवसर पर हिन्दी अधिकारी श्री कैलाश चन्द्र गुप्ता ने राजभाषा नियमों एवं क्रियान्वयन पर प्रकाश डाला।

दिनांक 27 सितम्बर 2013 को हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में हिन्दी के सेवानिवृत्त प्रोफेसर डॉ. नन्दलाल कल्ला ने बताया कि हिन्दी को राजभाषा ही नहीं राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है इसके लिए हिन्दी में कार्य करने वालों को हर स्तर पर प्रयास करना चाहिए। डॉ. कल्ला ने बताया कि हिन्दी विश्व के 153 देशों के विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है तथा इसमें 7 लाख से अधिक शब्द हैं। इस प्रकार यह विश्व की सबसे समृद्ध भाषा है। अन्य देशों में सभी कार्य उनकी राष्ट्रीय भाषा में होता है जबकि हमारे देश में आज भी इसके विकास के लिए हिन्दी सप्ताह एवं पखवाड़ा मनाया जाता है। इस हेतु आवश्यकता है कि हम अपनी मनोवृत्ति बदलें तथा हर स्तर पर हिन्दी में कार्य करने का प्रयास करें। इस अवसर पर शु.व.अ.स. निदेशक, डॉ. टी. एस. राठौड़ ने बताया कि शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान द्वारा विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा विस्तार गतिविधियों में हिन्दी में कार्य हो रहा है। डॉ. राठौड़ ने हिन्दी में शोध पत्रों के प्रकाशन, विभिन्न सेमिनारों आदि में हिन्दी में कार्यकरने के लिए हर सम्भव सहायता प्रदान करने का आश्वासन दिया।

समारोह में शु.व.अ.स. के समूह समन्वयक (अनुसन्धान) श्री माना राम बालोच ने वैज्ञानिकों से अधिकाधिक हिन्दी में कार्य करने का आह्वान किया तथा हिन्दी में कार्य करने वालों के लिए अधिकाधिक प्रोत्साहन देने की आवश्यकता बताई। आफरी के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. एस. आई. अहमद तथा आफरी के सेवानिवृत्त वरिष्ठ वैज्ञानिक श्री सी.जे.के.एस.के. इमेन्युएल ने भी हिन्दी में कार्य करने तथा इस हेतु हर स्तर पर प्रयास करने की आवश्यकता बताई।



# हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियां

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

भारत में हिन्दी भाषा अधिकांश लोगों द्वारा पारस्परिक व्यवहार में प्रयुक्त की जाती है। हिन्दी के इस महत्व को देखते हुए भारतीय संविधान में इसे संघ सरकार की राजभाषा का दर्जा दिया गया है। राजभाषा हिन्दी में सरकारी कामकाज करने से सरकार और जनता के बीच परस्पर विश्वास बढ़ता है, जो कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को मूर्त रूप देने में अत्यंत आवश्यक है।

आज वैश्वीकृत और उदारीकृत अर्थव्यवस्था ने भाषाओं के महत्व को और अधिक उजागर कर दिया है, हिन्दी भी विश्व की कुछ प्रमुख भाषाओं में से एक है। इसलिए भारत को जानने—समझने वालों के अलावा आज व्यापार और वाणिज्य क्षेत्र के लोग भी हिन्दी भाषा सीख रहे हैं। ऐसे दौर में हमारे लिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दें, इससे हम सभी अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

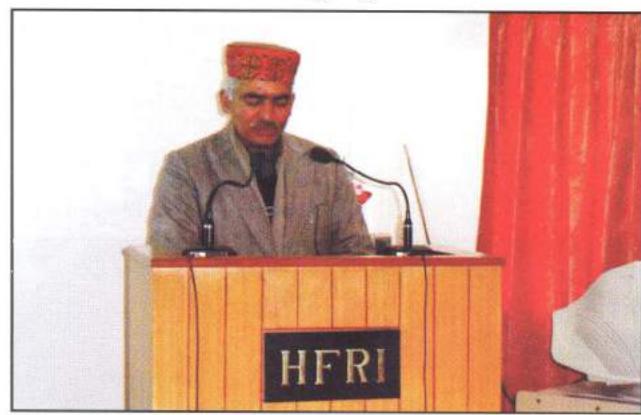
संस्थान द्वारा अप्रैल, 2013 से दिसम्बर, 2013 तक हिन्दी में 'क' क्षेत्र के लिए जारी पत्रों की प्रतिशतता 95.45 'ख' क्षेत्र के लिए 84.61 एवं 'ग' क्षेत्र के लिए 87.68 रही। इसी तरह मिसलों पर लिखी गई टिप्पणीयों का प्रतिशतता भी 82.33 रही, जो कि राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित लक्ष्यों के लगभग करीब है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी फाईलों के शीर्षक हिन्दी या द्विभाषीय व रजिस्टरों की सभी प्रविष्टियां संस्थान द्वारा हिन्दी में ही की जा रही हैं।

**संस्थान द्वारा दिनांक 16 सितम्बर 2013 को आयोजित "हिन्दी दिवस" एवं "हिन्दी पखवाड़े" पर महत्वपूर्ण एवं संक्षिप्त रिपोर्ट**

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में दिनांक 16 सितम्बर 2013 को "हिन्दी दिवस" मनाया गया। इस अवसर पर संस्थान के अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ करते हुए संस्थान के नामित हिन्दी अधिकारी, श्री गोपाल सिंह ठाकुर, उप अरण्यपाल ने संस्थान के निदेशक महोदय, समूह समन्वयक (अनुसंधान), वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए

"हिन्दी दिवस" के प्रचार—प्रसार के लिए एक प्रस्तुति का आयोजन किया, जिसमें राजभाषा हिन्दी प्रसार के महत्वपूर्ण पहलुओं पर सुझाव दिये और कहा कि हम सभी भारतवासियों को "हिन्दी दिवस" के अवसर पर राजभाषा हिन्दी को प्रसारित एवं प्रचारित करने का प्रण लेना चाहिए। उन्होंने राजभाषा अधिनियम व नियमों के बारे में भी अवगत करवाया। कम्प्यूटर पर हिन्दी में कार्य करने के लिए एक प्रशिक्षण/प्रदर्शनी की प्रस्तुति दी गई जिसमें उन्होंने कम्प्यूटर पर यूनिकोड सॉफ्टवेयर के प्रयोग से हिन्दी में कार्य करने के लिये प्रमुख सुझाव दिये और कहा कि इस सॉफ्टवेयर के प्रयोग से हम सभी सहजता से कम्प्यूटर पर हिन्दी में कार्य कर सकते हैं, केवल आवश्यता है तो सिर्फ इसे अपने रोजमर्रा के जीवन में लागू करने की तथा इसे अपनाने की।

इस अवसर पर संस्थान के अनुसंधान सहायक, श्री ज्वाला प्रसाद ने माननीय गृह मन्त्री, श्री सुशील कुमार शिन्दे जी का "हिन्दी दिवस" के उपलक्ष में जारी किया गया सन्देश पढ़कर सुनाया। तत्पश्चात् नामित हिन्दी अधिकारी ने निदेशक महोदय से "हिन्दी दिवस" के उपलक्ष में हिन्दी की उपयोगिता व रोजमर्रा के कार्यों को अपनाने के लिए सम्बोधन करने हेतु आग्रह किया। निदेशक, हि.व.अ.सं. ने सभी को हिन्दी भाषा की उपयोगिता के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की व समय—समय पर जारी दिशा—निर्देशों के अनुसार संस्थान का अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करने हेतु अनुरोध किया।



हिन्दी दिवस पर प्रस्तुति देते हुए संस्थान के हिन्दी अधिकारी श्री जी. एस. ठाकुर



हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में दिनांक 14 सितम्बर 2013 से 28 सितम्बर 2013 तक हिन्दी पखवाड़ा भी मनाया गया जिसके दौरान संस्थान के सभी सदस्यों द्वारा पूर्ण कार्य हिन्दी में किया गया। इस दौरान संस्थान से श्री दिनेश धीमान, आशुलिपिक, श्री जोगिन्द्र चौहान, अनुसंधान सहायक व श्री ज्वाला प्रसाद, अनुसंधान सहायक द्वारा शहर के केन्द्र सरकार के कार्यालयों में आयोजित निबन्ध लेखन प्रतियोगिता में भी भाग लिया गया, इस प्रतियोगिता में संस्थान के श्री दिनेश धीमान, आशुलिपिक ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किया।

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में 31 दिसम्बर 2013 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें कार्यालय के सभी अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक, डॉ. वी.आर.आर. सिंह, भा.व.से. ने की।

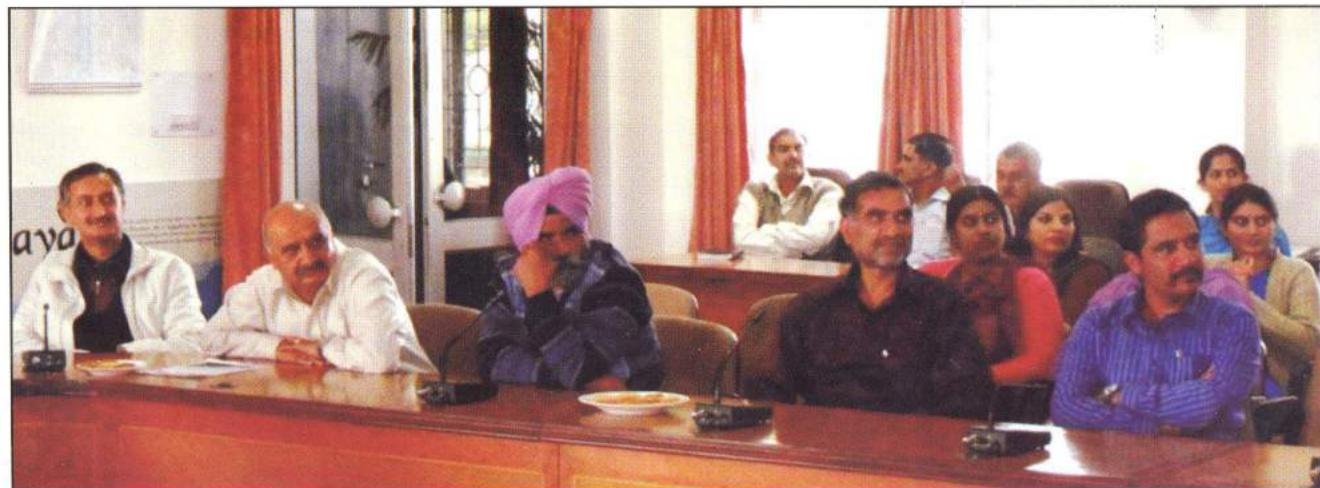
कार्यशाला का शुभारम्भ करते हुए संस्थान के नामित हिन्दी अधिकारी श्री गोपाल सिंह ठाकुर, उप अरण्यपाल ने संस्थान के निदेशक महोदय, समूह समन्वयक (अनुसंधान), वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए एक प्रस्तुति पेश की, जिसमें राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के महत्वपूर्ण पहलुओं पर सुझाव दिये। इस प्रस्तुति के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित रहे :

- संस्थान में हिन्दी में किए जा रहे कार्यों की प्रगति के बारे में उन्होंने भारत सरकार, गृह मंत्रालय द्वारा निर्धारित पत्राचार लक्ष्य वर्ष 2013 के अनुसार जो कि 'क' क्षेत्र में 100 प्रतिशत, 'ख' क्षेत्र में 100 प्रतिशत तथा 'ग' क्षेत्र में 65 प्रतिशत को पूरा करने एवं इसे बनाए रखने की सभी सेज्यादा से ज्यादा कार्य हिन्दी में करने की अपील की।

- कम्प्यूटर पर हिन्दी में कार्य करने के लिए एक प्रशिक्षण/प्रदर्शनी की प्रस्तुति दी गई जिसमें उन्होंने कम्प्यूटर पर यूनिकोड सॉफ्टवेयर/गूगल हिन्दी इनपुट के प्रयोग से हिन्दी में कार्य करने के लिये प्रमुख सुझाव दिये और कहा कि इस सॉफ्टवेयर के प्रयोग से हम सभी सहजता से कम्प्यूटर पर हिन्दी में कार्य कर सकते हैं।

तत्पश्चात् निदेशक, हि.व.अ.सं. ने हिन्दी कार्यशाला के उपलक्ष में हिन्दी की उपयोगिता व रोजमरा के कार्यों को अपनाने का आग्रह किया एवं सभी को हिन्दी भाषा की उपयोगिता के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की व समय—समय पर राजभाषा विभाग द्वारा जारी दिशा—निर्देशों के शब्दशः व उनकी भावना का अनुपालन करने पर जोर दिया। उन्होंने कार्यशाला के आयोजन के लिए संस्थान हिन्दी प्रकोष्ठ का उत्साह वर्धन भी किया।

कार्यशाला का अंत नामित हिन्दी अधिकारी द्वारा कार्यशाला में उपस्थित सभी सहभागियों का धन्यवाद करने के साथ हुआ।



हिन्दी दिवस पर उपस्थित संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारीगण



## वन उत्पादकता संस्थान में हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन-2013

वन उत्पादकता संस्थान, राँची

संघ सरकार की राजभाषा नीति के संबंध में संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति को प्रमुखता देते हुए राजभाषा हिन्दी के समग्र प्रचार-प्रसार हेतु प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी संस्थान में दिनांक 01 सितम्बर से 14 सितम्बर 2013 तक हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया।

हिन्दी पखवाड़ा के दौरान संस्थान में प्रशासनिक एवं अनुसंधान संबंधित सभी कार्यकलाप हिन्दी में किए गए एवं इस प्रयास में संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सक्रिय सहभागिता रही। इस दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों एवं कार्यालय के अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों की एक औपचारिक बैठक दिनांक 10 सितम्बर 2013 को करायी गयी। बैठक की अध्यक्षता श्री रामेश्वर दास, निदेशक, वन उत्पादकता संस्थान, राँची द्वारा की गई। बैठक में संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिकों सहित अन्य अधिकारी, कर्मचारी तथा शोधार्थीगण उपस्थित थे। श्री पंकज सिंह, अनुसंधान अधिकारी एवं हिन्दी अधिकारी, व.उ.सं., राँची ने बैठक में उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों का अभिनंदन करते हुए कहा कि हिन्दी हमारी राजभाषा है जो सहज, सरल एवं सुग्राही है अतः हमें अपने कार्यों में हिन्दी का बहुल प्रयोग करना चाहिए। इन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी एक व्यवहारिक भाषा है और हमारा कर्तव्य है कि हम इसकी व्यवहारिकता को निरन्तर बनाए रखें। इन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से आयोजित की गई बैठक में उपस्थित

अधिकारियों एवं कर्मचारियों की हिन्दी में रुची तथा संबंधित कार्यक्रमों में भागीदारी की सराहना की।

श्रीमती रुची सुसाना कुजूर, वैज्ञानिक-सी एवं प्रभारी, हिन्दी अनुभाग, व.उ.सं., राँची ने उपस्थित सभासदों को हिन्दी से संबंधित अपने विचार तथा सुझाव प्रस्तुत करने का आग्रह किया। डॉ. संजय सिंह, वैज्ञानिक-ई, व.उ.सं., राँची ने कहा कि हिन्दी जन समान्य की भाषा है और हम सभी अपने-अपने स्तर पर इसके प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। इन्होंने यह सुझाव देते हुए कहा कि जो निजी आवेदन कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा लिखे एवं जमा किए जाते हैं वे हिन्दी में लिखे जा सकते हैं। डॉ. शरद तिवारी, वैज्ञानिक-ई ने अधिकारियों एवं कर्मचारियों में हिन्दी के प्रति जागरूकता की प्रशंसा करते हुए कहा — न केवल लिखने में बल्कि बोलने में भी हिन्दी के समरूप विकास की आवश्यकता है और इसके लिए आज के आधुनिक समाज में अनेक साधन उपलब्ध हैं। जैसे— हिन्दी समाचार पत्र, हिन्दी पत्रिकाएँ, टेलिविजन, इन्टरनेट इत्यादि का सहयोग लेकर हम अपनी हिन्दी के ज्ञान को बढ़ा सकते हैं एवं अपने हिन्दी शब्दकोश का विस्तार कर सकते हैं। इसी क्रम में डॉ. ए. के. पाण्डेय, वैज्ञानिक-एफ, व.उ.सं., राँची ने भी हिन्दी के समग्र प्रचार-प्रसार पर बल देते हुए उपस्थित सदस्यों के समक्ष अपने सुझाव प्रस्तुत किए। हिन्दी जन संपर्क की भाषा है। संस्थान में अनुसंधान संबंधी विषय बहुधा जन-साधारण से जुड़े होते हैं और कृषि एवं वन से संबंधित वैज्ञानिक तकनीकों



को विकसित कर जन-साधारण तक पहुँचाना संस्थान के उद्देश्यों में से एक है। अतः यदि जन-साधारण के साथ हिन्दी में संपर्क स्थापित किया जाए तो वह कहीं ज्यादा प्रभावी सिद्ध होगा। अपने अंदर की हिचकिचाहट को समाप्त कर अधिकाधिक हिन्दी शब्दों का प्रयोग करने से व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक रूप से हिन्दी का विकास उन्नति की ओर अग्रसर हो सकेगा।

संस्थान में हिन्दी की वर्तमान स्थिति एवं हिन्दी में हो रही गतिविधियों एवं कार्यकलाप का वार्षिक ब्योरा श्री आशुतोष कुमार पाण्डेय, सहायक, व.उ.सं., राँची द्वारा प्रस्तुत किया गया। बैठक में यह निर्णय लिया गया कि हिन्दी पखवाड़ा के दौरान विभिन्न प्रतियोगितायों का आयोजन किया जाएगा। इसी क्रम में दिनांक 11 सितम्बर 2013 को हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता आयोजित करने का निर्णय लिया गया। उन्होंने परिषद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका "तरुचिंतन" में प्रकाशन हेतु काव्य, लेख, एवं अन्य सामग्री की रचना करने के लिए उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों से आग्रह किया ताकि हिन्दी में उनकी निरंतरता बनी रहे।



निर्णयानुसार दिनांक 11 सितम्बर 2013 को संस्थान के सभा कक्ष में हिन्दी निबंध लेखन प्रतियोगिता का सफल आयोजन किया गया (निबंध का विषय था – "पर्यावरण संरक्षण में वन का महत्व")। इसमें सभी अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। दिनांक 13 सितम्बर 2013 को पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन किया गया। श्रेष्ठ तीन निबंधों का चयन करके क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। महानिदेशक, भारतीय वानिकी एवं शिक्षा परिषद द्वारा हिन्दी भाषा में कार्य करने वालों को प्रोत्साहित करने हेतु उनके द्वारा हिन्दी में किये गए वर्षवार कार्यों के आधार पर हिन्दी पखवाड़े के दौरान उनके उत्कृष्ट कार्य हेतु



पुरस्कार तथा प्रशस्ति पत्र दिए जाने के निर्णयानुसार संस्थान के श्री अरविंद कुमार, वैज्ञानिक-सी एवं श्री आशुतोष कुमार पाण्डेय, सहायक का चयन कर पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

उपस्थित सदस्यों को संबोधित करते हुए श्री रामेश्वर दास, निदेशक, व.उ.सं., राँची ने अपने संबोधन में हिन्दी में हो रही गतिविधियों एवं कार्यकलापों की सराहना की और कार्यालय के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दी के प्रचार-प्रसार में उनकी सक्रिय भागीदारी एवं योगदान के लिए बधाई दी। इन्होंने राजभाषा हिन्दी को प्रतियोगिताओं तक सीमित रखने के बजाय संस्थान के शैक्षणिक गतिविधियों में शामिल करते हुए इसके विस्तार पर जोर दिया। इन्होंने संतोष प्रकट करते हुए कहा कि विगत वर्षों में कार्यालय स्तर पर हिन्दी के प्रयोग में निरंतर वृद्धि हुई है। साथ ही हिन्दी में अपनी कार्यक्षमता को और अधिक बढ़ाने के लिए सभी को आह्वान किया।



अंत में श्रीमती रुबी सुसाना कुजूर, वैज्ञानिक-सी एवं प्रभारी, हिन्दी अनुभाग, व.उ.सं., राँची ने धन्यवाद ज्ञापन करते हुए हिन्दी के प्रति लगन बनाये रखने पर जोर दिया।



## वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान में मनाये गये हिन्दी दिवस समारोह की रिपोर्ट

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर राजभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए निरन्तर प्रयास करता आ रहा है। राजभाषा के प्रयोग में निरन्तरता लाने के लिए सभी कर्मचारियों को फाइलों में राजभाषा का प्रयोग करने का निर्देश दिया गया है और फाइलों में प्रयोग किये जाने वाले द्विभाषिक टिप्पणियों की सूची सभी कर्मचारियों को दी गई। संस्थान में नियमित रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति का आयोजन किया जाता है एवं नराकास, कोयम्बटूर की बैठकों में संस्थान की नियमित भागीदारी रहती है।

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर में हिन्दी दिवस पर हिन्दी पखवाड़ा 20–27 सितम्बर तक मनाया गया। इस सिलसिले में सारांश साप्टवेयर की सहायता से हिन्दी टंकण प्रतियोगिता आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में सभी अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों ने उमंग-उत्साह से भाग लिया। हिन्दी दिवस पखवाड़ा का समापन समरोह 27 सितम्बर 2013 को मनाया गया। इस समारोह में सभी ने हर्षोल्लास से भाग लिया।

इस कार्यक्रम में आयकर विभाग, कोयम्बटूर के आयकर आयुक्त श्री डॉ. बी. मणिवाल राजू भा.व.से. मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। इस कार्यक्रम में सर्वप्रथम डॉ. बी. गुरुदेव सिंह, हिन्दी समिति के अध्यक्ष ने सभी का स्वागत किया। उसके बाद डॉ. वि.कु.वा. बाचपई, हिन्दी नोडल



हिन्दी दिवस समारोह में सभा उपस्थित अधिकारी एवं कर्मचारी

अधिकारी ने सभी के समक्ष हिन्दी वार्षिक रिपोर्ट पेश किया। उसके बाद श्री आर. एस. प्रशान्त, भा.व.से., विभागीय प्रमुख ने हिन्दी वार्षिक के महत्व पर सुन्दर भाषण प्रस्तुत किया। उस भाषण में उन्होंने कहा कि हिन्दी को ही राजभाषा क्यों और कब बनाया गया ? हिन्दी को ही अधिक महत्व क्यों दिया जा रहा है ? इसका कारण बताते हुए कहा कि हिन्दी के प्रयोग में सभी को ध्यान देना चाहिए। उसके बाद समूह सामान्य सहायक के द्वारा अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत किया गया जिसमें उन्होंने जीवन में हिन्दी एवं अन्य भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका पर सुन्दर भाषण दिये।

हिन्दी दिवस मनाने का मुख्य उद्देश्य राजभाषा के प्रति लोगों की रुचि बढ़ाना और उसके महत्व के प्रति जागृत करना ही है। इसी उद्देश्य से हमारे कुछ कर्मचारियों ने भी मंच पर आकार हिन्दी में भाषण दिये जिसमें हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए अनेक सुझाव दिये।

प्रतियोगिताओं में विजय हुए विजेताओं को मुख्य अतिथि ने पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया और प्रोत्साहित भी किया। उसके बाद मुख्य अतिथि ने अपने कमल वचनों से सभी को हिन्दी के महत्व का ज्ञान कराया और हिन्दी के कार्यान्वयन को और आगे बढ़ाने के लिए सभी को प्रोत्साहित करने के साथ आगे की शुभ कामनाएं भी दी। अन्त में श्रीमती पूंगोदै कृष्णन, हिन्दी अनुवादक ने सभी को धन्यवाद देकर इस कार्यक्रम को सफल रीति से सम्पन्न किया।



मुख्य अतिथि का भाषण



श्री टी. पी. रघुनाथ, भा.व.से.  
का भाषण

# वानिफी





## जलवायु परिवर्तन तथा भारत के वन

डॉ. अश्विनी कुमार

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

### प्रस्तावना

वानिकी क्षेत्र, वैश्विक कार्बनडाइआक्सीड उत्सर्जन में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह वर्तमान या संभावित उत्सर्जन को कम करने का सुअवसर प्रदान करता है और साथ ही वातावरण में संचित पूर्व उत्सर्जन को दूर करके उसे मृदा, वनस्पति तथा काश्ठ उत्पादों में समाहित करता है। इतना ही नहीं, भारत में वानिकी क्षेत्र सामाजिक-आर्थिक पद्धतियों से जुड़ा हुआ है। खासकर वनों में निवास करने वालों, वन आश्रितों तथा ग्रामीण समुदायों के लिए वानिकी क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है। अंततः ग्रीन हाउस गैसों की वृद्धि होने और उनके वातावरण में समाहित होने से जलवायु परिवर्तन होना स्वभाविक है जिससे वन परिपद्धति, जैवविविधता, पुनरुत्पत्ति, जैवमात्रा वृद्धि-दर और पादपों के भौगोलिक वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और साथ ही, पर्यावरण तथा सामाजिक-आर्थिक पद्धतियों में परिवर्तन होता है।

भारत, बहु-जैवविविधता वाला देश है जहां वन वृक्षावरण कुल भौगोलिक क्षेत्र का 24.01 प्रतिशत (78.91 मिलियन हे.) है। यहां 1,73,000 गांव हैं जिन्हें वनों के आसपास वाले गांवों में वर्गीकृत किया गया है और जो स्वभाविक रूप से वन संसाधनों पर आधारित है। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन के वनों पर पड़ने वाले प्रभाव पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि जैवविविधता संरक्षण, रक्षण के साथ-साथ वन आश्रितों की आजीविका को सुरक्षित रखा जा सके और औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कार्यों के लिए गोल काश्ठ का उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके।

### भारत में जलवायु परिवर्तन

भारत एक विशाल विकासशील देश है जिसमें करीब 700 मिलियन ग्रामीण आबादी अपनी आजीविका के लिए जलवायु संवेदनशील क्षेत्रों (कृषि, वन, मत्स्यशाला) तथा प्राकृतिक संसाधन (पानी, जैवविविधता, कछारी वन, तटीय क्षेत्र, घास भूमियां) पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त शुच क्षुच भूमि के किसानों, वनवासियों, मछुवारों और घूमतू गड़रियों की अनुकूलन क्षमता बहुत कम है। जलवायु परिवर्तन से प्राकृतिक परिपद्धतियों तथा सामाजिक-आर्थिक पद्धतियों पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक है जैसा कि यू.एन.एफ.सी.सी.सी (नैटकाम 2012) की भारतीय रिपोर्ट में कहा गया है।

भौतिक परिवर्तनों से वैश्विक ऊर्जा प्रभावित होगी, जैसे समुद्र के स्तर का बढ़ना, स्थानीय तापमान का बढ़ना तथा वर्षा पद्धति में परिवर्तन होना। लेकिन सह-क्रियाशील प्रभाव जैसे मीथेन हाइड्रेट्स का निष्कासन, वनों और प्रजातियों के पश्चक्षय से अदृश्य समाधात हो सकते हैं जैसे पृथ्वी के वातावरण में आक्सीजन का स्तर घट जाना। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय (2009) ने पाया कि जलवायु गर्म होने से मौसमीय पद्धति में तीव्रता से परिवर्तन होंगे जैसे :

**गर्मी की अवधि :** उत्तर भारत में तापमान में तीव्र वृद्धि का होना आम हो गया है, जिससे मनुष्यों पर धातक प्रभाव पड़ता है।

**तूफान / चक्रवात :** भारत के 7,517 कि.मी. तटवर्ती क्षेत्र, तूफानों और समुद्र के जल स्तर में वृद्धि से प्रभावित होंगे, जिससे लाखों लोग विस्थापित हो जाएंगे और निचले इलाकों में पानी भर जाएगा तथा आर्थिक नुकसान के साथ-साथ पूरी संरचना गड़बड़ा जाएगी। 1999 के महाचक्रवात ने उड़ीसा में तबाही मचाई, विकास को दशकों पीछे धकेल दिया और 30,000 से अधिक मनुष्यों की जिंदगी छीन ली।

**वर्षण :** जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मानसून पर भी पड़ेगा। कृषि और पानी के लिए भारत मानसून पर निर्भर है और साथ ही मानसून, हमारी जैवविविधता का रक्षण और विस्तार करता है। मानसूनी बारिश में भी काफी परिवर्तन महसूस किए गए हैं।

**ग्लेशियरों के पिघलने से समुद्र का जलस्तर बढ़ना तथा बाढ़ का प्रकोप :** संयुक्त पर्वतीय विकास के अंतर्राष्ट्रीय केंद्र के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण अगले 50 वर्षों में हिमालयी ग्लेशियर लुप्त हो सकते हैं जिससे भारत के एक बिलियन लोगों का जीवन संकट में पड़ जाएगा।

**वन :** भारत के क्षेत्रीय जलवायु मॉडल आकलन बायोम – 3 वनस्पति प्रतिउत्तर मॉडल का उपयोग करते हुए प्रारंभिक आकलन से पता चलता है कि वनों की सीमाओं में परिवर्तन हुआ है, वन किस्मों या प्रजाति एकत्रण में परिवर्तन हुआ है। सकल आरंभिक उत्पादकता में अंतर आया है। संक्रमण काल में वनों में क्षीणता आई है तथा जैवविविधता का अपक्षय हुआ



है। 75 प्रतिशत से अधिक वन क्षेत्र में वन पारिपद्धति में कार्बनडाइआक्साईड का स्तर बढ़ा है। अपेक्षाकृत 50 वर्ष की अवधि में भारत की अधिकांश जैवमात्रा आकलित परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई है। भारत की 70 प्रतिशत वनस्पति अपनी वर्तमान अवस्थिति से लुप्त या क्षीण हो सकती है जिस पर जैवकीय दबाव बढ़ने तथा जलवायुवीय कारणों से और भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। जैवविविधता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वनों पर पड़ने वाले ये विपरीत प्रभाव वन आश्रितों की सामाजिक-आर्थिक जटिलताओं को जन्म देंगे और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालेंगे। जलवायु परिवर्तन के समाधात, वन पारितंत्र पर दीर्घकालिक प्रभाव डालेंगे जिनकी भरपाई करना असंभव होगा। अतः संभावित विपरीत समाधातों को न्यूनतम करने के लिए अनुकूलन और विकासात्मक रणनीतियों को अपनाना होगा। इसके अलावा, उन वन नीतियों, कार्यक्रमों और सांवर्धनिक पद्धतियों को चिह्नित करना होगा जो वन पारिपद्धति को जलवायु परिवर्तन के प्रति सक्षम बनाने में योगदान देती हैं।

**रेगिस्तानीकरण :** जलवायु परिवर्तन से पानी की कमी होगी जिससे भूमि-निम्नीकरण होगा और अंततः रेगिस्तानीकरण होगा। यह ध्यान देना होगा कि जलवायु संवेदनशील क्षेत्र (वन, कृषि, तटीय क्षेत्र) तथा प्राकृतिक संसाधन (भूतलीय जल, मृदा जैवविविधता आदि) पहले ही सामाजिक-आर्थिक दबाव के कारण गंभीर रूप से समस्याग्रस्त हैं। जलवायु परिवर्तन से संसाधनों का निम्नीकरण होना और सामाजिक-आर्थिक दबाव का बढ़ना अवश्यधारी है। इस प्रकार, भारत की विशाल आबादी जलवायु के प्रति संवेदनशील है जिसके लिए क्षमता विकास के साथ-साथ अनुकूलन रणनीतियों को क्रियान्वित और विकसित करना होगा।

**पारिपद्धतियां :** पारिपद्धतियां विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील होंगी। 2 डि.से. वार्मिंग से 15 से 40 प्रतिशत प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर आ जाएंगी। जलवायु परिवर्तन का विपरीत प्रभाव विशेष रूप से वनों, तट भूमियों और तटवर्ती क्षेत्रों पर पड़ेगा। भारत के अधिकांश डेल्टीय भागों में वर्षण की कमी होने और सूखा पड़ने से तट भूमियां सूख गई हैं और पारिपद्धति में निम्नीकरण हो गया है। कुछ क्षेत्रों में बचे-खुचे प्राकृतिक बाढ़-मैदान विलुप्त हो गए हैं जिससे भूमि उपयोजन तथा जलीय चक्र में परिवर्तन हुआ है। नालों का बहाव कम हुआ है और मानवीय संसाधनों में कमी आई है।

आई.पी.सी.सी. के अनुसार दक्षिण एशिया में बाढ़ मैदान संकटापन्न हैं। जलवायु संबंधी कारकों से कछारी वन सीमित

हो गए हैं। ताजा पानी के स्रोत कम हो गए हैं और इन्डस डेल्टा तथा बांगलादेश में खारे पानी के स्रोत बढ़ गए हैं। इसके अलावा अत्यधिक दबाव और जलवायु परिवर्तन के कारण एशिया की प्रवाल भित्तियां (कोरल रीफ्स) अगले 30 वर्षों में समाप्त हो सकते हैं।

इसके अलावा सवाना जीव पद्धति, मध्य-पूर्वी भारत के टीक और साल वनों तथा हिमालय की शीतोष्ण जीवपद्धति पर तीव्र समाधात होगा। आर्द्ध और शुष्क सवाना की जगह उष्णकटिबंधी शुष्क वन तथा मौसमीय वन लेंगे। 2050 तक समाधात स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगेगा। पश्चिमी घाटों तथा उत्तर पूर्व के सदाहरित वर्षा वनों पर समाधात कम पड़ेगा। प्रजातियों का संघटन तथा अवस्थिति भी बदल सकती है और बड़ी मात्रा में वनों का विलुप्तीकरण तथा जैवविविधता में कमी हो सकती है (एम.ओ.ई.एफ. 2009)।

### जलवायु परिवर्तन के न्यूनीकरण के उपाय :

अगली शताब्दी में जब तक ऊर्जा के उपयोग और कार्बन को व्यवस्थित करने के उपाय नहीं किए जाते हैं तब तक कार्बन उत्सर्जन और कार्बनडाइआक्साईड का एकत्रण बढ़ता रहेगा। वातावरण में इन गैसों का न्यूनीकरण होने से समाज में ऊर्जा की खपत में कमी होगी। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन के तीन विकल्पों पर विचार किया जा रहा है :

1. कार्बनडाइआक्साईड के उत्पादन और उत्सर्जन में कमी : इन विकल्पों में कार्बन को व्यवस्थित करना, ऊर्जा स्रोतों में सुधार करना और उपयोग क्षमता में परिवर्तन करना शामिल है, ताकि समान ऊर्जा सेवाएं मुहैया कराने के लिए आरंभिक फोसिल एनर्जी के लिए पहले से कम एककों का उपयोग हो।
2. वर्तमान ऊर्जा स्रोतों को प्रतिस्थापित करके कार्बन से मुक्त बनाना। उदाहरण के लिए कोयले और तेल की जगह कम कार्बन फोसिल ईंधन का प्रयोग करना जैसे प्राकृतिक गैस, सोलर, विंड, हाइड्रिल या जैवमात्रा या अनु शक्ति का उपयोग बढ़ाना।
3. क्षमता में सुधार और कम कार्बन वाले ईंधन के प्रयोग के साथ-साथ कार्बन पृथक्करण के लिए सक्षम पद्धति अपनाना।

### वानिकी आधारित न्यूनीकरण विकल्प

वनों और जलवायु में सीधा सम्बन्ध है। जैवमात्रा में कार्बन एकत्र करके वन भण्डारण का काम करते हैं। उत्पादकता बढ़ने से वातावरणीय कार्बनडाइआक्साईड की अवशोषण क्षमता बढ़ती है जो मुख्य ग्रीन हाउस गैस है। वातावरण में



कार्बनडाईआक्साईड के एकत्रण को कम करने के लिए कई वानिकी पद्धतियां महत्वपूर्ण हैं। वन जैवमात्रा का अपक्षय होने पर, वन ग्रीन हाउस गैसों का स्रोत बनते हैं। कुछ पद्धतियों में रोपण विकास, वन प्रबंधन तथा कृषि वानिकी शामिल हैं जैसे जोत तथा प्राकृतिक उर्वरकों के प्रयोग से अधिक ग्रीन हाउस गैसों अवमुक्त हो सकती हैं। महत्वपूर्ण भूमि उपयोजन पद्धतियों में जलवायु परिवर्तन को न्यूनकरण के उपाय हैं:

वर्तमान वनों के क्षय को रोकना ताकि कार्बन एकत्रण क्षमता यथावत रहे। परियोजना सुअवसरों में शामिल है : वन रक्षण, वन प्रबंधन, फसल तथा प्रबंधन और कृषि वानिकी।

उपग्रह का वानस्पतिक आच्छादन बढ़ाना तथा पार्थिव कार्बन संग्रह में वृद्धि करना। कार्बन आफसेट के सुअवसर हैं : पुनर्वनीकरण, वनीकरण, प्राकृतिक तथा सहायक पुनरुत्पत्ति, फार्म वानिकी तथा सुधारित प्रबंधन पद्धतियां।

कार्बन संग्रह जैसे कृषि मृदाओं और काष्ठ उत्पादों में कार्बन स्टॉक बढ़ाना। आफसेट सुअवसरों में शामिल हैं : पेपर रिसाईकलिंग, काष्ठ के बदले स्टील का प्रतिस्थापन तथा जोताई और उर्वरक पद्धतियों में बदलाव। सतत जैवमात्रा ऊर्जा स्रोतों में फोसिल फ्यूल खपत का प्रतिस्थापन करना। आफसेट सुअवसरों में शामिल हैं : जैवमात्रा प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण, वर्तमान जैवमात्रा उपयोजन की क्षमता में सुधार तथा जैवमात्रा ऊर्जा विकास में अनुदान।

## क्वेटो प्रोटोकॉल के तहत वन

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क अवधारणा (यू.एन.एफ.सी.सी.री.) ने जलवायु परिवर्तन को गंभीर खतरा माना है। देशों के पारितंत्र को बढ़ाने और बचाने का संदेश दिया है जिसके लिए वनों में वृद्धि आवश्यकता है। क्वेटो प्रोटोकॉल को 1997 में अपनाया गया था जिसमें यू.एन.एफ.सी.सी.री. ने जी.एच.जी. उत्सर्जन को कम करने के लिए मात्रात्मक लक्ष्य दिए। के.पी.के तहत उत्सर्जन की सीमाओं पर वायदा पूरा करने के लिए औद्योगिक देश (सूची - । यू.एन.एफ.सी.सी.सी.) भूमि आधारित क्रियाकलापों में कर सकते हैं जैसे निर्वनीकरण को कम करना, नए वनों की स्थापना करना (वनीकरण तथा पुनर्वनीकरण) तथा अन्य वनस्पति किसी का विकास करना, कृषि प्रबंधन करना तथा कार्बन सिंक की क्षमता बढ़ाने हेतु वन भूमियों का प्रयोग करना।

संलग्नक— । मैं लिखे गए देश भी विकासशील देशों की तरह वनीकरण या पुनर्वनीकरण करके कार्बन पृथक्करण में अपना सहयोग दे सकते हैं बशर्ते कि आर्थिक दृष्टि से ऐसा करना लाभदायक हो। सी.डी.एम. के तहत जिन भूमियों में पिछले 50 वर्षों में वनीकरण न हुआ हो या 31 दिसम्बर 1989 से पहले

निर्वनीकरण हुआ हो उनमें पुनर्वनीकरण या वनीकरण किया जा सकता है। विश्व में इस तरह की 52 पुनर्वनीकरण परियोजनाएं पंजीकृत की गई हैं जिनमें से 9 भारत में हैं।

## भारतीय वनों द्वारा जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण सेवाएं :

वन पारिपद्धति में कार्बन संरक्षित करके भारत के वन जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण सकारात्मक योगदान दे रहे हैं। भारत में वर्ष 1880 में जैवमात्रा कार्बन स्टॉक 7.94 एम.टी.सी. आकलित किया गया था जो करीब 100 वर्ष पहले की बात है (रिचार्ड और पिलंट 1994)। वन कार्बन स्टॉक (जैवमात्रा तथा मृदा) का आकलन 1986 में किया गया था जो 8.58 से 9.57 के बीच रहा (रवीन्द्र नाथ आदि 1997, हरिप्रिया 2003, छावड़ा तथा डठवाल 2009)। एफ.ए.ओ. के आकलन के अनुसार (एफ.ए.ओ. 2005) 1986 से 2005 के भारत में वन कार्बन का स्टॉक बढ़ा है। इसका कारण 1950 के बाद हुए वृक्षारोपण तथा 1980 और 1990 से पहले फार्म फोरेस्ट्री के आगाज से ऐसा हुआ है। अध्ययन और सूचनाओं के अनुसार न्यूनीकरण में वनों तथा रोपणों की भूमिका बढ़ती जा रही है। भारतीय वन कार्बनडाईआक्साईड के मुख्य सिंक हैं। केशवान आदि द्वारा 2009 में किए गए आकलन से पता चलता है कि भारत में वर्तमान वृक्षाच्छादन भारत के 11.25 प्रतिशत जी.एच.जी. का उत्सर्जन/करने के लिए पर्याप्त है। आफसेटिंग 100 प्रतिशत में से कुल उत्सर्जन का 40 प्रतिशत कृषि क्षेत्र से है जिससे पता चलता है कि भारत का वृक्षाच्छादन कार्बन न्यूनीकरण में भारत और विश्व के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

संरक्षण तथा विश्व स्तर पर वन विस्तार के लिए देशों द्वारा कार्बन प्रतिपूर्ति दी जा रही है। कार्य सूची के तहत भारत द्वारा "विकासशील देशों में निर्वनीकरण से उत्सर्जन कम करना" यू.एन.एफ.सी.सी. की नीति अपनाई जा रही है जिसे आर.ई.डी.डी. या आर.ई.डी.डी. प्लस कहते हैं और "प्रतिपूर्ति संरक्षण" का नया नाम दिया गया है।

## वन संरक्षण आधारित जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण सुअवसर

जी.एच.जी. उत्सर्जन के लिए उष्णकटिबंधीय (तथा गैर उष्णकटिबंधीय) वनों के भूमि उपयोजन में परिवर्तन उत्तरदायी है। इसलिए वैश्विक जी.एच.जी. उत्सर्जन को कम करने के लिए निम्नीकरण तथा वन संवर्धन का मूल्यांकन करना आवश्यक है। निर्वनीकरण रोकने के लिए वन संरक्षण करना आवश्यक है। यह कहना होगा कि सीमित स्तर पर वनीकरण तथा निर्वनीकरण कम करना पर्याप्त नहीं होगा। रोपण को नुकसान की भरपाई करने का साधन माना जा सकता है।



न्यूनीकरण का मूलमंत्र है, जबकि निर्वनीकरण को रोकना, नुकसान रोकने का पहला उपाय है।

भारत में वन स्रोतों तथा भूमि उपयोजन को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है। भारत में निर्वनीकरण की गंभीरता को स्वीकार किया है और वैशिक स्तर पर इसे कम करने का प्रयोग किया जा रहा है। भारत में वनों के संरक्षण हेतु सशक्त नीति है। वन (संरक्षण) अधिनियम 1980 से वन भूमियों में किए जा रहे परिवर्तनों पर रोक लगी है। इस अधिनियम के तहत वन भूमियों का उपयोग गैर वनीय गतिविधियों के लिए परिवर्तित करने का अधिकार केवल यूनियन गवर्नमेंट का है। वर्तमान में वन भूमि में परिवर्तन केवल अपरिहार्य राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है जिसके लिए प्रतिपूरक को स्थिर बनाने में सहायता मिली है। वन संरक्षण के लिए अन्य महत्वपूर्ण अधिनियम/नियम इस प्रकार हैं : (1) राष्ट्रीय वन नीति 1988, (2) भारतीय वन्यजीव (रक्षण) अधिनियम 1972, (3) भारतीय वन अधिनियम 1927, (4) जीवविज्ञानीय विविधता अधिनियम 2002 तथा (5) राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2006।

### आर.ई.डी.डी. प्लस तथा जैवविविधता संरक्षण में स्थानीय समुदायों की भागीदारी

भारत में वन सामाजिक-आर्थिक पद्धति से जुड़े हुए हैं। पूरे विश्व में देशज लोग वनों में रहने वाले जनजातीय लोग वृक्षों, पक्षियों और जीवों का संरक्षण करते हैं जो उनके जीवनयापन का साधन हैं। भारत में जनजातीय, वनवासी तथा अन्य स्थानीय समुदायों को उनकी परम्पराओं और सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा प्रदान की गई है। वन प्रबंधन में इन लोगों की भागीदारी बढ़ाने हेतु रणनीतियां बनाई गई हैं।

भारत में वन रक्षण और प्रबंधन में स्थानीय समुदायों को शामिल करने के सफल कार्यक्रम बनाए गए हैं। संयुक्त वन प्रबंधन (जे.एफ.एम.) के द्वारा वन उत्पादों की सामुदायिक भागीदारी के प्रयास किए गए हैं। स्थानीय समुदाय तथा वन विभाग द्वारा वन पुनरूत्पत्ति को क्रियान्वित करने के संयुक्त प्रयास किए जाते हैं और समुदायों को उनकी सहभागिता का अंशदान दिया जाता है। अब तक 100000 से अधिक संयुक्त वन प्रबंधन समुदाय 22 मिलियन हेक्टेयर वन क्षेत्र में सक्रिय हैं जिनमें लगभग 22 मिलियन सदस्य हैं जो वर्तमान वनों के रक्षण और पुनरूत्पत्ति में सक्षम हैं। भारत में जे.एफ.एम. के तहत आनेवाला क्षेत्र भारत के राष्ट्रीय पार्कों और अन्यारणों से तुलना योग्य हो गया है। यह पद्धति राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2006 के अनुरूप है जिसमें वन प्रबंधन के उपायों को अपनाकर जलवायु परिवर्तन को न्यूनतम किया जा रहा है।

भारत में जे.एफ.एम. की अवधारणा के निम्नीकृत वनों की उत्पादकता बढ़ाने में सहायता मिली है। वनों में जैवविविधता के साथ-साथ कार्बन स्टॉक बढ़ा है और प्रकाष्ठ जलाऊ काष्ठ तथा चारा आदि सामग्रियों की उपलब्धता बढ़ी है। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जे.एफ.एम. के साथ आर.ई.डी.डी. की शुरुआत का भविष्य उज्ज्वल है। इसके लिए लोगों में आर.ई.डी.डी. के उद्देश्यों के अनुरूप कार्य करने हेतु प्रेरित करने की आवश्यकता है।

### राष्ट्रीय अनुकूलन तथा न्यूनीकरण के प्रयास : जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना

पिछली कमियों को दूर करते हुए अनुकूलन आवश्यक है। अनुकूलन के व्यापक अवसर हैं किंतु भविष्य में जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है (एम.ओ.ई.एफ. 2009)। भारत की कार्य योजना में उच्च उपज को अनुरक्षित करने पर जोर दिया गया है ताकि जलवायु परिवर्तन के समाधात को कम किया जा सके। तदनुसार, कार्य योजना में सतत विकास को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया है। इसमें विकास तथा जलवायु परिवर्तन के कई बिंदुओं पर ध्यान दिया गया है। वर्तमान प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण संबंधी उद्देश्यों को रेखांकित किया गया है। मुख्य राष्ट्रीय कार्य योजना में जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए संयुक्त रणनीति बनाई गई है। जलवायु परिवर्तन को समझने, अनुकूलन और न्यूनीकरण, ऊर्जा क्षमता तथा प्राकृतिक संसाधन संरक्षण को मुख्य उद्देश्य के रूप में मान्यता दी गई है। कई ऐसे कार्यक्रमों पर कार्रवाई चल रही है तथापि कार्य योजना में उनकी प्रभावशीलता बढ़ाने और क्रियान्वयन पर जोर दिया गया है (एम.ओ.ई.एफ 2009)।

**हरित भारत का राष्ट्रीय उद्देश्य :** इस राष्ट्रीय उद्देश्य की घोषणा कार्बन सिंक सहित पारिपद्धति सेवाओं में वृद्धि के लिए किया गया है। इस संदर्भ में भारत के प्रधानमंत्री महोदय ने छ: मिलियन हेक्टेयर निम्नीकृत वनों में वनाच्छादन और उसका घनत्व बढ़ाने की उद्घोषणा की है जिससे देश की पारितंत्रीय सुरक्षा बढ़ाने तथा आश्रित समुदायों की जीविकोपार्जन क्षमता बढ़ाने में सहयता मिलेगी। इसके अलावा सतत वन प्रबंधन तथा जीवविज्ञानीय विविधता बढ़ाकर सामग्रियों और सेवाओं की आपूर्ति में वृद्धि होगी। “हरित भारत की अवधारणा को पूरा करने के लिए जे.एफ.एम. के जरिए समुदायों को संगठित किया जाएगा और वन विभागों द्वारा उनका मार्गदर्शन किया जाएगा। प्रस्तावित राष्ट्रीय उद्देश्य निम्नलिखित दो बिंदुओं पर आधारित हैं।



1. देश में वनाच्छादन तथा उनके घनत्व में वृद्धि
2. जैवविविधता संरक्षण : इस कार्यक्रम के विशेष क्रियाकलाप होंगे (क) आनुवंशीय संसाधनों का स्वरस्थानिक तथा परास्थानिक संरक्षण (ख) जैवविविधता रजिस्टर तैयार करना (राष्ट्रीय जिला तथा स्थानीय स्तर पर) जिससे परम्परागत ज्ञान से संबद्ध आनुवंशीय विविधता को प्रलेखीकृत किया जा सके। (ग) वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के तहत रक्षित क्षेत्र पद्धति का प्रभावी क्रियान्वयन (घ) राष्ट्रीय जैवविविधता संरक्षण अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन

वनाच्छादन को बढ़ाना और उसकी गुणवत्ता में वृद्धि करना न्यूनीकरण तथा अनुकूलन का मूल तत्व है जो जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए संभवतः सबसे सरल उपाय है। इस बात को ध्यान में रखते हुए जीवविज्ञानीय वैविध्य का संरक्षण करना, वनों के उत्पादक तथा रक्षात्मक क्रियाकलापों को प्रबलित करना और देश के हरित आवरण को बढ़ाना, जलवायु परिवर्तन को रोकने की मुख्य रणनीतियां हैं, जिसे

“जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना” का नाम दिया गया है।

‘हरित भारत’ की अवधारणा, पारिपद्धति प्रबंधन और पुनर्स्थापन क्रियाकलापों को बढ़ाकर गरीब समुदायों को जलवायु संबंधी आपदाओं और जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों से बचाएगी। पारिपद्धति सेवाओं जैसे वनीकरण, पुनर्वनीकरण, जैवविविधता संरक्षण तथा घास भूमियों के पुनर्स्थापन को बढ़ाकर तथा रक्षित करके आश्रित समुदायों की जीविकोपार्जन क्षमता में वृद्धि होगी और जलवायु परिवर्तन के समाधात से बचने की क्षमता विकसित होगी।

भारत में सतत संरक्षण केंद्रित वन नीतियों तथा वनीकरण कार्यक्रमों से कार्बनडाईआक्साईड उत्सर्जन में कमी आएगी। वनों में कार्बन स्टॉक बढ़ेगा और उसमें सुधार होगा तथा जैवविविधता का संरक्षण होगा। इस प्रकार भारतीय वानिकी सेक्टर द्वारा वैश्विक परिवर्तन को रोकने तथा सतत विकास को आगे बढ़ाने में सकारात्मक सहयोग किया जा रहा है।



# वन एवं जैवविविधता: रियो संधियों की प्रांसगिकता

श्री विजयराज सिंह रावत

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

पृथ्वी के कुल भू-भाग का लगभग 30 प्रतिशत भाग वनाच्छादित हैं। वनों से जहाँ भोजन, चारा, झंधन जल, आश्रय, पोषक तत्वों का संचरण, वायु शोधन सांस्कृतिक तथा मनोरंजन के साथ-साथ कई पर्यावरणीय सेवाये तथा वस्तुओं की प्राप्ति होती है वही ये कई देशों की आर्थिकी के भी मुख्य साधन हैं। विश्व की लगभग 1 अरब जलसंख्या जीविकोपार्जन के लिये वनों पर निर्भर है। केवल उष्णकटिबंधीय वनों से ही प्रतिवर्ष 108 अरब डलर मूल्य के औषधीय पादप प्राप्त होते हैं। इस सबके बावजूद विश्व भर में वन क्षेत्रों का बड़ी तेजी से ढास हो रही है। मनुष्य के पर्यावरण में हो रही छेड़ छाड़ की ओर विश्व समुदाय का ध्यान आकृष्ट करने तथा इसके संस्थागत निदान के लिये 1992 में ब्राजील के रियो डी जिनेरो शहर में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित किया गया जो कि रियो सम्मेलन के नाम से भी विख्यात है। रियो में विश्व समुदाय द्वारा तीन महत्वपूर्ण विधिक रूप से बाध्यकारी संधियों (i) जैवविविधता पर संधि (ii) मरुस्थलीकरण को रोकने हेतु संयुक्त राष्ट्र संधि तथा (iii) जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूप रेखा संधि पर हस्ताक्षर किये गये। उक्त तीनों संधियों वनों की भूमिका का महत्वपूर्ण योगदान है तथा ये अपने विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वनों के महत्व को स्वीकारती हैं।

## रियो सम्मेलन में वनों का महत्व एवं मुख्य कार्यक्रम

1. जैव विविधता संधि (सी.बी.डी) : रियो सम्मेलन से निकली यह अंतराष्ट्रीय संधि वैश्विक स्तर पर जैव विविधता संरक्षण, उसके सतत उपयोग तथा जैविक संसाधनों के उचित एवं बराबरी के हिस्सेदारी सुनिश्चित करने हेतु कार्यरत हैं। इस संधि के पक्षकारों की दसवीं बैठक 2010 में नागोया (जापान) में हुई जिसमें जैवविविधता हेतु एक सामरिक योजना 2011–2020 अंगीकृत की गयी। जैवविविधता हानि को रोकने, 2020 तक पारिस्थितिकी तंत्रों को स्थिर करने तथा मानव सम्बन्धित आजिविका हेतु आवश्यक सेवाओं के निरन्तर प्रवाह सुनिश्चित करने हेतु एक प्रभावकारी कार्यक्रम के प्रोत्साहन हेतु सभी पक्षकारों एवं हितधरियों की प्रतिबद्धता सुनिश्चित की गयी। इस योजना के केन्द्र में 20 लक्ष्य निर्धारित किये गये जिन्हें आइशी जैव विविधता लक्ष्य भी कहा जाता हैं।

इस योजना के क्रियान्वयन हेतु इन लक्ष्यों की पूर्ति आवश्यक है। अधिकतर लक्ष्य वनों एवं उनसे जुड़े विषयों पर हैं जैसे :

लक्ष्य-5. वनों सहित सभी प्राकृतिक आवासों की क्षति की दर को आधा या यदि सम्भव हो तो पूर्ण रूप से कम करना

लक्ष्य-7. सभी वन क्षेत्रों का जैव विविधता संरक्षण सहित सतत प्रबन्ध

लक्ष्य-11. कम से कम 17 प्रतिशत भू-जल क्षेत्रों का संरक्षण

लक्ष्य-14. जल, स्वास्थ्य, आजीविका, सम्पन्नता सहित आवश्यक सेवायें प्रदान करने वाले पारिस्थितिकी तंत्रों को पुनर्स्थापित तथा संरक्षित करना

लक्ष्य-15. कम से कम 15 प्रतिशत क्षरित पारिस्थितिकी तंत्रों की पुनर्स्थापना एवं संरक्षण कर जैवविविधता स्थिरता एवं कार्बन संरक्षण कर जैवविविधता स्थिरता एवं कार्बन भंडारण में योगदान।

जैवविविधता संधि इस योजना की प्रगति की समीक्षा भी प्रारम्भ कर रही है। वर्ष 2014 में चौथी वैश्विक जैवविविधता परिदृष्टा (4<sup>th</sup> Global Biodiversity Outlook) का प्रकाशन इस दिशा में मील का पत्थर साबित होगा। जैवविविधता संधि के अंतर्गत वनों को अत्यधिक महत्व दिया गया है। जिसमें प्रमुख रूप से वनों पर कार्य योजना, संरक्षित क्षेत्र, द्वीप, पर्वत, शुष्क क्षेत्र तथा भू-जल क्षेत्र प्रमुख हैं। राष्ट्रीय स्तर पर जैवविविधता संरक्षण एवं सतत उपयोग हेतु कार्य योजना के अंतर्गत उचित वन शासन व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि के अंतर्गत चल रही रेड प्लस (REDD+) वार्ताओं को भी यह संधि प्रोत्साहन देती हैं जिससे कि रेड प्लस कार्यक्रमों द्वारा जैवविविधता एवं स्थानीय समुदायों को लाभ होगा। इस संधि के बारे में अधिक जानकारी इसकी वेबसाइट [www.cbd.int](http://www.cbd.int) पर प्राप्त की जा सकती है।

2. संयुक्त राष्ट्र मरु अप्रसार संधि : निर्वनीकरण तथा तटपश्चात मरुस्थलीकरण से भू-उत्पादकता, मनुष्य एवं पशुधन के स्वास्थ्य तथा पारिस्थितिकीय पर्यटन जैसी आर्थिक गतिविधियों पर विपरीत प्रभाव पड़ते हैं। वन एवं वृक्ष आवरण मृदा को स्थिर कर, मृदा में जल एवं पोषक तत्वों के चक्र को



नियंत्रित कर भूक्षरण एवं मरुस्थलीकरण को रोकते हैं। निर्वनीकरण के फलस्वरूप मरुस्थलीकरण एवं भू संरक्षण से जैव विविधता का हास होता है फलस्वरूप कम कार्बन प्रथक्करण होगा तथा जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण कार्यक्रम भी विपरीत प्रभावित होंगे। वन पारिस्थितिकीतंत्र से प्राप्त होने वाली वस्तुये एवं सेवाओं के सतत उपयोग तथा कृषि वानिकी तंत्रों का विकास गरीबी उन्मूलन से सहायक है। इन कार्यक्रमों के प्रभावी तरीके से संचालन से ग्रामीण निर्धन मरुस्थलीकरण तथा भूक्षरण के दुष्प्रभाव से कम प्रभावित होंगे।

संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण रोकथाम संधि की विषय वस्तु में प्राकृतिक संसाधनों एवं भू उपयोग विधियों के एकीकृत एवं सतत प्रबंध हेतु कई महत्वपूर्ण प्रावधान है। इस संधि को प्रभावी रूप से लागू करने हेतु एक दस वर्षीय 2008–18 रणनीतिक योजना के प्रारूप के अंतर्गत चार प्रमुख उद्देश्य हैं।

- (I) प्रभावित जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार
- (II) प्रभावित पारिस्थितिकी तंत्रों की स्थिति में सुधार
- (III) इस संधि के प्रभावी क्रियान्वयन से वैश्विक स्तर पर लाभान्वित होना
- (iv) राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी सहभागिता बना कर संधि के क्रियान्वयन हेतु संसाधन जुटाना

संधि के अधीन राष्ट्रीय कार्ययोजना के अंतर्गत भूमि एवं सूखा संबंधित नीतियों पर राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाये गये हैं। वैश्विक स्तर पर मरुस्थलीकरण एवं भू क्षरण की रोकथाम तथा सूखे के प्रभाव पर राष्ट्रीय प्रयासों के क्रियान्वयन एवं अनुश्रवण में दिशानिर्देश हेतु यह संधि महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इस संधि के बारे में अधिक जानकारी इसकी वेबसाइट [www.unccd.in](http://www.unccd.in) पर उपलब्ध है।

**3. संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि :** वैश्विक जलवायु परिवर्तन के दुश्प्रभावों तथा इसके लिये उत्तरदायी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी हेतु यह अंतर्राष्ट्रीय संधि, जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण में वनों की भूमिका को अत्याधिक महत्वपूर्ण समझती है। जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण में ऊर्जा क्षेत्र में सुधार एवं दक्षता के बाद वनों की भूमिका में सर्वाधिक चर्चा होती है। जलवायु परिवर्तन पर अंतसरकारी पैनल (IPCC) के अनुसार विश्व में तेजी से घट रहे वन क्षेत्र लगभग 17.4 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के लिये उत्तरदायी हैं। जलवायु परिवर्तन संधि वैश्विक स्तर पर भू-उपयोग परिवर्तन, एवं वानिकी गतिविधियों द्वारा वानिकी से सम्बन्धित नीतियों एवं क्रिया विधियों पर दिशा

निर्देश देती हैं। संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि में वनों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कार्यक्रम निम्न है।

**(i) विकसित राष्ट्रों में भू उपयोग, भू-उपयोग परिवर्तन एवं वानिकी :** इस विषय पर विकसित राष्ट्र ग्रीन हाउस गैसों की कमी हेतु की गयी प्रतिवद्धता में भू उपयोग, भू-उपयोग परिवर्तन एवं वानिकी द्वारा हो रहे योगदान (उत्सर्जन या कार्बन प्रथक्करण का) लेखा जोखा अपने राष्ट्रीय संवाद (National Communication) के द्वारा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण संधि (UNFCCC) को प्रेषित करते हैं। सभी विकसित राष्ट्रों को वानिकी के अन्तर्गत वनीकरण, पुनर्वनीकरण द्वारा कार्बन प्रथक्करण तथा निर्वनीकरण द्वारा कार्बन उत्सर्जन को आवश्यक रूप से रिपोर्ट करना होता है। इनके अतिरिक्त भू उपयोग परिवर्तन एवं वानिकी से संबंधित अन्य गतिविधियां वैकल्पिक हैं।

**(ii) स्वच्छ विकास प्रक्रिया (सी.डी.एम) में वनीकरण एवं पुनर्वनीकरण:** क्योटो प्रोटोकोल के अंतर्गत इस प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य विकासशील देशों में सतत विकास के साथ साथ संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि के उद्देश्यों की पूर्ति करना है। सी.डी.एम. परियोजनाओं के द्वारा कार्बन व्यापार की अवधारणा में विकासशील राष्ट्रों की भागीदारी भी सुनिश्चित की गयी। सी.डी.एम के अंतर्गत कार्बन व्यापार से वनीकरण तथा पुनर्वनीकरण अर्थात् नये वन लगाने पर ही लागू होता है। इन गतिविधियों से जहां एक और राष्ट्रों के सतत विकास में सहयोग मिलता है वहीं पर यह जैव विविधता संरक्षण में भी लाभकारी है।

**(iii) रिड्यूसिंग इमिसंस फ्रांग डी फोरेस्टेशन एण्ड फोरेस्ट डिग्रेडेशन (रेड) :** जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि विश्व स्तर पर कुल ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का 17.4 प्रतिशत वनों के कटान से होता है। आज विश्व के वन क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 130 लाख की कमी हो रही है। 2005 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र जलवायु संधि के पक्षकारों की नवी बैठक में निर्णय लिया कि विश्व समुदाय द्वारा इस वन विनाश की गति को कम करने हेतु आवश्यक आर्थिक सहयोग दिया जाय, भारत ने यह मांग रखी कि जिन राष्ट्रों ने उनके अथक प्रयासों से वन संरक्षण कार्य किये हैं तथा अपने यहां वन विनाश की गति समाप्त कर अपितु वन क्षेत्रों में वृद्धि की है उन्हे भी अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों के अंतर्गत उचित आर्थिक सहायता दी जाय, बाली सम्मेलन में भारत की इन नीति को स्वीकृत प्रदान की गयी तथा रेड अब रेड प्लस नाम से जाना जाने लगा, वर्ष 2013 में वार्सा में सम्पन्न इस संधि के पक्षकारों के उन्नीसवें सम्मेलन (COP-19) में रेड प्लस कार्यक्रमों को लागू करने हेतु दिशानिर्देश पर सहमति बन गयी है। संयुक्त



राष्ट्र जलवायु संधि में विचारणीय विषयों में रेड प्लस बहुत महत्वपूर्ण है। इस एजेण्डा पर वार्ता के दौरान ही विश्व में रेड प्लस पर कई पाइलट तथा प्रदर्शन परियोजनायें प्रारंभ हुयी। रेड प्लस नियमों के अंतर्गत वनों में रहने वाले तथा आश्रित समुदायों की भागीदारी तथा उनके पारम्परिक हक हूकों की पूरी सुरक्षा के उपाय किये गये हैं। रेड प्लस नियमों में यह भी सुनिश्चित किया गया है कि रेड प्लस परियोजना क्षेत्रों में किसी प्रकार से जैव विविधता का छास न हो।

### रियो सम्मेलन में वनों से सम्बन्धित सहभागिता

रियो सम्मेलन सचिवालय वनों से संबंधित विषयों पर वैशिक स्तर पर अन्य तत्सवित संस्थाओं से सक्रिय सहभागिता बनाये रखता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वनों की सहभागिता (Collaborative Partnership on Forests) के अंतर्गत 14 अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ तथा संस्थाये संयुक्त रूप से कार्यरत हैं। वनों के मुद्दों पर ये संस्थायें खाद्य एवं कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के साथ निकट सहयोग करती हैं। वन एवं भू-प्रवंधन गतिविधियों के क्रियान्वयन हेतु अन्य संस्थायें जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय उष्ण देशीय प्रकाष्ठ संगठन, वैशिक पर्यावरण सुविधा आदि भी इसमें सहयोग करते हैं। इस सभी सहयोगी क्रियाकलापों में वन जैवविविधत में कमी का निदान, भूमि क्षरण, मरुस्थलीकरण, भू-उपयोग परिवर्तन एवं निर्वनीकरण से हरित ग्रह गैसों का उत्सर्जन तथा परिस्थितिकीतांत्रों की सेवाओं की निरन्तरता बनाये रखने हेतु वृहत कार्यक्रम शामिल हैं। इन संस्थाओं के बारे में विस्तृत जानकारी इनकी वेबसाइट [www.cptweb.org](http://www.cptweb.org) पर उपलब्ध है।

### रियो संधियों का पुनर्वालोकन :

(I) **रियो+10 :** रियो सम्मेलन के दस वर्ष बाद इस संधि के पुनर्वालोकन हेतु जोहनसर्बग में 20 अगस्त से 4 सितंबर 2002 तक सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन में एक बार पुनः खाद्य, जल, आवास, सफाई, ऊर्जा, स्वास्थ सुविधाये तथा आर्थिक सुरक्षा की बढ़ती चुनौतियों के साथ-साथ मानव जीवन में सुधार तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर विश्व समुदाय का ध्यान आकृष्ट किया गया, सम्मेलन में मुख्य रूप से 21<sup>वीं</sup> सदी में पर्यावरण संचालन हेतु पारित एजेण्डा 21 तथा इसमें अंगीकृत प्रमुख संधियों की प्रभावशीलता के आंकलन तथा भविष्य के लिये मार्ग दर्शन पर चर्चा हुयी। अन्य समझौतों के साथ जोहनसर्बग घोषणा पत्र पारित किया गया सम्मेलन में 2010 तक जैव विविधता हास को कम करना तथा संयुक्त राष्ट्र वन फोरम की वार्ताओं में तेजी लाकर 2005 तक इसकी

प्रगति की समीक्षा का आवाहन किया गया।

(ii) **रियो + 20 :** रियो सम्मेलन के बीस वर्ष का लेखा जोखा आंकलन तथा भविष्य की कार्यवाही हेतु रियो + 20 सम्मेलन एक बार पुनः रियो डी जिनेरियो शहर में 13 से 22 जून, 2012 तक सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के 121 सदस्य राष्ट्रों सहित 79 देशों के राष्ट्राध्यक्षों सहित, सरकारी प्रतिनिधि मंडल, स्वयं सेवी संस्थाओं, अंतर्राष्ट्रीय संस्थान आदि के लगभग 44000 प्रतिनिधियों में प्रतिभाग किया। सरकारी प्रतिनिधियों ने वार्ता का अंतिम दौर में भविष्य जो हमें चाहिये (*The Future We Want*) दस्तावेज को अंतिम रूप दिया। यह दस्तावेज मुख्यतः दो बिन्दुओं पर केन्द्रित रहा (i) सतत विकास एवं गरीबी उन्मूलन के संदर्भ में हरित अर्थव्यवस्था तथा (ii) सतत विकास हेतु संस्थागत रूप रेखा तैयार करना। सतत विकास के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु रोजगार, ऊर्जा, शहर, खाद्य, जल, महासागर, तथा आपदा सहित मुख्य विषयों को चिन्हित किया गया।

रियो + 20 में अग्रीकृत दस्तावेज में वन एवं जैव विविधता विषयों पर भी गम्भीरता से चर्चा हुयी, जैव विविधता से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान, तथा स्थानीय समुदायों के योगदान को मान्यता दी गयी, दस्तावेज में जैवविविधता संधि के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रतिबद्धता दिखाई गयी। देशों ने जैवविविधता पर 2011–2020 के रणनितिक योजना तथा इसके सम्बन्ध में आइशी नागोया के 20 लक्ष्यों की पूर्ति पर भी अपनी प्रतिबद्धता दिखाई। दुनिया के देशों ने पुनः सतत विकास में जैवविविधता का योगदान तथा जैवविविधता संधि को पूर्ण रूप से लागू करने हेतु अधिक प्रयासों पर बल दिया।

निश्चित तौर पर रियो सम्मेलन ने वैशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता तथा भूमिक्षण आदि ज्वलंत अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान की ओर नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। रियो सम्मेलन एवं ज्वलंत उदाहरण है जिसमें महत्वपूर्ण बहुपक्षीय पर्यावरणीय समझौतों के अन्तर्गत वन एवं जैव विविधता पर एक अनुकरणीय सामंजस्य विकसित कर कई समान विषयों पर इन विभिन्न संधियों में हो रही जटिल वार्ताओं के मसौदे को सुविधाजनक बनाया गया। पृथ्वी हमारी सामुहिक सम्पदा है और जीवन का आधार है। रियो सम्मेलन के मुद्दे पूरे विश्व समुदाय एवं मानव जाति के लिये हमेशा प्रांसंगिक रहेंगे। सभी का स्वाभाविक हित पृथ्वी के संसाधनों के सतत उपयोग तथा संरक्षण में है ताकि जिन संसाधनों का उपयोग हम आज कर रहे हैं आने वाली संतति को भी वही संसाधन उचित मात्रा में मिल सकें।

# झूम खेती : पूर्वोत्तर हिमालय की एक पारंपरिक खेती

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, डॉ. विश्वजीत कुमार एवं श्री पवन कौशिक  
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

झूम खेती कृषि का एक प्राचीनतम एवं पारंपरिक तरीका है। इसमें प्राथमिक चरण में समुदाय द्वारा जंगल के एक टुकड़े का चयन कर उसको जलाकर साफ किया जाता है। इस प्रक्रिया में कुछ गृह उपयोगी पेड़ों को छोड़ दिया जाता है। इस भूमि में दो से तीन वर्षों तक खेती करने के बाद उसको नये जंगल के पुनर्जन्म हेतु छोड़ दिया जाता है। एवं कुछ वर्षों बाद वह भूमि झूम खेती हेतु पुनः उपयुक्त हो जाती है। विश्व के विकासशील देशों की कुल 22% आबादी जो कि तकरीबन 3000 प्राचीन जनजातियों को समाहित किये हुये हैं, झूम खेती में संलग्नित है। माना जाता है कि यह खेती 7000 ईसा पूर्व निओलीथिक काल से प्रचलन में आई। विश्व में एशिया, अफ्रीका एवं दक्षिणी अमेरिका के पर्वतीय लोगों के बीच में यह खेती बहुप्रचलित है। झूम खेती को दुनिया में अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे 'पोडू', 'मिलपा', 'ट्रोजा', 'कोडांग', 'चेना', 'लुआ', 'कालिंगन', 'टोंगया', 'स्वीडेन'। आदिम प्रकार की यह खेती पूर्वोत्तर भारत के नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोराम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा एवं असम के पर्वतीय ज़िलों में की जाती है जो कि उष्ण कटिबंधीय जलवायीय क्षेत्र हैं। जबकि इसका कुछ प्रसार उड़ीसा, सिक्किम आदि राज्यों तक भी फैला है। झूम खेती पूर्वोत्तर भारत की केवल कृषि विधा ही नहीं है बल्कि जनजातियों की एक जीवन-शैली भी है। झूम खेती करने के पूर्वोत्तर भारत की अलग-अलग जनजातियों में अलग-अलग रीति-रिवाज है। कहीं पर पूरा परिवार एक झूम खेत को तो कभी-कभी पूरे समुदाय द्वारा यह पारंपरिक खेती

समन्वित रूप से की जाती है। झूम खेत को चुनने के पश्चात प्रारंभिक चरण में जंगल को काटकर जलाया जाता है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है एवं फिर उसमें पारंपरिक औजारों के द्वारा जमीन की खुदाई कर विभिन्न प्रकार के अनाज, सब्जियां एवं फल आदि कर संतुलित जीवन-यापन किया जाता है। विभिन्न जनजातियां इन सभी कार्यों के लिए अलग-अलग सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठान भी करती हैं। इन झूम खेतों में पहले विभिन्न प्रकार के जैव-विविध फसलों का प्रयोग किया जाता था, एवं पूरा का पूरा परिवार उसी झूम खेत में झोपड़ी बना कर निवास करता है। वह अपने जीवन यापन अधिकतर सामग्रियाँ उसी झूम खेत से ही प्राप्त करते हैं। परंतु वर्तमान में बहुत से जगहों पर पारंपरिक झूम खेती की जगह आधुनिक झूम खेती ने ले लिया है जिसमें फसलों का विविधीकरण धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। अतीत में एक झूम चक्र की अवधि 18–20 वर्ष हुआ करती थी अर्थात् एक बार एक खेत का इस्तेमाल अधिकतम तीन वर्षों तक करने के पश्चात जब भूमि की उर्वरा शक्ति खत्म हो जाती थी तब उसे 15–20 वर्षों के लिए छोड़ दिया जाता था जिससे भविष्य में एक नये जंगल के रूप में बदल सके। परंतु बढ़ती हुई जनसंख्या एवं खाद्यानांकों की कमी के कारण अतीत का यह झूम चक्र वर्तमान में केवल 3 से 10 वर्षों तक ही सिमट गया है। इस वजह से पूर्वोत्तर भारत में विशेषतः पर्वतीय ज़िलों में हो रहे वनोन्मूलन का एक प्रमुख कारण झूम खेती ही बनता जा रहा है।

क्र.सं.	प्रदेश	क्षेत्र (मिलियन हेक्ट.)	झूम खेती में लगे कुल परिवार	परती अवधि	नियंत्रण
1.	अरुणाचल प्रदेश	0.26	54,000	3–10 वर्ष	ग्राम-समुदाय/पारंपरिक संस्थाएं
2.	असम	0.31	58,000	2–10 वर्ष	जिला परिषद्
3.	मणिपुर	0.36	70,000	4–7 वर्ष	ग्राम समुदाय
4.	मेघालय	0.26	82,290	5–7 वर्ष	पारंपरिक संस्थाएं
5.	मिजोराम	0.04	50,000	3–4 वर्ष	ग्राम समुदाय
6.	नागालैण्ड	0.63	1,16,046	5–8 वर्ष	ग्राम समुदाय
7.	त्रिपुरा	0.10	43,000	5–9 वर्ष	पंचायत एवं ग्राम परिषद्
	कुल	1.96	44,3336		(स्रोत: तोमर एवं अन्य, 2012; राष्ट्रीय बायनेक्टी आयोग, 2006; स्टेट ऑफ रिपोर्ट, 2010)



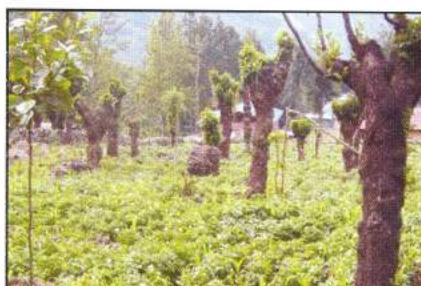
झूम खेती का प्रारम्भिक चरण



झूम खेत में अस्थायी निवास



खोनामा ग्राम, नागालैंड में हिमालयन अल्डर आधारित झूम खेती (धान एवं आलू)



परती झूम खेत



स्थानीय बाज़ार में झूम खेत से प्राप्त उत्पाद



### पूर्वोत्तर भारत में झूम की वर्तमान स्थिति :

पूर्वोत्तर भारत में जीवन यापन की यह प्रमुख कृषि पद्धति सात राज्यों के कुल 1.96 मिलियन हे. क्षेत्र को समेटे हुए है।

### झूम खेती आधारित समस्यायें :

झूम खेती की वजह से वर्तमान समय में जमीन की गुणवत्ता में कमी होती जा रही है जिसके फलस्वरूप कम उर्वरता, अधिक भूमि अपरदन, कम उपज, खरपतवार वृद्धि, जैवविविधता के क्षण के रूप में सामने आ रही है। घटते झूम

चक्र की वजह से वातावरणादि समस्याओं के रूप में नजर आ रही है। वनाच्छगदन (Forest Cover) घट रहा है। नदियां एवं अन्य पानी स्रोत पर संकट समाया हुआ है। झूम खेती में आ रही विघटनकारी प्रभावों के कारण सामुदायिक संरचना में विखराव आ रहा है इसका एक कारण समुदायों के प्राचीनतम ज्ञान में कमी भी है। इन सबके अतिरिक्त भूमि अधिकार की नयी समस्यायें सामने आ रही हैं। इसके अतिरिक्त झूम उत्पादों का उचित बाज़ार मूल्य ना मिलना भी एक समस्या है जिसका प्रमुख कारण है परिवहन व्यवस्था एवं आधारभूत बाजार की कमी।



कृषि एवं पशुधन की उन्नत प्रजातियों की कमी, झूमियों की अशिक्षा, जिसके बजह से नये संसाधनों को न अपनाना भी इस समस्या का एक मूल है। पर्यावरणविद इस पारंपरिक खेती को पूर्वोत्तर भारत में पर्यावरण के क्षरण का मुख्य कारण मानते हैं। वर्तमान में मिजोराम राज्य ने झूम खेती द्वारा पर्यावरण को हो रहे क्षरण के संरक्षण कि लिए नई भूमि उपयोग नीति 2010 प्रारंभ की है जिसमें तकरीबन 30 हजार जनजातीय परिवारों को झूम खेती छोड़कर उसे स्थायी खेती करने पर बल दिया है, जबकि नागालैंड के खोनामा ग्राम में हिमालयन अल्डर आधारित झूम खेती पर्यावरण को स्थाईत्व देने वाला एक विकासशील मॉडल है।

### निष्कर्ष एवं समाधान :

झूम खेती की प्राचीन विधा का अनुसरण ही पर्यावरण को बचाये रखने में सहायक हो सकती है। इसके अलावा झूम खेती में कृषि आधारित आधुनिकतम तकनीकियों का समावेश भी झूम खेती के उत्पादों की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक हो सकता है एवं वातावरण के क्षरण को रोक सकता है।

- झूम खेत में वर्षा के पानी को रोकने के लिए बांस द्वारा चेक गेट बनाना।
- झूम खेत में पानी इकत्रण के लिए कृत्रिम टैंक बनाकर सूखे की स्थित में भूमि को जल प्रदान करना।
- वर्मीकम्पोस्ट, जैव-उर्वरकों एवं माइकोराइज़ा आदि का उपयोग कर भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाना।
- फसल चक्र को स्थापित करना जिसमें नाइट्रोजनजनित फसलों का उचित समावेश हो।

- कृषि वानिकी संरचनाओं को बढ़ावा देना जैसे—हिमालयन एलडर—बड़ी इलायची कृषि वानिकी संरचना, सुपारी—सब्जी—पान—कालीमिर्च कृषि वानिकी संरचना, बांस—अन्नानास कृषि वानिकी संरचना, संतरा : सब्जी कृषि वानिकी संरचना आदि।
- अतिरिक्त आय के स्रोतों के लिए झूम खेतों में मधुमक्खी पालन करना।
- झूम खेतों में बहुउद्देशीय वृक्षों का रोपण (पर्किया, पाइनस, आम, अल्स नेपालेन्सिस आदि)।
- तेलीय बीज पादपों (करंज, महुआ, नीम, सिमारुबा, करंजा, जेट्रोफा एवं जोजोबा) की खेती।
- ऑर्किड (जैसे रिंकोस्ट्याल्फस, डेंद्रोबियम, सिमबीडीइम, वांडा, बल्बोफिल्लम) एवं अन्य पुष्पों (एन्थुरीइम, ग्लैडियोलस, गेंदा, गुलाब एवं गुलदाऊदी आदि की खेती।
- औषधीय पौधों (कालमेघ, ब्रह्मी, नीम, एलोय वेरा, जैन्थोजाइलम, सर्पगंधा, अश्वगंधा आदि) का रोपण।
- स्ट्रॉवेरी, कीवी एवं सेब आदि मूल्यवान फसलों का झूम खेतों में रोपण।
- समाजिक संरथाओं एवं सरकारी कार्यक्रमों का झूमियों के साथ बेहतर समन्वय।
- वैज्ञानिक अनुसंधान की उपलब्धियों को भूमि (जनसाधारण) स्तर तक ले जाना।
- क्षेत्रीय जनजातियों में आधुनिक ज्ञान, शिक्षा एवं जागरूकता का प्रसार करना।



# पूर्वोत्तर भारत के बांस: विविधता एवं वितरण

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, डॉ कृष्णा गिरी एवं श्री विजय प्रधान  
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

बांस पुष्टीय पादपों के परिवार पोएसी कुल का एक महत्वपूर्ण पादप है, जो कि एक प्रकार की घास है। इसकी उत्पत्ति आज से 55–70 मिलियन वर्ष पूर्व गोंडवानालैंड में हुई थी। वैज्ञानिक रूप से इसे 1753 में दुनिया के सामने कार्ल वान लिनयस लेकर आये। यह दुनिया के सबसे तेज वृद्धि करने वाले पादपों की श्रेणी में प्रथम है, इसकी कुछ प्रजातियाँ एक दिन (24 घंटे) में 121 सेटीमीटर तक बढ़ जाती हैं। जबकि इसकी एक प्रजाति का 24 घंटों में कुल 250 सेटीमीटर तक बढ़ने का रिकार्ड है। लम्बाई के मामले में डेंड्रोकैलैमस जाईगैंटियस की वृद्धि 48 मीटर तक जाती है, जबकि मोटाई में डेंड्रोकैलैमस ग्लोबोसा 30 सेटीमीटर तक जाता है। सौ ग्राम बांस के बीजों में 60.36 ग्राम कार्बोहाइड्रेट और 265.6 किलो कैलोरी ऊर्जा रहती है। यह उष्ण कटिबंधीय जलवायु प्रदेशों से लेकर समशीतोष्ण जलवायु प्रदेशों में अच्छी तरह से उगता है। इसका प्रसार सम्पूर्ण पूर्वी एशिया, उत्तरी आस्ट्रेलिया, अफ्रीका के उप-सहारा क्षेत्रों तथा अमेरिका में दक्षिण-पूर्व अमेरिका से लेकर अर्जेन्टीना तथा चिली तक फैला है। हिमालय क्षेत्र में इसका विविधकरण अन्य जलवायु क्षेत्र से अधिक है। बांस अन्य पेड़ों की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक ऑक्सीजन छोड़ता और कार्बन डाईऑक्साइड ग्रहण करता है। यह मुख्यतः झुंडों में उगता है परंतु बांस की कुछ प्रजातियाँ एकल रूप से भी उगती हैं। यह खोखले से लेकर अर्धठोस या पूर्णता ठोस रूपों में पाया जाता है। बाँसों का पुष्पन वनस्पति जगत की एक रहस्यमय घटना है जो पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है, कालांतर में बाँस का पुष्पन अकाल का घोतक भी माना जाता था परंतु मिज़ोरम में 2006–07 में मेलोकना बसीफेरा प्रजाति में बड़े स्तर के पुष्पन के कुशल प्रबंधन ने इस अवधारणा को असत्य साबित कर दिया। कुछ बांस की पुष्पन अवधि तो 3–4 वर्ष ही होती है तो अधिकतर का पुष्प चक्र 30–60 वर्ष का होता है, परंतु फाइलोस्टीकस बैंबूसाइडेस का पुष्पन चक्र 130 वर्ष रिकार्ड किया गया है। अधिकतर बांस पुष्पन के बाद मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

विश्व में बांस के 1500 से अधिक लिखित उपयोग ज्ञात हैं जिसकी वजह से इसे 'हरित सोना' (Green gold) अथवा 'गरीबों की लकड़ी' (Poor man's timber) के रूप में भी जाना जाता है। यह दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया एवं

पूर्वी-एशिया के सांस्कृतिक जीवन में अत्यधिक महत्व हैं जहां पर यह जीवन के प्रत्येक भाग से पारंपरिक रूप से जुड़ा हुआ है, चाहें वह घर निर्माण की सामाजी के रूप में हो या फिर कपड़ों में इस्तेमाल होने वाले इसके भागों से या फिर खाने की सामग्रियों के रूप में हो। पूर्वोत्तर भारत में यह जीवन के प्रत्येक भाग से जुड़ा है। मिज़ोरम का बाँस नृत्य सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। वर्तमान में तो डिजाइनर क्राफ्ट, हेयर विलप और ग्रीटिंग कार्ड, बांस चारकोल जैसे सामान बांस से बनाए जा रहे हैं। चीन का अंजी प्रांत तो बांस के अधिक उपयोग की वजह से 'बांसों के शहर' के रूप में जाना जाता है। बांसों का इस्तेमाल आजकल जलवायु परिवर्तन की समस्याओं के निदान के रूप में कार्बन के स्थीकरण में आज कल व्यापक रूप से किया जा रहा है। एशिया में इसके 75 वंश एवं 1250 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारत में दुनिया के कुल बाँस का 32 प्रतिष्ठित हिस्सा पाया जाता है जो कि चीन के बाद द्वितीय है। राष्ट्रीय स्तर पर बांस कि कुल अनुमानित हरा वजन 169 मिलियन टन होने का अनुमान है। यहां पर इसकी कुल 136 प्रजातियाँ (125 प्राकृतिक एवं 11 विदेशी) पायी जाती हैं।

पूर्वोत्तर भारत की जैव-विविधता विश्व में अनोखी है, बांस उनमें से एक है, यहां के कुल आठ प्रदेशों (असम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिज़ोरम, त्रिपुरा, मणिपुर, मेघालय, सिक्किम) में बांस जीविका का प्रमुख साधन है। यह यहां के वनों, सीमावर्ती वन क्षेत्रों, बेकार भूमि, कृषि योग्य भूमि एवं घर-बगीचों में पाये / उगाये जाते हैं। देहरादून स्थित भारतीय वन सर्वेक्षण (2011) के अनुसार भारत के कुल बाँस उत्पादन क्षेत्र 139,577 किमी<sup>2</sup> में से पूर्वोत्तर भारत का हिस्सा सर्वाधिक हैं यह है असम (7,238 किमी<sup>2</sup>), अरुणाचल प्रदेश (16,083 किमी<sup>2</sup>), नागालैंड (4,902 किमी<sup>2</sup>), मिज़ोरम (9,245 किमी<sup>2</sup>), त्रिपुरा (3,246 किमी<sup>2</sup>), मणिपुर (9,303 किमी<sup>2</sup>), मेघालय (4,793 किमी<sup>2</sup>), सिक्किम (1,181 किमी<sup>2</sup>)। इसे भारत के बांस के स्वर्ग के नाम से भी जाना जाता है यहां पर देश के कुल बाँसों का 66 प्रतिशत पाया जाता है, यहां इसकी कुल 25 वंश, एवं 111 प्रजातियाँ या तो प्राकृतिक रूप पायी जाती हैं या फिर बाहर से ला कर उगाई गयी हैं, जिनमें से प्रमुख हैं बैंबूसा बालकोआ, बैंबूसा बम्बूस, बैंबूसा नूटन्स, बैंबूसा टुल्डा,



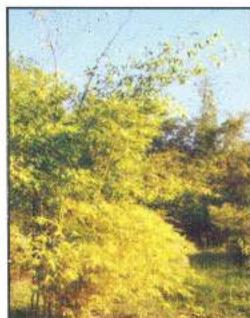
बैंबूसा वलगैरिस  
उपप्रजाति वामिन



बैंबूसा वलगैरिस  
उपप्रजाति स्ट्राटा



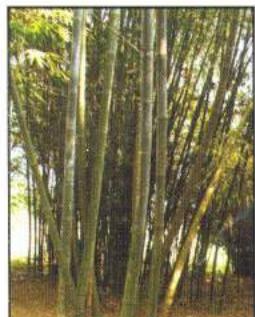
मैलोकेना बैसीफेरा



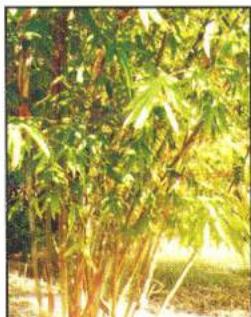
गुआडुया  
अंगुस्टीफोलिया



बैंबूसा टुल्भा



डेंड्रोकैलैमस  
जार्झॉटियस



बैंबूसा बैम्बूस



सासा फॉर्चुनाइ



डेंड्रोकैलैमस  
हैमलटोनाइ



ऑक्सीटेनथेरा  
पारवीफोलिया



बैंबूसा बैम्बूस



डेंड्रोकैलैमस  
सिकिकमेन्सिस



बैंबूसा बालकोआ



बैंबूसा पैलिडा

ऑक्सीटेनथेरा पारवीफोलिया, ओचलनझा ट्रावनकोआ, डेंड्रोकैलैमस हैमलटोनाइ, डेंड्रोकैलैमस लोड्गीस्पाइथस, डेंड्रोकैलैमस जार्झॉटियस, डेंड्रोकैलैमस स्ट्रीक्टस, मैलोकेना बैसीफेरा, सिनरुनडिनरिया मल्लिंग आदि। बांस का एकबहुमुखी एवं अक्षय संसाधन होने की वजह से इसका अत्यधिक मात्रा में दोहन किया जा रहा हैं जिसकी वजह से भूमि अपरदन की समस्या बढ़ रही हैं। वनों से इसके अधिक मात्रा में खाने के लिए नयी कालिका एवं अन्य उपयोगों हेतु दोहन की वजह से इनके पुनर्जनन में समस्या पैदा हो रही हैं, इसका एक कारण अवैज्ञानिक तरीके से बांस के झुरमुटों का कटाव भी हैं दूसरी तरफ उत्तम प्रकार की वृक्षारोपण सामाग्री का अभाव की वजह से बड़ी मात्रा में नये पौधों की आपूर्ति नहीं

हो पाती हैं। यदि यह समस्या भविष्य में भी व्यापक रही तो बाँस आधारित उद्योग-धंधो पर बंदी की समस्या आ जाएगी विशेष कर कागज उद्योग में।

### बांसों का संरक्षण, प्रबंधन एवं भविष्य

- बांस की आर्थिक एवं आनुवांशिक रूप से उपयोगी प्रजातियों के संरक्षण हेतु पूर्वतर भारत के प्रत्येक राज्य के वन विभागों या अनुसंधान संस्थानों में एक बैम्बूसीटम का निर्माण होना चाहिए, जहाँ स्थानीय बांसों की प्रजातियों का संरक्षण किया जा सके एवं जालवायु आधारित बांसों की प्रजातियों का चयन कर उनके वृक्षारोपण को बढ़ावा दिया जा सके।



- बांस के उचित प्रबंधन हेतु उसका वैज्ञानिक ढग से काटना जरूरी हैं, ज्यादा मात्रा में रोपण के लिए ऊतक संवर्धन एवं मैक्रोप्रोपेगेशन की उन्नति तकनीकियाँ आवश्यक हैं। इसके साथ ही बड़े स्तर पर हुए बांस पुष्टन के समय बांस के बीजों का अंतर्राष्ट्रीय बीज मापदंडों के अनुसार भंडारण आवश्यक हैं जिससे बड़ी मात्रा में नये पौधे तैयार की जा सके। यदि योजनाबद्ध और वैज्ञानिक तरीके से इसका वृक्षारोपण होता है तो इससे बांस की मांग और आपूर्ति में संतुलन स्थापित होगा। इस संबंध में भारत स्थित कुछ अनुसंधान संस्थान बांसों के वैज्ञानिक तरीके से कुशल प्रबंधन एवं इनके संरक्षण में कार्य कर रहे हैं जिनमें प्रमुख हैं वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून, वर्षा
- वन अनुसंधान संस्थान जोरहाट, केरल वन अनुसंधान संस्थान एवं राष्ट्रीय बांस मिशन अनुदानित परियोजनाएँ आदि।
- बांस की बाज़ार मांग को देखते हुए वन विभागों में अत्याधुनिक नर्सरियों की व्यवस्था होनी चाहिए जो स्थानीय मांग को पूरा कर सके।
- बांस आधारित कृषि-वानिकी प्रणाली के विकास से अतिरिक्त आर्थिक स्रोतों को उत्पन्न करना।
- मूल्य वर्धित बांस विधायन और आकलन कर उसकी प्रौद्योगिकी का विस्तार करना।



## रोहिडा- मारवाड़ का टीक

डॉ. एन. के. बोहरा तथा डॉ. हेमलता  
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

एवम्

डॉ. सतीश शर्मा  
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

रोहिडा जिसे वानस्पतिक भाषा में टेकोमेला अनुडुलेंटा (स्मिथ) सीमैन कहते हैं, कुल बिग्नोनिएसी परिवार का एक महत्वपूर्ण सदस्य है। मरुस्थल में इमारती लकड़ी और अपने औषधिक गुणों के कारण यह "थार मरुस्थल का मारवाड़ टीक" भी कहलाता है। यह पश्चिमी राजस्थान के मरुस्थली जंगलों और उसकी रीमाओं से सटे हरियाणा क्षेत्र व आस-पास के इलाकों में मिलता है। पश्चिमी राजस्थान में यह सीकर, चूरू, झुन्झुनू, रतनगढ़, छपरा, विधासरध नोखा, जसरासर, नागौर, सादुलपुर व बीकानेर के क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह जोधपुर जिले के मोगरा व हरिछाला, जालौर जिले के देवावास, बाड़मेर जिले के कास्थरी, सिवाना, फूलदी, रावतसर, चौहटान, पोरारियाँ व खारिया कला और अरब व पाकिस्तान के कुछ क्षेत्रों में भी फैला हुआ है। वर्तमान में ईधन व ईमारती लकड़ी के लिए इसकी अंधाधुन्ध कटाई एवं इसकी क्रम प्राकृतिक पुर्ण-अंकुरणता की क्षमता ने इस जाति के वृक्षों की संख्या को बहुत कम कर दिया है तथा यही स्थिति रही तो यह धीरे-धीरे लुप्त हो जायेगा।

रोहिडा एक सदाबहार छोटे आकार का वृक्ष है, जिसका तना टेढ़ा मेढ़ा व डालिया झुकी हुई होती है। इसकी वृद्धि दर बहुत कम होती है। इसकी ऊँचाई 4-8 सेन्टीमीटर प्रति वर्ष तथा तने की मोटाई 50-90 सेन्टीमीटर प्रति वर्ष तक ही बढ़ पाती है। इसके पत्ते प्रायः नवम्बर के प्रथम सप्ताह में झाड़ने शुरू होते हैं तथा मार्च के अन्त तक झड़ते हैं। फरवरी में नये पत्ते आने शुरू हो जाते हैं तथा इस प्रकार इस वृक्ष में कभी भी पूरी पतझड़ नहीं होती है। इसमें फूल आने का समय दिसम्बर से लेकर मध्य अप्रैल के बीच रहता है तथा वृक्ष की टहनियों पर बड़े आकार के सुन्दर व हल्के पीले गहरे संतरी या लाल रंग के फूल खिलते हैं। ये असीमाक्षी पुष्पक्रम में क्रमबद्ध होते हैं तथा प्रत्येक पुष्पक्रम में 8-12 कलिका होती है। इसमें निषेचन स्वपरागण एवं परपरागण दोनों प्रकार से हो सकता है। फल

मई-जून माह में पकते हैं। बीजों की अंकुरण क्षमता पकने के तुरन्त बाद अधिकतम व एक वर्ष बाद शून्य हो जाती है।

इसे उगाने के लिए बीज अथवा ऊतक संवर्धन तकनीक (टिश्यू कल्वर) का उपयोग किया जा सकता है।

बीजों को 2-3 घण्टे ठण्डे पानी में भिगोने पर इनकी अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है। इसकी पौध पोलीथीन के थैलियों में मिट्टी, बालू एवं गोबर की बराबर मात्रा लेकर तैयार की जाती है। इसके बीजों की सामान्यतः जून या जुलाई माह में एकत्र कर तुरन्त बुआई कर दी जाती है तथा 8-9 माह पश्चात् 55 मीटर की दूरी पर वर्षा ऋतु में पुनः रोपित किये जाते हैं।

यह सामान्यतः धीमी गति से बढ़ने वाली प्रजाति है, परन्तु ऊतक संवर्धन (टिश्यू कल्वर) द्वारा इसकी तीव्र वृद्धि एवं उत्पत्ति की जा सकती है। अधिक तने विकसित करने हेतु प्लस ट्री (उपयुक्त वृक्ष) से 8-10 मिलीमीटर की कलिका लेकर उसे भूरासींग या स्कूल माध्यम अथवा अन्य उपयुक्त माध्यम में रखा जाता है। जब इस माध्यम में एन.ए.ए. (पेथेलीन ऐसीटिक ऐसिड) या आई. बी. ए (इन्डोल ब्यूटारिक ऐसिड) नामक वृद्धि हॉर्मोन की 0.5 से 1.0 मिलीग्राम प्रतिलीटर मात्रा डाली जायें तो इसमें जड़ें उत्पन्न हो जाती हैं। इसी प्रकार 2-4 डी एवं आई.ए.ए. डालने पर कैलस की वृद्धि होती है।

**उपयोग :** रोहिडा एक महत्वपूर्ण एवं कीमती लकड़ी वाला वृक्ष है। इसकी लकड़ी सख्त एवं हल्के रंग की होती है जिससे खिलौने, फर्नीचर तथा कृषि उपकरण बनाये जाते हैं। इसकी शाखाओं को ईधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके पत्ते व फल पशुओं के चारे के काम आते हैं तथा फूलों में परागकण की मात्रा अधिक होने से यह शहद प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह कृषि वानिकी के लिए एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रजाति है।



## शुष्क प्रदेशों का बहुपयोगी वृक्ष - कूमठा

डॉ. एन. के. बोहरा, डॉ. डी. के. मिश्रा, श्री प्रेमसिंह सांखला एवं श्री कैलाश चौधरी  
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

कूमठा के स्थानीय नाम से जाने—जाने वाले इस पादप का वानस्पतिक नाम “अकेसिया सेनेगल” है तथा इसे अंग्रेजी में गम अरेबिक ट्री भी कहा जाता है। इससे व्यापारिक महत्व का “गम अरेबिक” (गोंद) प्राप्त होता है। इसका उदगम स्थल भारत का शुष्क एवं उष्ण क्षेत्र एवं अफ्रीका में सूडान तथा सोमालिया माना जाता है। भारत में यह राजस्थान के मरुस्थलीय एवं अर्द्ध-मरुस्थलीय क्षेत्रों पाली, नागौर, अजमेर, सीकर, जयपुर, अलवर आदि ज़िलों में तथा गुजरात के कच्छ तथा दक्षिणी पूर्वी पंजाब में पाया जाता है।

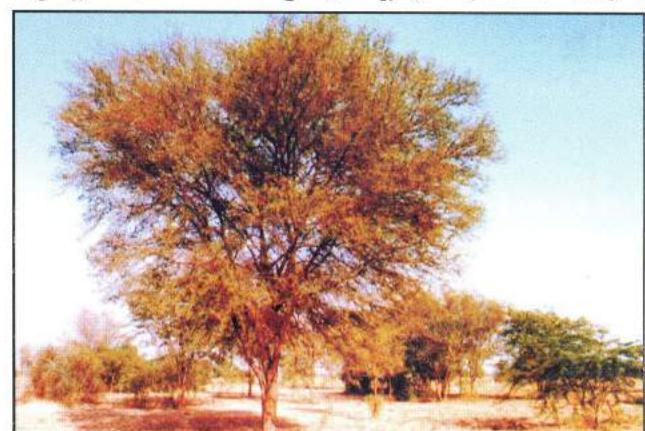
कूमठा मध्यम आकार का कांटेदार वृक्ष है। इसकी छाल हरी होती है तथा इसकी पत्तियां मार्च से अप्रैल तक झाड़ कर अप्रैल से जुलाई तक पुनः आ जाती हैं। इसके फूल अगस्त के मध्य से सितम्बर के मध्य तक आते हैं तथा फली अकटूबर नवम्बर में पकती है। सितम्बर में इसमें सर्वाधिक फूल खिलते हैं तथा इसकी फलियां दिसम्बर से मार्च तक स्वतः ही प्रस्फुटित हो जाती हैं। इसके बीच प्राप्त करने हेतु इसकी पकी हुई फलियों को इकट्ठा कर कूटकर साफ किया जाता है। इसके एक किलोग्राम में करीब 8000 से 10,000 तक बीज होते हैं। कूमठा हेतु 200 से 500 मिमी. वर्षा पर्याप्त होती है परन्तु यह 100 मि.मी. वर्षा में भी पनप सकता है तथा 6 से 8 माह तक सूखा सहन करने की क्षमता भी रखता है। यह जलाक्रांत मृदाओं को छोड़कर शेष सभी प्रकार की मृदाओं (अर्थात् पथरीली, रेतीली, उथली आदि में) उग सकता है।



अकेसिया सेनेगल का वृक्ष

**वृक्षारोपण हेतु विधि :** इसके बीजों को 24 से 48 घन्टे तक पानी में भिगोकर बुआई करने से अंकुरण क्षमता लगभग 60 प्रतिशत तक होती है। इसका अंकुरण 2 से 6 दिन में पूर्ण हो जाता है। पूर्व उपचार के पश्चात इसकी  $12.5 \times 30$  सेमी मिट्टी एवं खाद मिश्रण से भरी थेली में फरवरी माह में बिजाई कर दी जाती है। इसमें समय समय पर सिंचाई निराई, गुड़ाई तथा खाद आदि के प्रयोग से मानसून तक पौधों की ऊंचाई वृक्षारोपण योग्य हो जाती है। निराई, गुड़ाई से बचने एवं परिश्रम तथा मितव्यता हेतु पौधों को जड़ साधकों में तैयार किया जा सकता है। जुलाई के माह में पौधों को गड्ढों में रोपित कर दिया जाता है। रोपण के पश्चात प्रथम वर्ष में 2 या 3 बार खरपतवार, निराई, गुड़ाई आवश्यक होती है तथा नवोदमिद पादपों को सिंचाई की आवश्यकता भी रहती है। सिंचाई के पश्चात मल्च के प्रयोग से तथा मृदा एवं नमी संस्करण की वैज्ञानिक विधियां अपनाकर प्रथम वर्ष में नवोदमिद पौधों की मृत्यु दर को कम किया जा सकता है। इसकी वृद्धि दर शुरू में धीमी होती है तथा करीब तीन वर्ष में यह 1.5 से 5.8 मीटर ऊंचाई प्राप्त करता है। प्रारम्भिक अवस्था में इसकी मरुशियों से चराई रोकने की आवश्यकता होती है क्यों कि इसे बकरी, ऊंट आदि शौक से चरते हैं।

इसका प्राकृतिक तौर पर पुनर्वर्धन आसानी से होता है। प्राकृतिक रूप से बिखरे हुए बीजों से प्रति वर्ष प्रचुर मात्रा में पौधे स्वतः ही उग जाते हैं। कृत्रिम रूप से पौधे तैयार करने हेतु जून माह में बीजों की बुआई कंटूर ट्रेन्च (समोच्च नाली) में



सेनेगल गोंद



अथवा खाई फैसिंग के डोलों पर की जाती है। इस प्रकार से अंकुरित पौधों की बढ़ोत्तरी अच्छी होती है। कूमठा में साधारणतः जानवरों की चराई से अथवा दीमक से प्रारम्भिक अवस्था में नुकसान अधिक होता है। इसके अतिरिक्त इसके भण्डारित बीजों में बीविल का तथा तने पर पॉलिपोरस हिस्पिडस नामक कवक के आक्रमण से भी क्षति पहुंचती है।

**उपयोग:** कूमठा (अकेसिया सेनेगल) की आयु समान्यतः 25 से 30 वर्ष तक होती है तथा इसमें अन्य वृक्ष प्रजातियों की अपेक्षा सूखे एवं अकाल में भी जीवित रह पाने की अपार क्षमता होने के कारण शुष्क परिस्थितियों हेतु एक महत्वपूर्ण एवं बहुपयोगी वृक्ष प्रजातियों में से एक है। इसकी लकड़ी, पत्तियां, बीज एवं गोंद सभी उपयोगी।

- लकड़ी:** इसकी लकड़ी मजबूत एवं लम्बे समय तक उपयोग में आने वाली होती है। इसकी लकड़ी का प्रयोग गाड़ी में पहिये बनाने, खंभे, कृषि के औजार तथा अन्य कार्यों में उपयोगी है। इसकी लकड़ी ईंधन का भी एक अच्छा स्रोत है तथा इसका उष्मीय मान 3200 किलो कैलोरी प्रति किलोग्राम होता है। इसकी मजबूत जड़ों तथा तनों का उपयोग बुनकरों के राटल बनाने में किया जाता है।
- चारा:** इसकी पत्तियां तथा फलियां उत्तम कोटि का पौष्टिक चारा प्रदान करती है। शुष्क भार के आधार पर इसकी पत्तियों में 10.3 प्रतिशत अपरिष्कृत प्रोटीन, 9.5 प्रतिशत अपरिष्कृत रेशा तथा करीब 7 प्रतिशत कैल्सियम एवं अन्य लवण होते हैं।

- बीज:** इसके बीज मरु प्रदेश की विशिष्ट सब्जी "पचकूटा" का एक महत्वपूर्ण भाग है तथा इसमें करीब 65 प्रतिशत प्रोटीन होता है।
- गोंद:** कूमठ के वृक्षों से एक महत्वपूर्ण आर्थिक उत्पाद "गम अरेबिक" प्राप्त होता है जिसका उपयोग शामक के रूप में तथा पायसीकरण में टैक्सटाइल इंडस्ट्रीज में, चमड़ा, पॉलिश, स्याही, औषधि के निर्माण उद्योगों में से किया जाता है। गोंद वृक्षों की छाल की दरारों में से निकलता है। गोंद को प्राप्त करने के लिए तनों में अप्रेल माह में आडे चीरे लगाये जाते हैं एवं लगभग एक माह में इन चीरों में गोद की बुंदकियां बन जाती हैं जिन्हें मई-जून में एकत्रित कर लिया जाता है। एकत्रित करने के पश्चात इसका निष्कर्षण कर अशुद्धियों को दूर कर लिया जाता है। अशुद्धियों को दूर कर छांटा जाता है व निर्यात के लिए भेजने से पूर्व धूप में पकाया जाता है। कूमठ का गोंद रंग में पीला होता है तथा गंधहीन व कसैला होता है। यह 90 प्रतिशत ऐल्कोहल में विलेय नहीं है परन्तु जल में विलेय है भारत में केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान (काजरी) द्वारा विकसित तकनीक से प्रतिवर्ष करीब 500 ग्राम तक गोंद प्रति वृक्ष प्राप्त किया जा सकता है अफ्रीका में करीब 6 वर्ष पुराने वृक्षों से नियमित रूप से गोंद निकाला जाता है।

कूमठ (अकेसिया सेनेगल) शुष्क क्षेत्रों की एक महत्वपूर्ण प्रजाति है। इसकी जड़ों में भी वातावरण से नाइट्रोजन ग्रहण करने वाली गांठों का पता चला है यह नत्रजन स्थिरीकरण में भी सहायक है। यह कृषि वानिकी के अन्तर्गत लगाये जाने वाली एक महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति है।



# गूटी के माध्यम से कदम्ब के परिपक्व वृक्षों का प्रवर्धन

डॉ. संजय सिंह एवं श्री रवि शंकर प्रसाद  
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

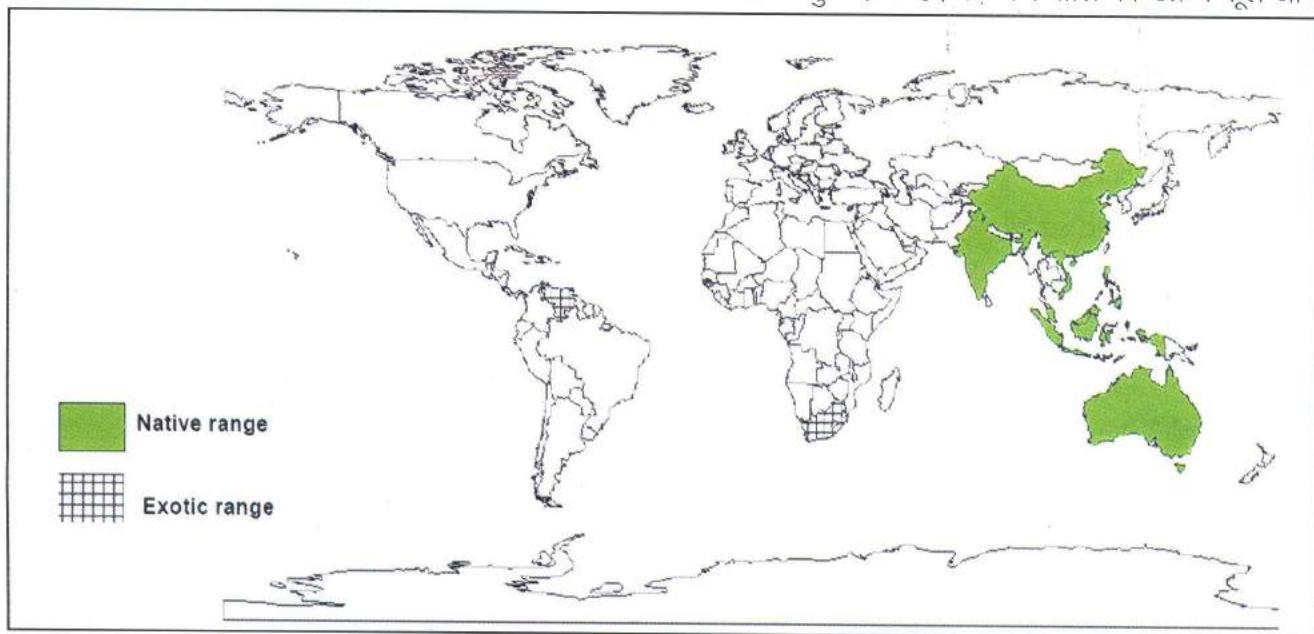
एंथोसिफालस चिनेंसिस (कुल-रुबीएसी; आम नाम—कदम्ब) एक बड़े आकार का पर्णपाती (या कभी कभी सदाबहार) वृक्ष है जो उप हिमालय क्षेत्र में 9 डिग्री से 27 डिग्री उत्तर को अक्षांशों स्वाभाविक रूप से होता है। यह पूर्व की ओर बांग्लादेश को नेपाल से, भारत (असम प्रांत और छोटानागपुर पठार), म्यांमार, श्रीलंका, फिलीपींस, इंडोनेशिया और पापुआ न्यू गिनी में मिलता है। कदंब नदियों के साथ साथ और दलदली क्षेत्रों अक्सर जलोढ़ जमीन, नम, गर्म क्षेत्रों को पसंद करता है। पेड़ का मुख्य तना एक हद तक नियमित, कम या ज्यादा बेलनाकार और सीधा होता है। कदंब अपने मूल सीमा के अंदर और बाहर एक विशिष्ट वृक्षारोपण प्रजाति हैं। यह एक सजावटी और वृक्षारोपण के पेड़ के रूप में लगाया जाता है। यह सफलतापूर्वक कोस्टा रिका, प्यूर्टो रिको, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, ताइवान, वेनेजुएला और अन्य उष्णकटिबंधीय देशों में भी लगाया गया है।

कदम्ब की लकड़ी माचिस की तीलिया, फल तथा चाय के बक्से, बॉबिन, प्लाईयुड और फर्नीचर में प्रयोग की जाती है। इसके लट्ठों से डॉगी, घर की छत और बढ़ई के काम के लिए उपयोग किया जाता है। पत्तियों और छाल में भी

औषधीय गुण होते हैं। हालांकि पेड़ मुख्य रूप से निम्न और मध्यम गुणवत्ता के कागज तैयार करने और लुगदी के लिए प्रयोग किया जाता है। ग्रामीण लोग इसके कच्चे और पके फलों का उपयोग चटनी और आचार बनाने में भी करते हैं। साथ ही वृक्ष की पत्तियों पालतू जानवरों के लिए हरे चारे का अच्छा स्त्रोत है।

लुगदी के लिए 5–7 साल का तथा लकड़ी के लिए 25–35 साल के वृक्ष का उपयोग संभव है। वृक्षहीन क्षेत्र और कृषि वानिकी प्रणालियों में छाया पेड़ के रूप में वनीकरण के लिए कदम बहुत उपयुक्त है। एंथोसिफालस चिनेंसिस एक क्षमता युक्त स्वदेशी, बहुउद्देशीय प्रजाति है जिसे प्रभावी रूप से बड़े पैमाने पर वनीकरण के प्रयासों और वाणिज्यिक बागान में शामिल किया जा सकता है।

कदम्ब की उचित वृद्धि हेतु औसत वार्षिक वर्षा 1400 मि.मी. और औसत अधिकतम तापमान 24–34 डिग्री सेल्सियस है। एक पेड़ 3 महीने का शुष्क मौसम बर्दाश्त कर सकता है परंतु ठंड के प्रति संवेदनशील है। रोपित परिस्थितियों में कदम्ब का बीज उत्पादन आमतौर पर 5 साल की उम्र से शुरू होता है। पेड़ में 4 साल की उम्र में फूल आने





कदम्ब की गूटी बंधी शाख



कदम्ब की गूटी में उत्पन्न जड़

लगता है। फूल अवधि आमतौर पर 2–5 महीने महीने की होती है। भारत में फूल मई जून में शुरू होता है और जनवरी से फरवरी फल आते हैं। जब फल गहरे भूरे रंग में बदल जाते हैं तब बीज परिपक्व हो रहे होते हैं। अच्छी तरह से जमा बीज को 2 साल के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। किन्तु ताजा बीज की अंकुरण दर 25% तक ही होती है।

कदम्ब सामान्य परिस्थितियों में 17.67 मीटर की ऊँचाई और 25.3 से.मी. की गोलाई<sup>9</sup> 9 साल के भीतर प्राप्त कर लेता है। परिपक्व पेड़ ऊँचाई में 20 से 30 मीटर के होते हैं और इनकी गोलाई 50 से 100 सेमी तक हो सकती है। इसकी छाल पतली, हल्के भूरे रंग की और युवा पेड़ों में हरापन लिए चिकनी होती है। पेड़ गर्मी के मौसम के दौरान पत्तों से पूर्णतया या लगभग विहीन हो जाता है।

रोपण एवं व्यावसायिक वानिकी में स्थानीय वृक्ष प्रजातियों का प्रयोग देश में कठिन पर्याप्त ही हुआ है। सामान्यतः बाहर से लायी गई वृक्ष प्रजातियों जैसे यूकेलिप्टस, पॉपलर आदि को ही अपनाया गया। इसका मुख्य कारण उन्नत एवं आसान कार्यिक प्रवर्धन विधियों का उपलब्ध होना रहा है। कदम्ब एक ऐसी भारतीय स्थानीय प्रजाति है जिसमें व्यावसायिक वानिकी में सफल होने के समर्त गुण विद्यमान हैं। कदंब के कार्यिक प्रवर्धन की विभिन्न विधियाँ बताई गयी हैं। हालांकि अधिकांश विधियों से परिपक्व वृक्षों का बड़े पैमाने पर प्रतिरूप गुणन कठिन तथा निरंतर शोध परीक्षण करने की आवश्यकता है।

वन उत्पादकता संस्थान, रांची में हमने गूटी द्वारा कदम्ब के उत्कृष्ट वृक्षों के कार्यिक प्रवर्धन लिए एक प्रक्रिया विकसित की है। गूटी बांधते समय उन शाखाओं का चुनाव

करते हैं जो कम से कम अंगूठे की मोटाई की हो एवं पूरी तरह से स्वस्थ हो। इस में सर्वप्रथम टहनियों से लगभग 2 इंच छाल उतार कर उसे 500 पीपीएम इण्डोल 3 ब्यूटेरिक एसिड और 500 पीपीएम थियमीन – एचसीएल के मिश्रण से उपचारित कर पीट मौस के साथ काले रंग की पालिथीन की सहायता से भली-भांति बांध दिया जाता है। जुलाई अगस्त के दौरान (10–15 साल उम्र के) दस परिपक्व पेड़ों में प्रयोग किया गया था। 45 दिनों के बाद इस उपचार का महत्वपूर्ण प्रभाव जो की > 80% जड़ प्रेरण के रूप में परिलक्षित हुआ। गूटी बांधने पर शत प्रतिशत शाखाओं से नए पौधे का निर्माण इसीलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि कदंब में बीज अंकुरण क्षमता सीमित है। इसके अतिरिक्त मातृ वृक्ष के सारे गुण नए पौधों में आ जाते हैं जो बीज द्वारा तैयार किए गए पौधों में संभवः नहीं हैं।

विकसित की गयी यह प्रक्रिया अधिक जीवित रहने की दर और कदंब के बांधित कुलीन सामग्री का बड़े पैमाने पर कलोन प्रजनन के लिए एक व्यवहार्य विकल्प सिद्ध होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है की इसमें कोई विशिष्ट कलोनिंग क्षेत्र, नियंत्रित पर्यावरण या रुक-रुक कर धुंध की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह एक सरल और किफायती प्रक्रिया है जिसमें उत्पादकता बढ़ाने और आर्थिक लाभ दोनों के तत्व है। वस्तुतः कदम्ब की कलोनिंग का यह नया तरीका आजीविका के मुद्दों को संबोधित करने और अधिक गुणन के माध्यम से अतिरिक्त आय में सक्षम है। कदम्ब की कलोनिंग किसी अन्य प्रक्रिया के माध्यम से संभव नहीं है। प्रस्तुत प्रक्रिया को राज्य वन विभागों, वैज्ञानिकों/प्रजनक, अनुसंधान संस्थानों और निजी कंपनियों (लुगदी, कागज और प्लाईवुड) के बीच प्रसारित किए जाने की आवश्यकता है।

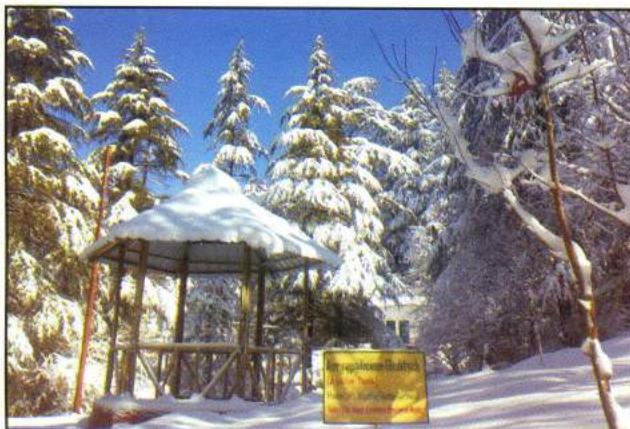


## वृक्षोद्यान का वनस्पति संरक्षण में महत्व

डॉ. वनीत जिष्टू श्री जोगिन्द्र सिंह चौहान एवं श्री धर्म देव  
हिमालयन वन अनुसन्धान संरथान, शिमला

हमारे चारों ओर तेजी से हो रहे बदलावों का सर्वाधिक असर हमारी वसुंधरा की ऊपरी सतह पर महसूस किया जा रहा है। प्राकृतिक वन, कंकरीट के जंगलों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। जैव-विविधता से परिपूर्ण वे जंगल जो एक समय शायद पूरी पृथ्वी को ढके होंगे और अनेक प्रकार की वनस्पति एवं जीव प्रजातियों की आश्रय स्थली रहे होंगे, शनै—शनैः समाप्त होते जा रहे हैं। मानव तथा जीव—जंतुओं के लिए आवश्यक पारिस्थितिक प्रणाली को संतुलित रखने में जैव-विविधता, अहम भूमिका निभाती है। मौसम नियंत्रण, शुद्ध हवा, पानी की उपलब्धता, ईंधन, रेशे, औषधी, खाद्य सुरक्षा तथा प्राकृतिक आपदा से सुरक्षा आदि में भी जैव-विविधता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। लेकिन इन सेवाओं की न तो सही पहचान की जाती है और न ही उनका आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सही आकलन होता है। यह अनुमान लगाना कठिन है कि शेष बची जैव-विविधता का भविष्य क्या होगा जो नियमित रूप से हमारे सामने—सामने नष्ट होती चली जा रही है। जैव-विविधता के ह्लास के सीधे मायने हैं, मानव सभ्यता का विनाश।

स्वस्थ पारिस्थितिक प्रणाली का होना, पहाड़ी जीवन—शैली के लिए विशेषकर महत्वपूर्ण है क्योंकि यहां पर अधिकतर लोग जीवन यापन हेतु प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते हैं। विश्व के अनेक भागों में अनेक प्रकार की प्राकृतिक प्रणालियां, जिन पर लोगों की आजीविका जीवन यापन तथा आर्थिकी निर्भर होती है, वर्तमान में नष्ट होने के कगार पर हैं। यद्यपि प्राकृतिक प्रणाली के असंतुलित होने का कुप्रभाव सभी



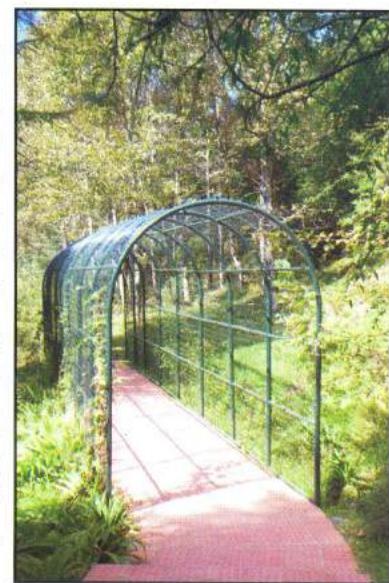
पर पड़ता है परन्तु गरीब इससे सबसे अधिक प्रभावित होता है। यह हमारी सोच तथा नीतियों पर निर्भर है कि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए किस प्रकार का पर्यावरण तैयार करते हैं।

जैव-विविधता संरक्षण मूलतः दो विधियों द्वारा किया जा सकता है। पहली विधि, इनसीटू अर्थात् स्वस्थाने संरक्षण की है और दूसरी, एक्स सीटू संरक्षण अर्थात् अन्य—स्थाने संरक्षण करने से है। इनसीटू संरक्षण वह प्रक्रिया है, जिसमें किसी स्थान की संकटग्रस्त वनस्पति एवं जीव प्रजातियों का उसी स्थान पर संरक्षण किया जाता है। जैव-विविधता की एक्स—सीटू संरक्षण विधि के तहत, किसी संकटग्रस्त वनस्पति एवं जीव प्रजाति का संरक्षण इन प्रजातियों के कुछ भाग को वहां से निकल कर किसी अन्य उपयुक्त स्थान पर ले जा कर विकसित किया जाता है।

एक्ससीटू जैवविविधता संरक्षण की अभी तक ज्ञात सर्वाधिक प्रचलित, परन्तु कठिन विधि भी है। क्योंकि किसी भी प्रजाति को नए स्थान पर ले जाकर उसके लिए पहले जैसा अनुकूल वातावरण तैयार करना वास्तव में कठिन एवं चुनौतीपूर्ण कार्य होता है।

### वृक्षोद्यान का महत्व :

वृक्षोद्यान एक्ससीटू/अन्य स्थाने संरक्षण की एक अनुकूल विधि है। वृक्षोद्यान के माध्यम से विभिन्न मौसमों तथा स्थानों की वृक्ष प्रजातियों, ज्ञाड़ियों तथा काष्ठीय बेलों आदि का संग्रह कर पहले से चयनित उपयुक्त स्थान पर उगाया जाता है। वृक्षोद्यान के द्वारा जहां एक ओर जनन—द्रव्य





(Germplasm) एकत्रित किया जाता है वहीं इनसे उद्यान सम्बन्धी अध्ययन आदि में भी सहायता मिलती है। वृक्षोद्यान के द्वारा दुर्लभ प्रजातियों का अन्य स्थान पर संरक्षण तथा इनका व्यापक स्तर पर प्रजनन जैसे उद्देश्यों की पूर्ति भी होती है। यह विधि इनसीटू/स्वस्थाने संरक्षण की पूरक है। सुव्यवस्थित व सौंदर्यपूर्वक तैयार किए गए वृक्षोद्यान का शैक्षणिक महत्व ही नहीं अपितु जागरूकता पैदा करने में भी अहम भूमिका हैं।

परिभाषा के अनुसार वृक्षोद्यान, वृक्षों, झाड़ियों तथा अन्य वृक्षीय पौधों की प्रजातियां का बाह्य संग्रह है जिससे पौधे योजनाबद्ध तथा सौंदर्यपूर्वक प्रदर्शन हेतु क्रमबद्ध रूप से उगाए जाते हैं तथा इस तरह यह एक जीवित संग्रहालय बन जाता है। हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला से लगभग 7 कि.मी. की दूरी पर समरहिल के समीप पौटरहिल नामक स्थान पर हिमाचल प्रदेश वन विभाग द्वारा स्थापित वृक्षोद्यान इसी का एक उदाहरण है। यह संतोष की बात है कि समुद्रतल से 1750 से 2250 मी. की ऊंचाई तथा 100 हैक्टेयर से अधिक क्षेत्र में फैला वन क्षेत्र, शहरीकरण की मार के बावजूद, आज भी शीतोष्ण वनस्पति तथा जीव-जंतुओं विशेषकर, तितलियों की प्रजातियों को संचय किए हुए है।

भारतवर्ष में इस समय विभिन्न आकार के लगभग 35 वृक्षोद्यान हैं। इसी तरह हिमाचल प्रदेश में छोटे-छोटे वृक्षोद्यान पौटरहिल, शिमला को विशेष रूप से स्थापित किया जा रहा है। यह एक सीटू संरक्षण में महत्वपूर्ण साबित होगा। इन वृक्षोद्यानों में अनेक प्रकार की वनस्पतिक प्रजातियां स्थापित की जा चुकी हैं। 134 पौध-प्रजातियों को अधिकतर शीतोष्ण तथा सम-शीतोष्ण क्षेत्रों से एकत्रित कर पौटरहिल में लगाया गया है। पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिम हिमालय क्षेत्र में एक सीटू सुविधाएं उतनी मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं जितनी होनी चाहिए। वन विभाग हिमाचल प्रदेश के वन्य प्राणी प्रभाग द्वारा हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों के सहयोग से

तैयार की गई एक परियोजना के तहत पौटरहिल के वृक्षोद्यान में स्थानीय तथा अन्य स्थान की संकटापन वनस्पति के संरक्षण एवं विकास पर कार्य किया जा रहा है। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य जीनपूल संरक्षण है। वर्तमान में प्रदेश में अनेक विकासात्मक गतिविधियां तथा पनविद्युत परियोजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रभावित प्रजातियों के पुनर्वास में यह वृक्षोद्यान अहम भूमिका निभा सकता है।

पौटरहिल क्षेत्र प्रकृति पर्यटन के लिए तो पहले से ही प्रसिद्ध है, पर अब यहां पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों की अनेक प्रकार की संकटग्रस्त वनस्पति प्रजातियों को सौंदर्यपूर्वक वैज्ञानिक तरीके से उगाकर वृक्षोद्यान स्थापित किया गया है। हिमालयी शीतोष्ण वृक्ष प्रजाति के लिए भी यह वृक्षोद्यान जीवित भण्डार के रूप में भी परिवर्तित हो जायेगा। यह वृक्षोद्यान इस क्षेत्र की दुर्लभ तथा संकटापन वृक्ष प्रजातियों के संरक्षण में सहायक होगा। यहां पर सदाबहार शीतोष्ण शंकुधारी वन जैसे देवदार, कैल, व चीड़ आदि तथा विभिन्न प्रकार के चौड़ी पत्ती जैसे कि बान, बुरांस, खनोर, चिनार व फलदार वृक्ष कैंथ व नाशपाती के साथ-साथ झाड़ियां व घास के मैदान भी उपलब्ध हैं। यह वृक्षोद्यान स्थापित करने से शोध, शिक्षा व पर्यावरण के प्रति जागरूकता व प्रकृति पर्यटन आदि को बढ़ावा तो मिलेगा ही साथ ही समाज तथा जैवविविधता के मध्य परस्पर संवाद भी स्थापित हो पायेगा। इस प्रकार के वृक्षोद्यान विशेष महत्व रखते हैं क्योंकि यह नाजुक पर्यावरण क्षेत्र में वैश्विक संरक्षण के केन्द्र बिन्दु बन गए हैं। इस संदर्भ में हिमाचल प्रदेश वन विभाग द्वारा पौटरहिल में हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान द्वारा वृक्षोद्यान स्थापित कर उत्तर-पश्चिमी हिमालय क्षेत्र की बहुमूल्य प्रजातियों के संरक्षण की दिशा में एक सराहनीय प्रयास किया गया है। अब इसे पश्चिमी हिमालयन सम-शीतोष्ण वृक्षोद्यान (**Western Himalayan Temperate Arboretum - WHTA**) के नाम से जाना जाता है। इस वृक्षोद्यान के स्थापित होने से पारिस्थितिकी पर्यटन को बहुत बढ़ावा मिलेगा।





## साल बोरर : एक विनाशकारी कीड़ा

डॉ. ममता पुरोहित, आनन्द दास, डॉ. नितिन कुलकर्णी एवं डॉ. एन. रायचौधरी  
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

साल बोरर या साल छिद्रक, कीट जगत के कोलिओप्टेरा वंश के सिरम्बीसिडी कुल का कीड़ा है जिसे सन् 1898 में पहली बार पहचाना गया। इसका वैज्ञानिक नाम होप्लोसिराम्बिक्स स्पिनिकोरेनिस है। यह फिलीपिन्स एवं बोर्मियाँ सुमात्रा से लेकर भारत तक पाया जाता है। भारत में यह अपना जीवन चक्र मुख्य रूप से साल के वृक्षों पर पूरा करता है तथा अरबों रुपये मूल्य के साल वृक्षों को नष्ट कर देता है। एक शताब्दी से अधिक समय बीत जाने के बाद भी कीट वैज्ञानिक इस कीट पर विजय प्राप्त नहीं कर सके हैं। मध्य प्रदेश में लगभग 27,800 वर्ग किलो मीटर क्षेत्र में फैले हुए साल वनों से प्रतिवर्ष लगभग 2.5 लाख घन मीटर काष्ठ, 3.0 लाख घन मीटर जलाऊ लकड़ी, 50 हजार टन बीज तथा काष्ठ के काटने, ढोने और बीज एकत्रीकरण से लाखों आदिवासियों एवं ग्रामीणों को रोजगार मिलता है। वर्ष 1994–97 के दौरान म.प्र. के मंडला जिले में इस कीट ने करोड़ों रुपये मूल के हरे–भरे, ऊँचे–पूरे साल वृक्षों को तबाह कर गरीब आदिवासियों/ग्रामीणों की रोजी–रोटी और सरकार के राजस्व विभाग को तहस–नहस कर दिया। सन् 1997 में मंडला जिले से 1,51,67,938 कीड़े पकड़ा जाना देश के अन्य प्रदेशों में पकड़े गये कीड़ों की संख्या का रिकार्ड है। इसके विनाशकारी तांडव ने सरकार, वैज्ञानियों, कीटविदों, समाज सेवियों, आदिवासियों/ग्रामीणों, आम नागरिक सभी को विचलित कर दिया। परन्तु मानव मस्तिष्क हार मानने वाला नहीं वह निश्चित ही एक दिन इस विनाशकारी कीट का रामबाण हल ढूँढ़ निकालेगा।



**देश में साल बोरर का इतिहास :** स्थानीय आदिवासियों/ग्रामीणों के अनुसार प्रति 30–40 वर्षों के अन्तराल में यह बीमारी फैलती है। भारत में सर्वप्रथम साल बोरर के प्रकोप को सन् 1905 में पश्चिम बंगाल के जलपाइगुड़ी वन मंडल में देखा गया। इसके बाद सन् 1914 में मध्य प्रदेश के मंडला वन मंडल में इस कीड़े का प्रकोप देखा गया तब से अब तक देश के विभिन्न राज्यों जैसे देहरादून, असम, बिहार, हिमाचल प्रदेश आदि में साल बोरर के 25 प्रकरण अभिलेखित हैं।

**साल :** पादप जगत के डिप्टीरोकारपेसी कुल का सदस्य साल सर्वाधिक जैव–विविधता तथा पर्यावरण की दृष्टि से सम–जलवायु और परिस्थितिकी तंत्र बनाने वाला महत्वपूर्ण वृक्ष है। इसका वैज्ञानिक नाम शोरिआ रोबस्टा है। यह 5–15 मीटर तक ऊँचा तथा अर्ध पर्णपाती होता है। साल सदाबहार, अर्ध–सदाबहार, आर्द्र–पर्णपाती वनों एवं शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है।

**भारत वर्ष में साल वन :** भारत की कुल वन सम्पदा का लगभग 20 प्रतिशत साल के वन है जो 1,05,790 वर्ग किलो मीटर क्षेत्र में फैले हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से सर्वाधिक साल वन उड़ीसा (38,300 वर्ग किलो मीटर) तथा सबसे कम हरियाणा (40 वर्ग किलो मीटर) राज्य में पाये जाते हैं। मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के साल वनों का देश में दूसरा (27,800 वर्ग किलो मीटर) स्थान है। (तालिका–1)।

**तालिका–1** क्षेत्रफल (वर्ग किलो मीटर) की दृष्टि से भारत के विभिन्न राज्यों के साल वन

राज्य	क्षेत्रफल
उड़ीसा	38,300
मध्य प्रदेश	27,800
बिहार	21,410
उत्तर प्रदेश	5,710
पश्चिम बंगाल	5,700
असम	5,310
मेघालय	650
त्रिपुरा	500
हिमाचल प्रदेश	370
हरियाणा	40



**उपयोग :** साल वृक्ष व इसके उत्पादों के महत्वपूर्ण उपयोग इस प्रकार हैं :

1. इसकी काष्ठ निर्माण कार्यों, रेलवे स्लीपर, जहाज, पुल, चौखट, पोल, बीम, रापर्टर्स, रेलिंग, कृषि—उपकरण बनाने तथा खदान कार्यों में काम आती है।
2. वृक्ष से प्राप्त रेजिन जिसे राल, साल डामर या धूमा कहते हैं का उपयोग अगरबत्ती, धूप, वार्निश, पेन्ट आदि बनाने में किया जाता है।
3. ओलियो रेजिन का उपयोग पेपर, कार्बन पेपर, टाईपिंग रिबन आदि बनाने में किया जाता है।
4. बीजों में 12–19 प्रतिशत तेल पाया जाता है जो साबुन उद्योग तथा रोशनी करने में काम आता है।
5. वसा का उपयोग जूता पालिश बनाने में किया जाता है।
6. वसा से कुछ अवयव निकालकर साल बटर या कोको बटर बनाया जाता है जिसका उपयोग बिस्कुट, चाकलेट आदि बनाने में होता है।
7. छाल, टेन के रूप में उपयोग की जाती है तथा बोर्ड और सेल्यूलोज के उत्पादन में काम आती है।
8. पत्तियाँ बीड़ी बनाने और चारे के काम आती हैं।
9. राल को औषधीय रूप में आँव, अपचन, गोनीरिया आदि रोंगों के उपचार में उपयोग करते हैं।
10. ताप क्षमता 5433 केलोरी होने से उत्तम जलाऊ लकड़ी है।
11. साल वृक्ष लाख कीटों के तथा फूल मधु मक्खियों के आश्रय स्थल है।

**साल बोरर/छिद्रक:** साल बोरर (होलोसिराञ्जिक्स स्पिनिकोरनिस) काला या काला भूरा तथा 3 से 7 से.मी. लम्बा होता है। नर व मादा कीटों को आसानी से पहचाना जा सकता है। नर, लम्बाई में मादा से छोटा होता है जिसकी औसतन लम्बाई 33.0 मि.मी. जबकि मादा 34.0 मि.मी. होती है। नर कीट का एन्टीना शरीर से लम्बा, लगभग 44.0 मि.मी. लम्बा तथा कई भागों में बंटा होता है। मादा कीट का एन्टीना शरीर से छोटा तथा लगभग 32.0 मि.मी. होता है। नर तथा मादा कीट के शरीर को 3 भागों—सिर, प्रोथोरेक्स तथा उदर में बांट सकते हैं। सिर में मजबूत मैन्डेबिल्स होते हैं। इसका मुख इतना मजबूत होता है कि यदि ये हमारी उंगली पकड़ ले तो खून निकाल सकते हैं। व्य्रक कीड़ों की औसत आयु 20 से 30 दिन होती है परन्तु बाहर का तापमान अधिक और वायुमण्डल शुष्क होने पर कीड़े शीघ्र ही मर जाते हैं। नियंत्रित परिस्थितियों में नर कीट की अधिकतम आयु 49 दिन व मादा कीट की 38 दिन पायी गयी है। ये 15 दिन तक बिना भोजन पानी के रह सकते हैं।

**कीट क्रियाशीलता :** साल बोरर प्रायः दोपहर 12 बजे से सायं 6 बजे तक जब गर्मी अधिक होती है, ज्यादा क्रियाशील

होते हैं। बादल या हल्की वर्षा में उड़ते हुए ये बहुत दूरी तय कर लेते हैं परन्तु इनकी उड़ान 4–6 मीटर से ज्यादा ऊंची नहीं होती है।

**साल बोरर का जीवन चक्र :** अन्य कीटों की तरह इस कीट के जीवन चक्र में भी चार अवस्थायें पायी जाती हैं। इसमें से तीन अवस्थायें (अंडा, लार्वा, प्यूपा) वृक्ष के अन्दर तथा चौथी अवस्था (वयस्क) वृक्ष के बाहर रहती है।

**अण्डा :** अण्डे चावल के दानों सदृश्य हलके सफेद, पीले अथवा पीले-लाल रंग के, चमकीले तथा सतह पर जालीकावत, लगभग 3.2 मि.मि. लंबे तथा 1.2 मि.मि. तक चौड़े होते हैं जिन्हे नग्न आखों से देखा जा सकता है।

**लार्वा (इल्ली) :** मौसम अनुकूल होने पर सामान्यतया 3 से 7 दिनों के अन्दर प्रायः 75 प्रतिशत अण्डे सफेद रंग की इल्लियों में परिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु गर्म और शुष्क मौसम में 4–5 घंटे में ही अण्डे नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार लगातार 100 प्रतिशत आद्रता बनी रहने पर अण्डों में फफूंदी लग जाती है और अधिकांश अण्डे मर जाते हैं। एक वृक्ष में इल्लियों की संख्या 50–1500 या अधिक भी हो सकती है। इल्लियाँ स्वयं के पोषण के लिए सैपवुड में पहुँचकर पानी और भोज्य पदार्थ संवहन करने वाले उत्तकों को खाकर नष्ट करने लगती हैं जिससे छत्र सूखने लगता है। इल्लियों के सैपवुड में पहुँचने पर तने में कई स्थानों से राल बाहर निकलने लगती है। जो साल बोरर के आक्रमण को दर्शाती है। धीरे-धीरे इल्लियाँ सैपवुड में छेद करते हुए हार्डवुड में पहुँच जाती हैं तथा वहाँ के उत्तकों को नष्ट कर पर्याप्त मात्रा में बुरादा बाहर फेंकने लगती है। 'बुरादा फेंकने का कार्य अगस्त-सितम्बर से मार्च तक चलता है जिसे वृक्ष के नीचे आसानी से देखा जा सकता है। फरवरी-मार्च तक इल्लियाँ औसतन 5.5 से.मी. लम्बी तथा 1.0 से.मी. तक मोटी हो जाती हैं। कभी-कभी इनकी लम्बाई 12.0 से.मी. तथा मोटाई 2.0 से.मी. तक हो जाती है।

**प्यूपा :** माह फरवरी-मार्च में जब इल्लियाँ काफी बड़ी-बड़ी हो जाती हैं तब इनके आकार में परिवर्तन होने लगता है। ये सिकुड़ कर छोटी होने लगती है तथा प्यूपा में बदलने लगती हैं। प्यूपा में बदलने से पूर्व शत्रुओं से स्वयं की रक्षा के लिए मुख से कैल्सियम कार्बोनेट का ऊब कर अपने चारों ओर एक खोल बना लेती है जिसे प्यूपल कक्ष कहते हैं। प्यूपल कक्ष के निर्माण के साथ-साथ वयस्क कीट के रूप में बाहर निकलने के लिए वृक्ष में छिद्र भी बनाती है जिसे वृक्ष के कचरे से बंद कर देती है। प्यूपा में बदल कर निष्क्रिय अवस्था में कुछ दिनों तक आराम करती है। प्यूपल कक्ष प्रायः तने में छिद्र से लगे हुए खड़ी स्थिति में रहते हैं।



**वयस्क कीट :** माह मई–जून में प्यूपा वयस्क कीड़े में परिवर्तित होने लगता है। यह प्यूपल कक्ष में रहकर छाल के अन्दर के भाग का रस चूसता है तथा वृक्ष से बाहर निकलने के लिए वर्षा प्रारंभ होने की प्रतिक्षा करता है। मध्य प्रदेश में वर्षा प्रायः 15 जून से प्रारंभ हो जाती है। वृक्ष से सभी कीड़े एक साथ बाहर नहीं निकलते हैं बल्कि वर्षा प्रारंभ होने के साथ 15 जून से 15 अगस्त तक कीड़ों के बाहर निकलने का क्रम जारी रहता है। वृक्ष से बाहर निकलते समय नर तथा मादा कीट का अनुपात भी अलग—अलग रहता है। बाहर निकलकर नर तथा मादा कीट आपस में मिलकर पुनः जीवन चक्र शुरू करते हैं।

**निषेचन एवं अण्डा देने की प्रक्रिया :** यह देखा गया है कि मिलने से पहले नर तथा मादा कीट कुछ समय तक साथ—साथ रहते हैं। प्रायः बड़े आकार के नर कीट छोटे आकार के नर कीटों को मादा कीटों के पास नहीं आने देते। नर कीटों में आपस में लड़ाई भी हो जाती है। जिससे इनके एन्टीना तथा पैर टूट जाते हैं। मादा कीट निषेचन के 7–8 दिन पश्चात अण्डा देना शुरू करती है। एक दिन में अधिकतम 180 अण्डे देती है तथा पूरी जीवन अवधि (20 से 30 दिन) में 300 तक अण्डे दिये जाते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से अण्डे प्रौढ़, गिरे पड़े या कमज़ोर वृक्षों की खुरदरी, कटी—फटी, छिप युक्त छाल में दिये जाते हैं। यदि अण्डे चिकने तनों पर दे दिये गये हैं तो मादा कीट बाद में उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देती है। मादा कीट द्वारा अण्डे देने की प्रक्रिया वातावरण पर निर्भर करती है। कीट विज्ञानियों के अनुसार 28 डिग्री से.ग्रेड तापमान और 90 प्रतिशत आद्रता अण्डा देने के लिए सबसे अनुकूल है। मिलन व अण्डा देने के पश्चात नर तथा मादा कीट मर जाते हैं।

**कौन से वृक्षों में कीटों का आक्रमण होता है :** अध्ययनों से पता चला है कि 30 से.मी. से कम तथा 200 से.मी. से अधिक गोलाई वाले वृक्षों में आक्रमण नहीं होता है जबकि 70.00 से.मी. गोलाई वाले वृक्ष प्रभावित हो जाते हैं।

**वृक्षों में आक्रमण कहाँ होता है :** कीट द्वारा वृक्षों के तने पर आक्रमण किया जाता है परन्तु तने की लम्बाई में समान रूप से आक्रमण नहीं होता। वृक्ष के सबसे नीचे का 3 से 5 मीटर तक का हिस्सा अप्रभावित या बहुत कम प्रभावित होता है, 5 से 8 मीटर तक मध्यम आक्रमण तथा 8 मीटर से ऊपर सबसे अधिक आक्रमण होता है। शाखाओं तथा उन भागों में जहाँ सार काष्ठ नहीं है, आक्रमण नहीं होता है।

**कीट प्रभावित वृक्षों के लक्षण :** साल के कीट प्रभावित वृक्षों को इस प्रकार पहचान सकते हैं :

1. वृक्षों का तना तथा छत्र सूखने लगता है।
2. पत्तियाँ भूरी हो जाती हैं तथा सूखकर गिर जाती हैं।
3. शाखायें पर्णविहिन तथा भूरी—भूरी हो जाती हैं।
4. वृक्ष के नीचे बुरादे का ढेर लग जाता है।

**संक्रमणित क्षेत्र या महामारी :** जब कीड़े के आक्रमण से साल के अधिक वृक्ष मरने लगते हैं तब इस प्रकोप को संक्रमण कहते हैं। इसका आधार यह माना गया है कि यदि कुल वृक्षों की संख्या के एक प्रतिशत से अधिक वृक्ष प्रभावित होते हैं तो उस क्षेत्र को संक्रमणित क्षेत्र कहते हैं प्रायः 1 या 2 प्रतिशत से कम संक्रमण होने पर न तो पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव होता है न ही वन क्षेत्र में रिक्त स्थान बनते हैं। परन्तु अधिक वृक्ष प्रभावित होने पर वनों के घनत्व में परिवर्तन हो जाता है। जिससे पुनरुत्पादन कार्य करना आवश्यक हो जाता है।

**अधिक प्रभावित होने वाले वन क्षेत्र :** गाँव के निकट, पठारी, ढलानी एवं घाटी क्षेत्रों में आक्रमण की तीव्रता अलग—अलग होती है।

**गाँव के निकटवर्ती वन क्षेत्र :** गाँव के निकटवर्ती साल वृक्ष अधिक प्रभावित होते हैं क्योंकि गाँव के पास अधिक चाराई होने के कारण भूमि ठोस हो जाती है जिससे पुनरुत्पादन कम होता है वृक्षों की वृद्धि ठीक से नहीं हो पाती तथा जीवन शक्ति भी कम हो जाती है। अतः कीट द्वारा आसानी से प्रभावित हो जाते हैं। घरों में संग्रहित कीट प्रभावित जलाऊ लकड़ी से निकलने वाले कीड़े निकटवर्ती वृक्षों पर आक्रमण करते हैं।

**पठारी तथा ढलानी वन क्षेत्र :** पठारी भूमि में पाये जाने वाले वृक्षों की जीवन शक्ति तथा गुण श्रेणी ढलानी तथा घाटी में पाये जाने वाले वृक्षों से अपेक्षाकृत कम होती है इसलिए ये वन अधिक प्रभावित होते हैं।

**आक्रमण की तीव्रता का अनुमान :** तीव्रता का आकलन इस प्रकार करते हैं :

1. माह जुलाई—अगस्त में वृक्षों से बाहर निकलने वाले कीड़ों की संख्या से।



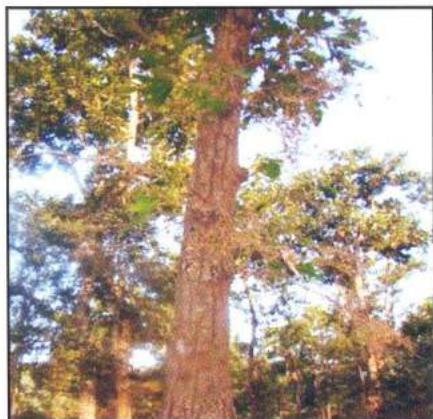
टी. - 1 श्रेणी के साल वृक्ष



टी. - 2 श्रेणी के साल वृक्ष



टी. - 3 श्रेणी के साल वृक्ष



टी. - 4 श्रेणी के साल वृक्ष



टी. - 5 श्रेणी के साल वृक्ष



टी. - 6 श्रेणी के साल वृक्ष

2. माह जून-जुलाई में इंडिकेटर ट्रेप लगाकर ट्रेप में आये कीड़ों की संख्या से।
3. ट्रेप ट्री आपरेशन में प्रति ट्रेप निश्चित समय में पकड़े गये कीड़ों की संख्या से।

उदाहरण स्वरूप मंडला जिले में वर्ष 1996 में प्रति व्यक्ति प्रति 3-4 घंटे में 60 से 80 कीड़े पकड़े गये जबकि वर्ष 1997 में यह संख्या 200 से 250 थी।

**आक्रमण की तीव्रता बढ़ने के कारण :** साल बोरर, साल वनों में ही पाया जाता है परन्तु महामारी के रूप में कहीं-कहीं ही फैलता है। कीट विज्ञानियों के अनुसार महामारी फैलने के कुछ कारण इस प्रकार हैं:

1. **आर्द्रता :** वायुमंडल की 90-91 प्रतिशत आद्रता में सर्वाधिक अंण्डे (300 से 465 तक) दिये जाते हैं।
2. **तापमान :** यदि माह जुलाई-अगस्त में मौसम शुष्क है तो मादा कीट द्वारा अंण्डे नहीं दिये जाते हैं तथा तापमान बढ़ने पर दिये हुए अंण्डे भी नष्ट हो जाते हैं।
3. **वृक्ष की आयु तथा स्वास्थ्य :** प्रौढ़ तथा अति प्रौढ़ वृक्ष कटी-फटी छिद्र युक्त खुरदुरी छाल होने से आसानी से

प्रभावित हो जाते हैं जबकि अल्प आयु के चिकने तने वाले वृक्ष कीट के आक्रमण से बच जाते हैं।

**अन्य वृक्ष प्रजातियों की उपस्थिति :** वन में अन्य प्रजातियों का अनुपात अधिक होने पर साल वृक्षों में आक्रमण शुद्ध साल वनों की अपेक्षा कम होता है।

4. **कीड़ों की जीवन अवधि :** कीड़ों की जीवन अवधि और अंण्डे देने की प्रक्रिया मौसम पर निर्भर करती है। अधिक तापमान व शुष्क मौसम में कीट और अण्डे मर जाते हैं।
5. **जैविक दबाव :** अत्याधिक चराई से भूमि ठोस हो जाने के कारण पुनरुत्पादन कम होता है, वृक्षों की वृद्धि अच्छे से नहीं होती तथा जीवन शक्ति कम हो जाती है जिससे ये आसानी से प्रभावित हो जाते हैं।
6. **नियंत्रण कार्य बंद होने से :** ट्रेप ट्री आपरेशन, इंडिकेटर ट्रेप, प्रभावित वृक्षों का वन से बाहर निकालना आदि कार्यों के बंद हो जाने से।
7. **सुरक्षा के उपाय :** कीट आक्रमण से साल वृक्षों की सुरक्षा के उपायों को 3 भागों में बांटा जा सकता है:



### अ. प्राकृतिक उपाय : प्रकृति में कीड़ों की संख्या निम्नलिखित उपायों से नियंत्रित होती है :

**स्वयं वृक्ष द्वारा :** इल्ली के सेपवुड में पहुँचते ही वृक्ष कई स्थानों पर राल निकालने लगता है। जिसमें डूबकर इल्लियां मर जाती हैं। राल की मात्रा वृक्ष की आयु, वृद्धि दर तथा जीवन शक्ति पर निर्भर करती है। परन्तु एक वृक्ष में अधिक स्थानों पर आक्रमण होने से वृक्ष को अधिक स्थानों पर राल निकलना पड़ती है ऐसी स्थिति में स्वस्थ्य व अच्छी वृद्धि वाला वृक्ष भी पर्याप्त मात्रा में राल नहीं निकाल पाता और राल निकालने की क्षमता धीरे-धीरे कम हो जाती है जिससे बची हुई इल्लियां वृक्ष को मार देती हैं।

**परभक्षी (प्रिडेटर्स), परजीवी (पेरासाइट्स) तथा रोगाणु (पेथोजन्स) की उपस्थिति :** वनों में साल बोरर को हानि पहुँचाने वाले अनेकों परभक्षी, परजीवी एवं रोगाणु प्राकृतिक रूप में पाये जाते हैं जो इसकी संख्या को नियंत्रित रखते हैं जिससे आक्रमण अधिक फैल नहीं पाता उदाहरण स्वरूप ऐलिस सर्डिङ्स की इल्ली साल बोरर की लगभग 10 प्रतिशत इल्लियों को खा जाती है। कठफोड़वा भी इस कीट की इल्लियों को खाता है।

### ब. प्रबन्धन उपाय : निम्नलिखित सावधानियां कीड़ों की संख्या बढ़ने नहीं देती :

- प्रतिवर्ष माह दिसम्बर से मार्च तक ऐसे वृक्षों की गणना जिससे राल या बुरादा निकल रहा है, मर गए हैं या मरने वाले हो, हो जानी चाहिए क्योंकि कीड़ों द्वारा बुरादा अक्टूबर से मार्च तक निकाला जाता है जो हवा से उड़ जाता है या वर्षा में बह जाता है।
- गणना पश्चात् माह जनवरी-फरवरी में उपरोक्त वृक्षों को वन क्षेत्र से बाहर निकाल देना चाहिए क्योंकि अण्डे देने के लिए मादा कीट ऐसे ही वृक्षों को चुनती है।
- साल वनों में अन्य वृक्ष प्रजातियों की वृद्धि को बढ़ावा देना चाहिए क्योंकि यह कीट इन प्रजातियों के साथ-साथ साल वृक्षों को भी कम हानि पहुँचाता है।
- वृक्षों का घनत्व अधिक होने से आक्रमण तेजी से फैलता है अतः विरलन पर ध्यान देना चाहिए।
- माह जुलाई-अगस्त में कटाई नहीं करनी चाहिए। इस समय कटाई करने से वृक्ष का रस कीड़ों को आकर्षित करता है क्योंकि इसी समय वयस्क कीट वृक्ष से बाहर निकलते हैं और उन्हें प्रजनन में सहायता मिलती है।

### स. नियंत्रक उपाय : कीट विज्ञानियों द्वारा महामारी को फैलाने से रोकने के लिए निम्नलिखित कार्य करने के निर्देश दिये गये हैं :

- ट्रेप ट्री आपरेशन द्वारा कीड़े पकड़ना :** यह विधि साल बोरर द्वारा साल के रस को भोजन के रूप में पसंद किये जाने के आधार पर विकसित की गई है। इस विधि में माह जुलाई के प्रथम सप्ताह में 60 से 90 से.मी. गोलाई वाले वृक्षों को काटकर गिरा देते हैं तथा इन वृक्षों से 2-3 मीटर लम्बे लट्ठे बनाते हैं। आक्रमण अधिक होने पर प्रति हेक्टेयर 1 या 2 वृक्ष कीड़े पकड़ने के लिए काटे जाते हैं। रस निकालने के लिए इन लट्ठों के दोनों सिरों की एक 1-1 फुट छाल को कुल्हाड़ी से कूटते हैं जिससे रस निकालने लगे तथा कूट कर पत्तों से ढक देते हैं। लट्ठों कूटने का काम शाम को किया जाता है क्योंकि कीड़े रात में बाहर निकलते हैं। कुल्हाड़ी से कुटे भाग के रस का प्रभाव 5-7 दिन बाद समाप्त हो जाता है। अतः एक सप्ताह बाद पुनः उसी लट्ठे के बिना कुटे भाग को दोनों सिरों पर 1-1 फुट कूटते हैं। रस की सुगंध से 1 किलो मीटर दूर के कीड़े भी 4-5 मिनिट में ही उड़कर वृक्ष के पास पहुँच जाते हैं तथा रस पीकर इतने मदहोश हो जाते हैं कि उंक मारने की स्थिति में नहीं रहते। मदहोश कीड़ा सूर्य की रोशनी पड़ते ही उड़कर छुप जाता है इसलिए कीड़े सुबह 4-5 बजे पकड़े जाते हैं। कीड़ों के दोनों एन्टीना पकड़कर सिर कुल्हाड़ी से काट देते हैं, क्योंकि जीवित कीड़ा पोलीथीन की थैलियों को काटकर उड़ जाता है। सिरों को पंचनामा के बाद जलाकर नष्ट कर देते हैं। ट्रेप ट्री ऑपरेशन तब तक लगातार चलते रहना चाहिए जब तक कि कीड़ों की संख्या लगातार 3 दिनों तक शून्य न आ जाए। ट्रेप कार्य समाप्त हो जाने के बाद इन लट्ठों को वन क्षेत्र से तुरन्त अलग कर देना चाहिए क्योंकि मादा कीट इनमें अण्डे दे देती है।
- प्रभावित वृक्षों को काटकर वन क्षेत्र से बाहर निकालना :** एक वृक्ष में औसतन 300 से 1000 तक कीड़े होते हैं अतः इन वृक्षों को काटकर वन क्षेत्र से बाहर निकालने से वनों में कीड़ों की संख्या में कमी होगी।
- रूठ जलाना :** प्रभावित वृक्षों को काट देने के पश्चात बचे हुए रूठ तथा जड़ों में पायी जाने वाली इल्लियों को नष्ट करने के लिए रूठ पर काष्ठ अवशेषों को इस तरह रखकर जलाना चाहिए कि समस्त रूठ जल जाए क्योंकि बाहर से रूठ जल जाने पर भी अन्दर इल्लियां जीवित रहती हैं।



4. वन विभाग द्वारा श्रमिकों की सहायता : वन विभाग द्वारा कीड़े पकड़ने वाले श्रमिकों को आवश्यक जानकारी तथा सामग्री जैसे जूता, टार्च, पोलीथीन, बैग, कुल्हाड़ी आदि एवं प्रथम उपचार दवाईयां प्रदान की जानी चाहिए।

मध्य प्रदेश में साल बोरर से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाये : वर्ष 1994–95 में साल बोरर का भीषण प्रकोप मंडला जिले में देखा गया तथा ट्रेप ट्री आपरेशन द्वारा 1,51,67,938 कीड़े पकड़ने एवं मारे गये। वन विभाग द्वारा कीड़े पकड़ने वालों की प्रति कीड़ा 75 पैसे की दर से भुगतान किया गया। महामारी फैलाने से वृक्षों की अंधाधुंध कटाई को रोकने के लिए दिनांक 7–8 नवम्बर 1997 को वन अधिकारियों, कीट वैज्ञानिकों तथा वन्य प्राणी विशेषज्ञों द्वारा कार्यशाला आयोजित कर कार्ययोजना बनाई गई जिसके तहत 31,40,720 वृक्ष प्रभावित पाये गये एवं 22,95,115 वृक्षों को काटा जाना तय हुआ। इतनी बड़ी संख्या में वृक्ष काटे जायेगे इस बात पर भारत सरकार द्वारा महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून की अध्यक्षता में समिति का गठन किया

गया जिसने मध्य प्रदेश, वन विभाग द्वारा किये जा रहे कार्यों को उचित ठहराया परन्तु जनवरी, 1998 में माननीय पर्यावरण एवं वन मंत्री, भारत सरकार द्वारा कटाई पर रोक का निर्णय लिया गया तथा टार्क फोर्स एवं स्टीयरिंग कमेटी गठित की गई जिसकी अनुशंसाओं पर विचार कर श्रेणी 1,2,3, एवं 6 के वृक्षों को काटने की अनुमति दी गई परन्तु फरवरी, 1998 में माननीय उच्चतम न्यायालय, दिल्ली ने सभी श्रेणियों के वृक्षों की कटाई पर रोक लगा दी। मार्च 1998 में माननीय उच्चतम न्यायालय, दिल्ली द्वारा प्रकरण की पुनः सुनवाई पश्चात निदेशक, उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर की अध्यक्षता में समिति गठित की गई जिसने चिन्हांकन पश्चात् श्रेणी 1, 2, एवं 6 के वृक्षों को काटने व वन क्षेत्र से बाहर निकालने के निर्देश दिये।

वर्तमान में भी मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ से साल वनों में एक विनाशकारी कीट की उपस्थिति दर्ज की जा रही हैं एवं उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर वन विभाग, मध्य प्रदेश एवं वन विभाग, छत्तीसगढ़ के साथ मिलकर इस कीट के व्यवस्थापन हेतु कार्य कर रहा है।



# प्रदर्शन ग्राम परसवारा-जमतरा, जबलपुर (म.प्र.) में जैव तकनीक ‘वर्मीकम्पोस्टिंग’ का प्रचार - प्रसार

डॉ. ममता पुरोहित, श्रीमती नीलू सिंह, डॉ. पी.बी. मेश्राम, डॉ. ननीता बेरी एवं डॉ. नितिन कुलकर्णी  
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

कृषि प्रधान देश भारत, विश्व की प्रमुख कृषि अर्थव्यवस्था भी है। हमारे देश की 60 प्रतिशत जनसंख्या को कृषि से ही रोजगार मिलता है। देश की 69 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गाँवों में ही रहती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पहली हरित क्रान्ति के आधार आधुनिक कृषि तकनीक, उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों ने खाद्यान की दृष्टि से हमारे देश को आत्मनिर्भर बना दिया परन्तु रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध उपयोग से मृदा में खतरनाक कृषि रसायनों की दीर्घकालिक उपस्थिति ने मिट्टी के जैविक, रासायनिक व भौतिक स्वरूप को विकृत कर न केवल इसकी उर्वरा शक्ति को कम किया बल्कि पूरे मृदीय परिस्थितिक तंत्र को दूषित कर दिया जिसका प्रभाव मृदा में उपस्थित लाभदायक जीवांश, फसलों की गुणवत्ता, जल स्त्रोतों, पशु-पक्षियों व मानव स्वास्थ्य पर्याप्त भी पड़ा। मृदा की प्राकृतिक संरचना को पुनः स्थापित कर मृदा प्रदूषण को रोकने व भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक, योजना विशेषज्ञ व पर्यावरणविद ऐसी पर्यावरण हितकारी कृषि पद्धतियों की ओर उन्मुख हुए हैं जो रासायनिक प्रदूषण से मुक्त व रोजगारोन्मुख भी हो।

उपरोक्त सभी बिंदुओं को ध्यान में रखकर जबलपुर स्थित उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान ने ग्राम-परसवारा-जमतरा, ग्राम पंचायत-जमतरा, थाना-गुरैया घाट, जिला-जबलपुर के किसान भाईयों के साथ संस्थान के सभागार में एक बैठक का आयोजन किया। बैठक में किसानों को बताया गया कि संस्थान द्वारा आधुनिक कृषि पद्धतियों को किसानों तक पहुँचाने के लिये ग्राम-परसवारा-जमतरा का चयन किया गया है, जिससे कृषि भूमि सुधार के साथ-साथ लघु एवं मध्यम वर्गीय किसानों के आर्थिक स्तर को भी बढ़ाया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रथम चरण में केंचुआ खाद निर्माण के लिये प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर पांच किसानों के यहाँ संस्थान द्वारा निःशुल्क वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ खाद) इकाइयाँ बनवायी जायेगी। द्वितीय चरण के कार्यान्वयन के लिये किसानों से सीधे जुड़कर उनकी सहमति से आधुनिक तकनीकों का विस्तार किया जायेगा। जिससे भूमि की उर्वरता और उत्पादन वृद्धि का सीधा लाभ किसानों को मिल सके। इस द्वितीय चरण में ग्राम-परसवारा-जमतरा का सामाजिक

एवं आर्थिक सर्वेक्षण कर केंचुआ खाद तकनीक का उपयोग करते हुए, नगद फसल के रूप में हल्दी लगाने हेतु दस किसानों के खेतों का चुनाव किया जाएगा।

केंचुआ खाद के प्रचार-प्रसार के प्रारूप (माडल) के अनुसार संस्थान द्वारा प्रत्येक केंचुआ खाद इकाई वाले किसान से केंचुआ खाद क्रय कर नगद फसल हल्दी लगाने वाले अन्य दो किसानों को निःशुल्क उपलब्ध कराना था, जिससे केंचुआ खाद इकाई व नगद फसल लगाने वाले दोनों किसान न केवल आर्थिक रूप से लाभान्वित होंगे अपितु केंचुआ खाद के उपयोग द्वारा होने वाले फायदों को समझ कर इसके प्रचार-प्रसार में भी सहयोग करेंगे। बैठक में किसान भाइयों को रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से भूमि के बंजरीकरण, भूमि में उपस्थित लाभदायक जीवांश का नाश, पर्यावरण प्रदूषण, फल, अनाज, साग-सब्जी की गुणवत्ता में कमी, इनके उपयोग से मानव स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव एवं बीमारियों का होना, पशु-पक्षियों एवं पालतू जानवरों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभाव से शारीरिक विसंगतियाँ होना, आदि से अवगत कराया एवं बताया कि इन सब दुष्परिणामों से निपटने एवं भूमि को हानिकारक रसायनों से मुक्त कर उसकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाने का एक ही उपाय है कि हम आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाये जिनमें जैविक खेती प्रमुख है। ग्राम एवं ग्रामीणों के समुचित विकास के लिये संस्थान द्वारा तैयार किये गये विस्तार प्रारूप का प्रथम उद्देश्य रसायन मुक्त जैविक खेती के विस्तार द्वारा होने वाले मृदीय सुधारों एवं संवर्धन, अधिक उत्पादन व गुणवत्ता तथा गाँव में ही उपलब्ध होने वाले रोजगार अवसरों से ग्रामीणों को अवगत कराना है तथा इस प्रारूप का दूसरा उद्देश्य यह है कि गाँव में चलने वाली आधुनिक जैविक कृषि पद्धतियों से होने वाले मृदा संबंधी लाभ, पर्यावरण संरक्षण व परिवार के सामाजिक-आर्थिक उत्थान को देखकर अन्य कृषक परिवार भी प्रोत्साहित होंगे तथा जैविक खेती को अपनाकर भूमि सुधार, पर्यावरण सुधार व सामाजिक-आर्थिक स्तर में सुधार द्वारा ग्राम के विकास में सहायक होंगे।

इस प्रारूप के अनुसार सर्वप्रथम गाँव का सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण किया जाना था। सर्वेक्षण के आधार पर ग्रामीणों को भूमिहीन व भूमिधर किसानों के रूप में वर्गीकृत



किया जाना था। कृषि भूमि की उपलब्धता के अनुसार किसान भाइयों को सीमांत किसान, लघु किसान, मध्यम किसान व बड़े किसान के रूप में वर्गीकृत कर प्रारूप की विभिन्न विस्तार योजनाओं में उनकी स्वयं की सहमति से भागीदारी सुनिश्चित की जानी थी। प्रारूप के विस्तार के दौरान गाँव के ही कारीगरों एवं मजदूरों को आवश्यकतानुसार काम दिया जाना था। जिससे चयनित प्रदर्शन ग्राम के प्रत्येक स्तर के किसान, करीगर व मजदूर वर्ग को लाभ मिल सके।

विस्तार प्रारूप के अनुसार उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान के वन विस्तार प्रभाग द्वारा सर्वप्रथम चयनित ग्राम—परसवारा—जमतरा में 150 परिवारों का सामाजिक—आर्थिक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण हेतु घर—घर जाकर घर के मुखिया या परिवार के मौजूदा सदस्य के द्वारा जानकारी प्राप्त कर निर्धारित प्रपत्र में भरी गयी। परिवार की सामाजिक—आर्थिक स्थिति का अवलोकन करने के लिये आवश्यक प्रश्न पूछे गये जैसे परिवार के मुखिया का नाम, व्यवसाय, सदस्यों की संख्या, भूमि की उपलब्धता, मासिक आय, पशुधन, आदि। सर्वेक्षण के पश्चात ऐसे पांच हितग्राहियों का चयन किया गया जो स्वेच्छा से अपनी जमीन पर संस्थान द्वारा केंचुआ खाद बनाने वाले वर्मीकम्पोस्ट बेड के निर्माण के लिए तैयार थे एवं स्वयं जैविक कचरा जैसे सूखी पत्तियाँ एवं गोबर आदि पिट में भरने के लिए सहमत थे। जिन हितग्राहियों का चयन किया गया उनके नाम हैं—श्रीमती पार्वती बाई यादव, श्री कमलनाथ, श्री लक्ष्मी पटेल, श्री लल्लू प्रजापति एवं श्री रमेश यादव। हितग्राहियों द्वारा जनवरी, 2011 के अंतिम सप्ताह से वर्मीकम्पोस्ट पिट में सूखी पत्तियाँ आदि (तीन भाग) एवं 10–15 दिन पुराना सड़ा—गला गोबर (एक भाग) भरा जाने लगा एवं आवश्यकतानुसार सूखी पत्तियों एवं गोबर की हर परत पर पानी का छिड़काव किया गया। फरवरी, 2011 के प्रथम सप्ताह में जब पिट तीन चौथाई भर गया तो विशेषज्ञों द्वारा प्रत्येक बेड में आइसेनिया फोइटिला प्रजाति के 2–2 किलो ग्राम केंचुआ डाले गये एवं सूखी पत्तियों व 10–15 दिन पुराने गोबर की एक—एक परत पुनः बिछाकर वर्मीकम्पोस्ट बेड को गीले बोरों से ढक दिया गया। नमी बनाये रखने एवं चीटियों से बचाव हेतु निगरानी रखी गयी तथा 15–15 दिन के अन्तराल पर दो बार सावधानी पूर्वक बेड में बन रही केंचुआ खाद को उलटा—पलटा गया। 45 से 60 दिनों के पश्चात मई, 2011 में केंचुआ खाद बनकर तैयार हो गई। प्रायः प्रत्येक बेड में एक बार में 3 से 6 विंटल खाद बनी। प्रत्येक हितग्राही के यहाँ बनी खाद को तौलने के लिये नाप हेतु एक तसला लिया गया जिसमें लगभग 12–14 किलो खाद प्रति तसला आती थी। खाद का औसत वजन लेने के लिये इस तसला को तीन बार अलग—अलग भरकर छाया में सुखाया गया। अच्छी तरह

सूख जाने पर पुनः सूखी खाद के तीनों ढेरों को अलग—अलग तोला गया। इस प्रकार प्राप्त 3 वजनों से औसत वजन निकला गया। सबसे अधिक केंचुआ खाद श्री लल्लू प्रजापति (592 किलो ग्राम) के यहाँ और सबसे कम केंचुआ खाद श्री रमेश यादव (280 किलो ग्राम) के यहाँ बनी। खाद की गुणवत्ता व बाजार दरों का सर्वेक्षण कर रु. 3/- प्रति किलो केंचुआ खाद के हिसाब से संस्थान द्वारा प्रत्येक हितग्राही को उसके यहाँ बेड में बनी केंचुआ खाद का क्रय कर चैक द्वारा भुगतान किया गया अर्थात् इन हितग्राहियों को दोहरा लाभ प्राप्त हुआ।

**वर्मीकम्पोस्ट पिट :** चयनित पाँच हितग्राहियों के यहाँ केंचुआ खाद निर्माण के लिए वर्मीकम्पोस्ट बेड बनवाई गई। प्रत्येक बेड की लंबाई 10 फीट चौड़ाई 3 फीट एवं गहराई 3 फीट रखी गई। वर्मीकम्पोस्ट बेड बनाने के पहले ईट व सीमेन्ट से आधार बनाया गया जिससे दीमक, लाल चीटी या अन्य हानिकारक कीट बेड में डाली गयी सूखी पत्तियों, गोबर व केंचुओं को हानि ना पहुँचायें। इसी तरह नगदी फसल जैसे हल्दी की खेती के लिए अन्य दस हितग्राहियों का चयन किया गया यथा श्री महेश पटेल, श्री गुलाब पटेल, श्री नारायण पटेल, श्री मुकेश यादव, श्री अशोक यादव, श्री लखन पटेल, श्री नारायण प्रजापति, श्रीमती दिब्बी बाई प्रजापति, श्री नारायण (बंदो) प्रजापति एवं श्रीमती शकुन बाई प्रजापति एवं उनकी सहमति से उनके खेतों पर केंचुआ खाद का उपयोग करते हुए कृषि वानिकी प्रभाग के मार्ग दर्शन में सागौन हल्दी मॉडल के अन्तर्गत हल्दी बीजों (कंद) का रोपण किया गया। रोपण हेतु माह जून, 2011 के अंतिम प्रथम सप्ताह में हल्दी कंदों को लगाने के लिये कंद से कंद की दूरी 45 से.मी. व एक लाइन से दूसरी लाइन की दूरी 45 से.मी. रखी गयी। प्रत्येक लाइन पर मिट्टी चढ़ाकर खेत तैयार किया गया जिससे हल्दी के कंदों को बढ़ने लिये पर्याप्त जगह, हवा, मिट्टी और पानी मिल सके तथा किसान को निंदाई—गुड़ाई करने हेतु सुविधा हो।

### केंचुआ खाद के लाभ

1. केंचुआ खाद पूर्णतः कार्बनिक एवं पर्यावरण हितकारी है। वर्मीकम्पोस्टिंग द्वारा हानिकारक एवं दुर्गन्ध युक्त कचरे से उपयोगी खाद मिलती है।
2. केंचुआ खाद में पौधों के लिए आवश्यक नाइट्रोजन, पोटेशियम, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम, एवं लगभग 150 अन्य सूक्ष्म तत्व विद्यमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पादप वृद्धि हारमोन्स एवं विटामिन्स भी पाये जाते हैं।
3. केंचुआ खाद में लाभदायक जीवाणु और एकटीनोमाइसिटज अत्याधिक मात्रा में पाये जाते हैं। सामान्य मृदा की तुलना में इसमें जीवाणुओं की संख्या



- 100 गुना ज्यादा होती है। अतः सूक्ष्म जीवों का उच्च स्तर बना रहता है।
4. केंचुआ हानिकारक कृमियों को खाकर खाद की रोगप्रतिरोधक क्षमता बनाए रखता है। वर्मीकम्पोस्टिंग प्रक्रिया द्वारा उपस्थित हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।
  5. केंचुआ खाद से मिट्टी में सूक्ष्म जीवों की संख्या, इनकी सक्रियता तथा मिट्टी की जलधारण क्षमता कई गुना बढ़ जाती है।
  6. केंचुओं द्वारा स्त्रवित वर्मकास्ट एवं वर्मीकम्पोस्ट पर वृद्धि करने वाली कवक प्रजातियाँ मृदा के कणों को विपकाने का कार्य करती हैं। जिससे मृदा क्षरण में भी कमी आती है।
  7. केंचुआ खाद में उपस्थित पोषक तत्व पौधों को धीरे-धीरे प्राप्त होते रहते हैं।

8. केंचुआ बीज अंकुरण की प्रक्रिया को 65 से 70 प्रतिशत तक बढ़ा देते हैं।

इस तरह संस्थान द्वारा प्रत्येक हितग्राही को दोहरा लाभ प्राप्त हुआ। प्रथम पाँच हितग्राही वर्मीकम्पोस्ट इकाई व केंचुआ खाद के विक्रय द्वारा लाभान्वित हुए। संस्थान ने क्रय की गई केंचुआ खाद को अन्य दस हितग्राहियों में जो केंचुआ खाद का उपयोग करते हुए नगदी फसल हल्दी लगाने के लिए इच्छुक थे, निःशुल्क वितरित किया साथ ही उन्हें गुंटूर वेरायटी के हल्दी बीजों का भी निःशुल्क वितरण किया गया तथा हल्दी लगाने की तकनीक को प्रदर्शन द्वारा समझाया गया। संस्थान द्वारा प्रचार-प्रसार की गई केंचुआ खाद बनाने की तकनीक से होने वाले मृदीय एवं आर्थिक लाभों के प्रति अन्य सभी ग्रामीण भी प्रोत्साहित हुए। यह पूरा कार्य संस्थान द्वारा बनाये गये विस्तार प्रारूप के अनुसार किया गया जिसका उद्देश्य मृदा सुधार एवं संवर्धन के साथ-साथ ग्रामीणों के आर्थिक स्तर को भी बढ़ाना है।





# उत्तराखण्ड क्षेत्र में काफल के पेड़ का महत्व एवं उसका कायिक प्रवर्द्धन - एक शोध

डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल एवं सुश्री ज्योति काण्डपाल  
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

## प्रस्तावना :

उत्तराखण्ड के गढ़वाल एवं कुमाऊँ क्षेत्र में काफल के पेड़ों का काफी महत्व है। इस पेड़ के नर तथा मादा अलग होते हैं। यह एक मध्यम ऊँचाई लगभग 3 से 15 मी. लम्बा पेड़ होता है। इस पेड़ के न सिर्फ़ फल ही खाए जाते हैं बल्कि इसकी छाल टेनिन तथा रंगाई करने के काम भी आती है। इसकी छाल का काढ़ा अस्थमा, बुखार, फेफड़े के इन्केकशन, खांसी, पेचिस आदि ठीक करने के काम आता है। छाल को दांत दर्द में भी इस्तेमाल किया जाता है। खासी की पहाड़ियों में तो इसकी छाल को मछली मारने के कार्य में प्रयुक्त किया जाता है। फलों को खाया जाता है जिसमें कि एक खट्टा सा स्वाद होता है। फलों का जूस भी बनाया जाता है जो कि स्वास्थ्य के लिए अति लाभकारी होता है। यह जूस शरीर में खून की कमी को दूर करता है तथा शरीर में भोजन की पाचन शक्ति को भी बढ़ाता है। विटामिन 'सी' की मात्रा इसके फलों में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। जंगलों में फलों के पकने पर बंदर, लंगूरों, चिड़ियों आदि की तो बहार ही आ जाती है। ये सारे जीव फलों को गुरुत्वी सहित खाते हैं जिससे कि बीजों का वितरण (dispersal) भी आसानी से हो जाता है। साथ ही पेट की गर्मी बीजों में निद्रा (dormancy) को भी तोड़ देती है जिससे कि बीज आसानी से जम जाते हैं। वर्तमान में उत्तराखण्ड के नए प्रदेश के अवतरण से यहाँ के नैसर्गिक सौंदर्य को और भी बढ़ावा मिल सकता है जिससे सैलानी स्वयं ही यहाँ खिंच आते हैं। काफल के साथ बुरांस के फूल भी खिलकर पहाड़ी को और भी छटा प्रदान करते हैं। बुरांस के फूलों का भी जूस बनाया जाता है जो कि शरीर के लिए अत्यंत पौष्टिक होता है। दोनों ही पेड़ एक समय में फलते फूलते हैं तथा उस समय जंगल की छटा ही बदल जाती है। इन दोनों पेड़ों में काफल का महत्व कुछ अधिक ही है। अप्रैल माह में समीपवर्ती ग्रामवासी इसके फलों को सङ्कों के किनारे रिंगाल की टोकरी में बेचने के लिए बैठे रहते हैं। उन दिनों गरीबों को भी स्वरोजगार मिल जाता है। कारण कि गर्मी शुरू होते ही उत्तराखण्ड की चार धाम यात्रा शुरू हो जाती है तथा यात्रियों की भारी भीड़ लग जाती है। अतः फल भी हाथों – हाथ बिक जाते हैं तथा जूस भी बिक जाता है। एक अनुमान के अनुसार एक यात्रा सीजन में एक ग्राम सभा जिसमें कि लगभग 500

परिवार होते हैं एक सीजन में लगभग रु. 5,00,000/- की कमाई करते हैं साथ ही आवागमन के साधनों का भी इस समय रोजगार और बढ़ जाता है।

काफल के पेड़ में एक अन्य खास बात और भी होती है जो कि बुरांस में नहीं पाई जाती है। यह पेड़ वातावरण में मौजूद नाइट्रोजन गैस को अपने जड़ों में फ्रेंकिया (Frankia) नामक सूक्ष्म जीवी की सहायता से स्थिर करता है जो कि गांठों (nodules) के समूह की आकृति होती है। ये गांठे अंत में सङ्गेपर उनमें स्थिर की गई नाइट्रोजन को भूमि में छोड़ देते हैं। इस नाइट्रोजन को साथ में उगने वाली वनस्पतियां इस्तेमाल करती हैं जो कि एक मुफ्त की खुराक है। अतः यह पेड़ हमारी वन मृदा की उर्वरकता को भी बढ़ाता है। फल लगने के समय पर ग्रामवासी टहनी तोड़कर नीचे गिराकर फलों को बिनते हैं तथा कच्चे फल जमीन पर बर्बाद हो जाते हैं ये कच्चे फल जमते भी नहीं हैं तथा पेड़ का जीवन इस तरह खतरे में पड़ जाता है। जंगलों में नई पौधे बहुत कम तैयार हो रही हैं जो तैयार भी होती है वह जमीन से ऊपर उठने में काफी समय लेती है। नजदीक के ग्रामवासी पेड़ों को काटकर जलाऊ लकड़ी के रूप में भी इस्तेमाल करते हैं। इस पेड़ के पुनर्जीवन के लिए अगर समय रहते कुछ नहीं किया गया तो इसका इतिहास बनने में भी कोई विलम्ब नहीं होगा।

अतः इस पेड़ के प्रवर्द्धन के लिए वन अनुसंधान संस्थान में एक परियोजना पर काम किया गया तथा अभी फील्ड में वृक्षारोपण करके आने वाले वर्षों का इंतजार है कि कायिक प्रवर्द्धन तथा बीज द्वारा तैयार किए गए पौधों का व्यवहार किस तरह से होता है एवं कितने समय अंतराल में रोपित पौधों में फलों की पैदावार होती है।

## प्रयोग विधि 1:

वन अनुसंधान संस्थान में काफल के पेड़ पर एक परियोजना पर काम चल रहा है जिसके तहत काफल की परिपक्व टहनियों पर प्रत्येक माह में दो वर्ष तक गूंटियां बांधी गईं। गूंटी बांधने से पहले उन पर आई.बी.ए. (IBA) नामक होरमोन के 1000 पीपीएम (ppm) 2000 पीपीएम, 4000 पीपीएम एवं 6000 पीपीएम की ताकत वाले पाउडर को लगाकर मॉस (moss) घास को फफूंद नाशक रसायन से



भिगोकर, निचोड़कर बांध दिया गया। कुछ ठहनियों में बिना होरमोन के ही गूटियां बांधी गईं। इस तरह प्रत्येक माह पेड़ों पर पचास-पचास गूटियां बांधी गईं। इस प्रयोग से यह देखा गया कि 4000 पीपीएम शक्ति वाले आई.बी.ए. (IBA) में सबसे अधिक जड़ों का फुटान हुआ एवं बिना होरमोन प्रयोग किए गए पेड़ों की ठहनियों में जड़ों का फुटान बिलकुल भी नहीं देखा गया। जड़ों निकली हुई गूटियों को कुछ को मिट्टी : खाद : बालू के मिश्रण (2 : 1 : 1) में पौलीथीन बैग में लगाया गया तथा कुछ को सीधे ही जमीन पर 2 फीट x 2 फीट बनाए गए गढ़दों में अगस्त माह में रोपा गया जबकि अत्यंत बारिश का मौसम था ताकि सभी गूटियां अपनी जड़ों को मिट्टी में अच्छी तरह स्थापित कर लें।

जिन गूटियों को पौलीथीन थैलियों में लगाया गया था उन्हें भी दूसरे साल अगस्त माह में बरसात के दिनों में उसी तरह से जमीन में रोपा गया। इसके साथ साथ जो पौधे बीज से तैयार कर लगाए गए थे पहले वाले पौधों के साथ रोपित किया गया। एक वर्ष उपरांत दोनों प्रकार के रोपित पौधों का निरीक्षण किया गया तथा यह पाया गया कि दोनों ही प्रकार के रोपित गूटियां (पेड़ से अलग कर सीधे जमीन पर लगाए गए एवं पहले पौलीथीन में लगाकर बाद में रोपे गए) संतोषजनक पाई गईं। बीज से तैयार किए गए पौधे जिनकी मोटाई तथा लम्बाई बहुत कम थी (2.0 से 3.00 मि. मी. एवं लम्बाई 15 से.मी. से भी कम) को जमीन में लगाने पर कुछ समय बाद मृत पाई गई। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि कमजोर दुबले-पतले पौधों को जमीन पर नहीं लगाना चाहिए क्योंकि उनका जड़ तंत्र कम विकसित होने के कारण अपने को शीघ्रतापूर्ण से दूसरी जगह पर स्थापित नहीं कर पाते।

### प्रयोग विधि 2 :

दूसरे प्रयोग में काफल की कोमल एवं परिपक्व ठहनियों की कलमें बनाकर उनमें उपर्युक्त वर्णित आई.बी.ए. (IBA) की चारों मात्रा (dozers) तथा एक बिना होरमोन लगी कलमें लगाई गई। कुछ कलमों को छायाघर (shade house) में तथा कुछ को मिस्ट चैम्बर (mist chamber) में जड़ प्रस्फुटन के लिए रखा गया। इस प्रयोग में 40 से 50 प्रतिशत कलमों में पत्तियां तो फूटी लेकिन जड़ों का फुटान बिलकुल भी नहीं हुआ। हां, जो कोमल कलमें मिस्ट चैम्बर में लगाई गई उनमें लगभग सभी कलमों में दो या तीन चार पत्तियां जरूर निकल आई परंतु आई.बी.ए. 4000 पीपीएम वाली कलमों में तीन कलमों पर जड़े देखी गईं। जड़ प्रस्फुटित कलमों को जब पौलीथीन बैग में लगाकर छाया घर में रखा गया तो वे चार सप्ताह बाद मृत पाई गईं।

### प्रयोग विधि 3 :

तीसरे प्रयोग में ठहनियों की कलमें क्योंकि स्विर्जू (पौड़ी के पास) के जंगल से एक दिन पूर्व लाई जाती थी अतः इस समय को कम करने के लिए बरसात माह में इस जंगल से काफल के कुछ छोटे छोटे पौधों को उखाड़कर देहरादून रोपिणी (nursery) में लगाया गया तथा बाद में इनकी कोमल ठहनियों से एक गांठ वाली (single nodal) कलमें तैयार कर होरमोन लगाकर तुरंत ही मिस्ट चैम्बर में रखा गया। इन कलमों में शतप्रतिशत पत्तियां निकल आई परंतु मात्र 2-3 कलमों में ही जड़ों का फुटान देखा गया। इन्हें भी जब पौलीथीन बैग में लगाकर छायाघर में रखा गया था तो तीन चार सप्ताह बाद वे भी जीवित नहीं बची।

### प्रयोग विधि 4 :

इस विधि में वर्ष के प्रत्येक माह में काफल की लगभग 2-4 से.मी. मोटी जड़ों को पेड़ से अलग कर देहरादून की रोपिणी में एवं छिद्रयुक्त प्लास्टिक ट्रे में लगाया गया ताकि हमें कोमल (juvenile) प्ररोह (shoot) मिल सके। परंतु इस स्थिति में भी मात्र तीन जड़ें जोकि फरवरी माह में लंगाई गई थीं उनमें प्ररोह तो विकसित हुआ लेकिन नई जड़ों का फुटान बिलकुल भी नहीं हुआ। कुछ समय बाद वे प्ररोह भी सूखते गए।

उपर्युक्त वर्णित प्रयोग नं. दो, तीन एवं चार में कलमों में पत्तियां/ठहनियां तो विकसित हुई लेकिन जड़ों का फुटान बिलकुल नहीं हुआ। कारण यह रहा होगा कि जब तक कलमों में पर्याप्त भोजन की मात्रा थी उन कम विकसित प्ररोह ने उसे इस्तेमाल किया एवं बाद में भोजन समाप्ति पर मर गए। अगर जड़ें विकसित हुई होती तो फिर मिट्टी से पानी एवं खनिज पर्याप्त मात्रा में खींच सकते थे।

### कायिक प्रवर्द्धन के लाभ :

अतः अभी तक के अध्ययन में पता लग पाया कि गूंठी विधि ही अधिक सार्थक होती है। इस प्रजाति की नस्ल को सुधारने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है। अच्छे सुडौल एवं स्वस्थ पेड़ों को छाटकर उनमें गूंठी बांधी जा सकती है तथा एक साल बाद हमें 2-4 फीट लम्बा पौधा तैयार मिल जाता है जबकि बीज द्वारा तैयार करने में एक साल में मात्र आधा या एक फिट लम्बा पौधा तैयार हो सकता है। दूसरी ओर नसरी/रोपिणी में खाद, पानी, गुड़ाई आदि में अलग से कमी पड़ सकती है तथा पौधा तैयार करने में लागत बढ़ जाती है एवं उच्च गुणवत्ता वाले पौधे भी नहीं मिल पाते हैं। कायिक प्रवर्द्धन द्वारा तैयार पौधे फल भी जल्दी देते हैं तथा समय पर पौधों को तैयार किया जा सकता है। इस तरह के पौधों को जंगल में लगाकर एक ओर पेड़ न सिर्फ कम ऊँचाई पर ही



फल देंगे अपितु पके हुए फलों को इकट्ठा करने में भी आसानी होगी। फल इकट्ठा करने वालों को ठहनियाँ नहीं तोड़नी पड़ेगी। जंगली जानवरों को भी भरपूर मात्रा में भोजन मिलेगा एवं कच्चे फल भी बहुत कम बर्बाद हो पाएंगे इससे इस प्रजाति के प्राकृतिक वंशानुगत प्रसार में भी मदद मिलेगी। इसके लिए सर्वप्रथम सुविकसित पेड़ों को छांटकर उनमें ही अच्छी, सुडोल ठहनियों पर गूंटी बांधनी चाहिए ताकि हमें उन्नत किस्म के फल पैदा करने वाला पेड़ मिल सके। वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के फील्ड रिसर्च सेंटर खिर्सू (पौड़ी) में नर एवं मादा पौधों पर फल निकल आए थे जो कि स्वाभाविक भी था लेकिन अब यह देखने का विषय है कि कितने वर्षों बाद बीज एवं गूंटी से तैयार किए गए पौधों में फल आते हैं। अगर कम ही वर्षों में फल निकल आता है तो इस तकनीक का प्रचार-प्रसार करके इस प्रजाति को न सिर्फ बचाया जा सकेगा।



एक ग्रामीण बाजार में काफल बेचते हुए



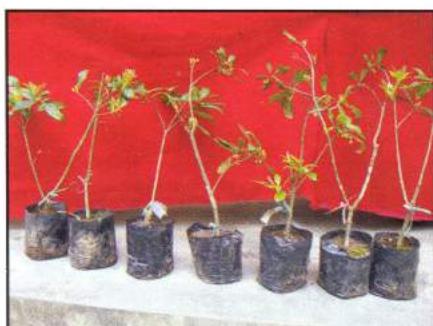
एक वर्ष का तैयार पौधा



काफल की जड़ों में नाड़्यूल



जड़ निकली हुई गूंटी



गूंटियों को पालीथीन थैलियों में लगाना



गूंटियों को जंगल में लगाना



एक गांठ वाली कलमों में हारमोन लगाना



एक गांठ वाली कलमों को मिस्ट चैम्बर में रखना



एक गांठ की कलम में जड़ निकलना

काफल की ठहनियों में गूंटी एवं एक गांठ की कोमल कलमों से नये काफल के पौधे तैयार करना



# सामुदायिक लाख बीज फार्म की अवधारणा, प्रबंधन एवं उपयोगिता

डॉ. शरद तिवारी एवं श्री एस.एन. वैद्य  
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

भारत ने विश्व लाख बाजार में अपना आधिपत्य बना रखा है। लाख विदेशी मुद्रा अर्जन का एक महत्वपूर्ण साधन है जो कि लाख से बनी वस्तुओं एवं कुटीर उद्योग द्वारा लाख से निर्मित सामग्री से प्राप्त होता है। विश्व में अन्य देश जैसे कि थाईलैंड, इंडोनेशिया इत्यादि में विगत कुछ वर्षों से लाख उत्पादन में निरंतर प्रगति हो रही है और ये देश भारत को लाख उत्पादन में अब कड़ी प्रतिस्पर्धा देने लगे हैं। इसलिए प्रतिस्पर्धा में भारत को अपना स्थान सर्वोपरि बनाये रखने के लिए लाख उत्पादन में लगे कृषकों, गैर सरकारी संस्था इत्यादि को प्रोत्साहन देना बेहद जरूरी है।

भारतवर्ष में प्रचुर मात्रा में लाख पोषक वृक्ष एवं झाड़ियाँ पाये जाते हैं पलाश, बेर, कुसुम, अकेशिया, खैर, पीपल, भालिया, गल्वांग, फलेमेंजिया सेमियालता, फाईक्स प्रजाति आदि पर लाख की खेती की जाती है। खासकर व्यवसायिक खेती पलाश, बेर, कुसुम, फलेमेंजिया सेमियालता एवं क्षेत्रीय आधार पर भी आसाम में अरहर तथा मध्यप्रदेश में घोंट पर लाख की खेती की जाती है।

लाख उत्पादन, कृषकों के लिए जीविकापार्जन का बहुत बड़ा साधन है परन्तु यह तभी संभव है जब लाख कृषकों के पास व्यक्तिगत या सामुदायिक लाख बीज फार्म हो। लाख उत्पादन के क्षेत्र में मौसम की स्थिति के अनुकूल नहीं रहने पर फसल प्रभावित होने पर लाख बीज के अभाव में लाख उत्पादन की निरंतरता प्रभावित होती है, और फसल प्रभावित होने पर लाख कृषकों को ऊँचे दाम पर निम्नस्तर के लाख बीज खरीद कर पुनः लाख की खेती शुरू करनी पड़ती है।

## लाख उत्पादकता में कमी की वजह :

- उचित मात्रा में लाख बीज की अनुपलब्धता
- खराब किस्म के लाख बीज का उपयोग
- अधिक दाम पर लाख बीज का मिलना
- प्राचीन विधि द्वारा लाख की खेती
- संचारण एवं लाख कटाई के बीच किसी भी तरह का उचित देख भाल की कमी।

## सामुदायिक लाख बीज फार्म :

भारत सरकार ने द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजना में लाख उत्पादन को बढ़ावा देने में लाख बीज का उपलब्धता बरकरार रखने के लिए जगह-जगह लाख बीज फार्म की

स्थापना की थी परन्तु कठिनाइयों से उद्देश्य की पूर्ति पूरी तरह से नहीं हो सकी।

## लाख बीज फार्म की स्थापना के लिए आवश्कताएं :

- स्वस्थ लाख पोषक वृक्ष
- लाख उत्पादन के लिए शुरुआत में औजार एवं स्वस्थ लाख बीज
- प्रशिक्षित लोग
- पानी निकास योग्य जमीन
- छतेदार खुला पक्का प्लैटफार्म
- फार्म सुरक्षा के लिए फार्म के चारों तरफ 3–4 फीट खाई की व्यवस्था
- चौकीदार एवं चौकीदार आवास।

## सामुदायिक लाख बीज फार्म क्यों :

- लाख बीज फार्म का देख भाल सही तरीके से होना।
- लाख बीज फार्म की किसी भी कठिनाइयों से सामना करने के लिए जैसे लाख बीज की चोरी, फार्म में आग लगने से रोकने के लिए आदि।
- लाख बीज फार्म को सामान्य रूप से चलाने के लिए एक कोष की स्थापना करना।



लाख पोषक वृक्ष एवं झाड़ि

- लाख बीज फार्म से अति गरीब कृषकों को निःशुल्क / नगण्य दाम पर लाख बीज उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करना।
- लाख बीज फार्म से समय पर उचित दाम पर अच्छे लाख बीज की आपूर्ति करना।

### लाख बीज फार्म प्रबंधन :

- लाख बीज फार्म के प्रबंधन का उद्देश्य मुख्य रूप से जलवायु की अनियमितता की वजह से लाख उत्पादन में होने वाली कमी की स्थिति में लाख बीज की आपूर्ति है।
- लाख बीज फार्म के लिए एकमुश्त जगह पर अधिक मात्रा में लाख पोषक पेड़ उपलब्ध हो जिस पर व्यवस्थित तरीके से वैज्ञानिक विधि द्वारा लाख की खेती कर प्रत्येक मौसम में लाख बीज की उपलब्धता बरकरार रखी जाए।
- रंगीनी लाख बीज फार्म के लिए (पलाश या पलाश मिश्रित बेर) के लगभग 6000 से 10000 बृक्ष हों या स्थिति अनुकूल पेड़ों को रखकर दो या तीन भागों में बराबर बाँट कर रंगीनी लाख बीज फार्म स्थापित करना चाहिए।
- कुसमी लाख बीज फार्म के लिए लगभग 500–1000 कुसुम पेड़ हों या स्थिति अनुकूल पेड़ों को रखकर चार या पांच भागों में बराबर बाँट कर कुसमी लाख बीज फार्म स्थापित करनी चाहिए।
- लाख उत्पादन के लिए सामुदायिक आधारित लाख बीज



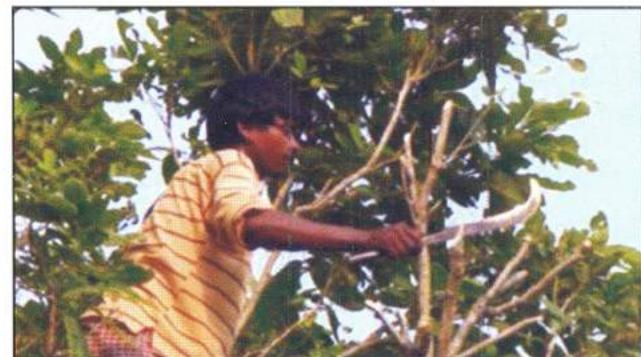
उत्पादित लाख बीज विक्रय के लिए

स्थापित करनी चाहिए जिससे समुदाय के साथ-साथ ग्रामीण भी लाभान्वित हो सकते हैं।

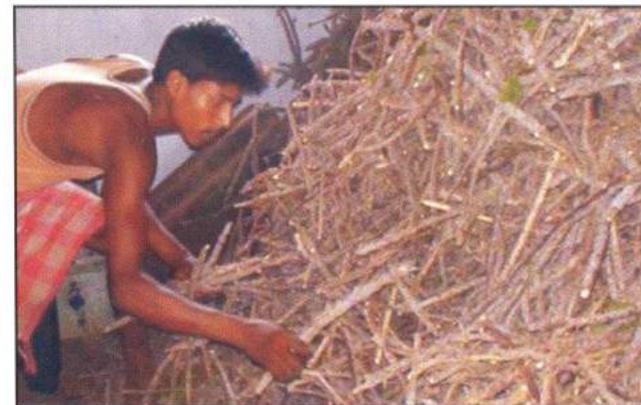
### उपयोगिता

- स्वस्थ लाख बीज की उपलब्धता।
- समयानुकूल लाख बीज की उपलब्धता।
- लाख बीज के लिए स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भरता।
- अतिरिक्त आय का स्रोत।

**निष्कर्ष :** लाख खेती गरीब कृषकों एवं आदिवासियों के लिए कम समय एवं अपेक्षाकृत कम मेहनत में आमदनी का अच्छा स्रोत है। इस सम्बन्ध में संस्थान द्वारा विगत में चलाई गयी परियोजनाओं और वर्तमान में "सीधे उपभोक्ता तक" परियोजना के तहत यह देखा गया कि लाह (लाख) खेती से कृषकों के लिए अतिरिक्त आमदनी का एक बहुत अच्छा स्रोत है। इससे लाख उत्पादन में बढ़ोत्तरी तो होती ही है साथ ही साथ ग्रामीण कृषकों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन स्तर में भी काफी अच्छा बदलाव आया है। अतः सामुदायिक लाख बीज फार्म या लाख बीज फार्म, पंचायत स्तर पर, ग्राम स्तर पर या ब्लाक स्तर पर स्थापित किया जाना चाहिए जिससे प्रत्येक ग्राम या पंचायत में आसानी से स्वस्थ लाख बीज उपलब्ध होगा। इससे लाख उत्पादन एवं कृषकों के जीवन स्तर में सुधार होगा। साथ ही साथ देश को विदेशी मुद्रा में भी बढ़ोत्तरी होगी।



लाख पोषक पेड़ों की छटाई



लाख बीज का संग्रह



# मिजोरम के वनों में बाँस पुष्णनः एक अद्भुत, विस्मयकारी और रहस्यमय घटना

श्री हंस राज शर्मा एवं श्री संदीप यादव  
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

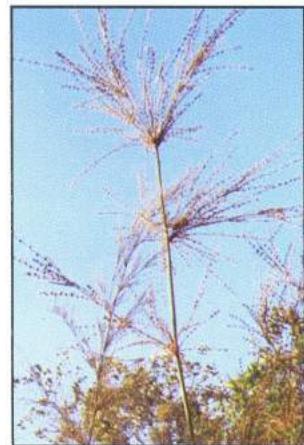
उस क्षण को याद कीजिए जब आपने पहली बार सूर्यग्रहण देखा था। सचमुच, कितना अद्भुत था ना वह क्षण! शायद कोई और घटना उतनी अद्भुत नहीं है, या फिर है? जी हाँ, है! मिजोराम के वनों में हो रहा बाँस पुष्णन उतना ही दुर्लभ है और कई मायनों में और भी अद्भुत, विस्मयकारी और रहस्यमय है।

## बाँस : एक परिचय

घास परिवार के सबसे लम्बे, चिरस्थायी और सदाबहार सदस्यों को सामुहिक रूप से बाँस कहते हैं।

## बाँस पुष्णन इतना विशिष्ट क्यों है?

पुष्ण तो सभी आवृत्तबीजी पादपों में आते हैं, तो फिर बाँस पुष्णन इतना विशिष्ट क्यों है? बाँस की ज्यादातर प्रजातियाँ 60 से 130 सालों के लम्बे अंतराल में सिर्फ एक बार पुष्ण देती हैं तथा पुष्णन के तुरंत बाद बहुत सी प्रजातियों की मृत्यु हो जाती है। बाँस का यह असामान्य पुष्णन स्वभाव अभी भी वैज्ञानिकों के लिए एक रहस्य है।



डैन्ड्रोकेलामस लोनीसपैथस में विकीर्ण पुष्णन



डैन्ड्रोकेलामस हैमिलटोनाई में विकीर्ण पुष्णन



मिजोरम के वनों में डैन्ड्रोकेलामस सर्टिक्टस में हो रहा विकीर्ण पुष्णन

# विरल होते वृक्षों के संरक्षण में वनस्पतिक उद्यान की भूमिका

श्री हरी शंकर लाल, श्री रवि शंकर प्रसाद एवं डॉ. संजय सिंह  
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

वनस्पति उद्यान एक विशेष तरह से पौधों की एक विस्तृत शृंखला प्रदर्शित करती है जैसे दुर्लभ प्रजातियां, विदेशी पादप, औषधीय गुण की वनस्पतियां, पौधों का संग्रह, पर्यटन तथा शैक्षणिक भ्रमण आदि। वनस्पति उद्यान अक्सर विश्वविद्यालय एवं वैज्ञानिक अनुसंधान संगठनों द्वारा चलाये जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा संरक्षण, प्रदर्शन और शिक्षा के लिए पौधों को सुरक्षित रखकर दस्तावेज बनाए रखना है। एक वनस्पति उद्यान में प्रयोगशाला, वैज्ञानिक प्रबंधन, संग्रहालय तथा पौधों के रखरखाव के लिए नियंत्रित कर्मियों की आवश्यकता होती है। वनस्पति उद्यान का इतिहास वनस्पति विज्ञान से जुड़ा है। 16<sup>वीं</sup> और 17<sup>वीं</sup> शताब्दी के वनस्पति उद्यान मुख्यतः औषधीय उद्यान थे। एक अग्रणी वनस्पति उद्यान अपने वैज्ञानिक या शैक्षणिक गतिविधि के द्वारा परिभाषित होता है। ऐसा उद्यान में निम्नलिखित बातों का ध्यान में रख कर बनाया जाता है।

- वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पौधों की उपलब्धता
- स्थानीय सहित विशेष क्षेत्र के पौधों का प्रदर्शन
- आर्थिक एवं औषधि महत्व के पौधे का संग्रह

- अलग—अलग मौसम के अनुसार पौधों का रखरखाव
- उपयोग में आने वाली अनुसंधान सुविधाएँ
- सभी पौधों के सही नाम, कुल एवं उपयोगिता

जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण गृह निर्माण, कृषि एवं अन्य गतिविधियों के कारण वन क्षेत्रों का आकार तथा घनत्व घटता गया। अतः राज्य वन विभाग और भारत सरकार द्वारा संचालित अनेक वनस्पतिक उद्यान बनाए गए। जिनमें विभिन्न प्रजाति के वृक्ष/पौधों को उसके वास्तविक रूप में संरक्षित रखा जाता है ताकि प्रजाति विलुप्त न हो। उद्यान में वृक्षों और पौधों को प्रवर्धन के तरीके का ध्यान रखा जाता है बीजों का संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता है ताकि भविष्य में इसकी आवश्यकता की पूर्ति की जा सके।

## विरल होने के कारण

वन क्षेत्रों का प्रतिशत दिन पर दिन कम होता जा रहा है। यहाँ पर जिस वृक्ष का उपयोग धार्मिक कार्यों के रूप में महत्व रखता है उसका तो संरक्षण हो जाता है जैसे पीपल, बरगद, साल, कर्म, फाँसी, आम, महुवा, नीम इत्यादि। किन्तु दूसरे



राँची स्थित झारखण्ड के अग्रणी उद्यान के दृश्य



तालिका : झारखण्ड में विरल हुई वृक्ष प्रजातियाँ

क्र. सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम	उपयोगिता
1.	बोसवेलिया सेराटा	सलाई	माचिस की तिल्ली बनाने में
2.	कोल्कोस्पेर्मम रेलिजिओसम	गलगल	दमा एवं मुख के अल्सर में
3.	मेसुआ फेरेया	नागकेसर	साबुन बनाने में, रेल की पटरी, फल को खाया जाता है
4.	मोरिंडा सिट्रीफोलिया	अडकु, फूटबाल वृक्ष	इसके रंग से पीला रंग बनाया जाता है
5.	ऊजीनिया ओजेंसिस	पंदन, संदन	बैल गाड़ी, कृषि औजार, कपड़े मिल में काम आने वाला स्पीण्डल, लाह पोशक वृक्ष इत्यादि
6.	टेरोकार्प्स मारसुपीयम	विजासाल	मोटापा कम करने में
7.	सारका असोका	अशोक	स्त्री रोगों, अधिक रक्त बहाव को कम करने में
8.	स्ट्रिकाक्षस पोटटोर्म	निर्मली	दवा बनाने में
9.	स्टेरकुलिया यूरेन्स	कुल्लू	गम बनाने में
10.	सेलिक्स टेट्रास्पेर्मा	लैला	घर बनाने में, बास्केट बनाने में
11.	मेलोटस रोकर्भूथीयाना	निम पूतली	माचिस बनाने में
12.	अटलेन्सीया मोनोफयला	जगली निबू	जलावन लकड़ी एवं कीटनाशक
13.	जिम्नोस्पेरिया सेनेल्मेसिस	कनफेटी	स्त्राव सम्बन्धी बीमारी एवं डायरिया में
14.	लिनोसेरा मेकरोफाइला	लेगून लपेटा	खाने में, फर्श बनाने में, घर बनाने में
15.	सिचबेरा स्वटीनोवइडसा	मेखा	यकृत बढ़ने और मूत्र संबंधित बीमारी में

कार्य में आने के कारण बहुत सी प्रजाति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है जिससे औषधीय गुणों वाले और कीमती लकड़ी वाले वृक्ष लगातार घटते जा रहे हैं। व्यवसायी रूप से प्रचलित वृक्षों का लगातार दोहन होता आ रहा है। विकास के नाम पर भी हमारे जंगलों की अंधा धुंध कटाई जारी है। चाहे सड़क चौड़ीकरण की बात हो हवाई पट्टी का निर्माण या विस्तार हो कोयला या अन्य प्रकार की धातुओं के अयस्क की खोदने की बात हो खुदाई का काम जारी जिससे जंगल सिमटते जा रहे हैं। वर्तमान में पर्यावरण असंतुलन मुख्य का कारण औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, ऊर्जा और कच्चे माल के खनन के कारण प्राकृतिक संतुलन के विघटन होने के कारण वृक्ष की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं या विलुप्त होने के कगार पर हैं।

### झारखण्ड में विरल होते वृक्ष

झारखण्ड नाम अर्थ ही वृक्ष अथवा वन की भूमि है। यह की जनजातीय एवं ग्रामीण संस्कृति का जुड़ाव वनों के प्रति आरंभ से ही रहा है। इस पर भी राज्य समय के चक्र में वनों में विनाश की गति को रोक नहीं पाया। देखा गया है की विगत दशकों में झारखण्ड के वन क्षेत्र से उनकी बहुत सी प्रजातियाँ या तो

विलुप्त अथवा विरल हो गई हैं। ऐसी ही प्रजातियों को तालिका में दर्शाया गया है।

### अग्रणी उद्यान द्वारा संरक्षण का प्रयास

जैसा की नाम से प्रतीत होता है अन्य उद्यानों से किसी व क्षेत्र में अग्रसर रहने वाले उद्यान को अग्रणी उद्यान के रूप में जाना जाता है। यहाँ पर विशिष्ट प्रकार के वृक्षों और पौधों का वैज्ञानिक तरीके से संरक्षण किया जाता है। वन उत्पादकता संरक्षण, रांची में औषधीय पौधे का अग्रणी उद्यान संचालित है जहाँ लगभग 300 से ज्यादा वृक्षों और पौधों की प्रजातियों को संरक्षण किया गया है। इस उद्यान को भारत सरकार पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा झारखण्ड में विरल, संकटग्रस्त तथा विलुप्त प्राय पौधों के संरक्षण हेतु अग्रणी उद्यान घोषित किया गया है। यहाँ पर संरक्षित वृक्ष तथा पौधे से प्राप्त बीज को सुरक्षित रखा जाता है तथा अन्य विधि प्रवर्धन के तरीके इजाद कर उसे तरह-तरह से संरक्षित करते हैं। यहाँ पर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता द्वारा सुझाई 21 प्रजातियों में से 15 प्रजातियों का विशेष रख रखाव किया जा रहा है ताकि भविष्य में इसकी संख्या को बढ़ाया जा सके।

# व्यापारिक महत्व के वनौषधि पौधे का विनाशविहीन विदोहन आवश्यक है

डॉ. एस.सी. विश्वास, डॉ. प्रशांत हजारिका, डॉ. ए.के. पाण्डे एवं सुश्री प्रणामी बरुवा  
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा की बढ़ती हुई लोकप्रियता के फलस्वरूप हर्बल उत्पादों की मांग में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त होने वाली जड़ी-बूटियां अपेक्षाकृत सस्ती व आर्गनिक होने के कारण हर्बल उद्योग द्वारा अधिक पसंद की जाती है।

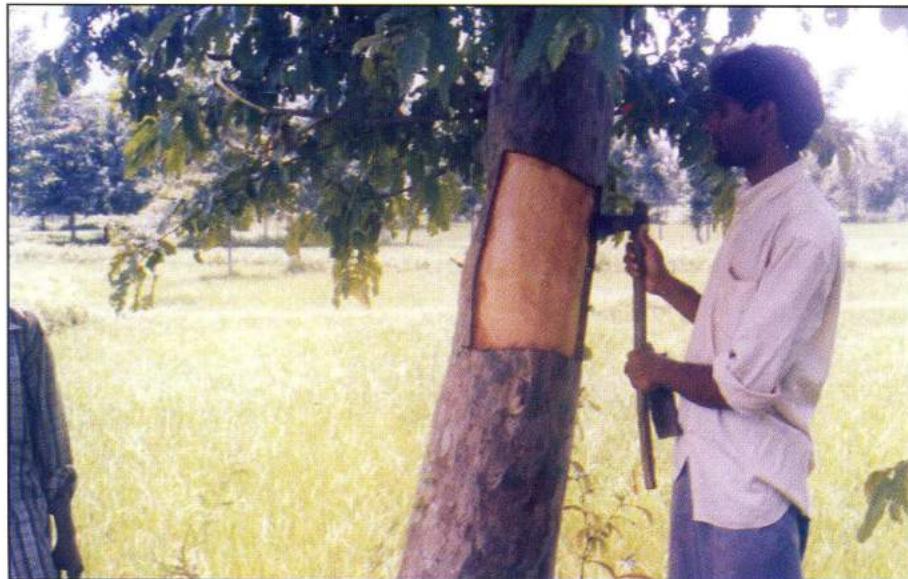
भारत में लगभग 80 प्रतिशत लोग अभी भी स्थानीय जड़ी बूटियों पर निर्भर हैं। देश की एवं समूचे विश्व की आबादी बढ़ने से औषधीय पौधों की मांग अधिक बढ़ गई है मांग बढ़ने से इनका दोहन हमारे वनों से निरंतर हो रहा है औषधीय पौधों के समस्त भाग जैसे जड़, कन्द, तना, फल, बीज, छाल, फूल, पत्ती व लकड़ी को उपयोग किया जाता है परन्तु जड़ का उपयोग सबसे अधिक (29 प्रतिशत) किया जाता है। वनवासियों द्वारा इन पौधों को समूल खुदवाकर मूल एकत्र करते हैं जैसे सफेद मुसली, सतावर, सर्पगंधा आदि।

जंगलों से बेल, आँवला, हर्रा, बहेरा आदि औषधीय महत्व के फल भी विलुप्त होने के खतरे से खाली नहीं हैं क्योंकि इन वृक्षों के फल निरंतर इकट्ठे कर लिये जाते हैं। इतना ही नहीं इन फलों को तोड़ने के झंझट से बचने के लिए इनको नीचे से

काट दिया जाता हैं जिससे फल आसानी से तोड़े जा सके। जिन वृक्षों की छाल की आवश्यकता होती है (जैसे अर्जुन, अशोक आदि), उनकी छाल उतार ली जाती है जिससे वह पैड सूख जाता है। अतः वनों से वनौषधियों का दोहन निरंतर निर्मम रूप से अवैज्ञानिक विधि से किया जाता है जिससे विशिष्ट औषधियाँ विलुप्त होकर केवल इतिहास के पन्नों में ही रह गई हैं, जैसे संजीवनी बूटी। उत्तरपूर्वी राज्यों में पाये जाने वाले गुगल, सर्पगंधा, सफेद मुसली, कीरामार, पुष्करमूल, विरायता, कलिहारी आदि के अस्तित्व को खतरा हो गया है यदि हमें उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद प्राप्त करने हैं तो हमें औषधीय पौधों का निश्चित समय पर विदोहन करना होगा। इस दिशा में उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान द्वारा अनुधान कार्य किया जा रहा है तथा कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की विनाश विहीन दोहन पद्धति विकसित की गई है।

## बैचान्दी कन्द:

बैचान्दी (*Dioscorea hispida*) के कन्द में स्टार्च अधिकता में पायी जाती है तथा डायोसजेनिन नामक औषधि गुण वाले रासायनिक तत्व पाये जाने के कारण यह कन्द



औषधीय गुण के पेड़ों की छाल के विनाश विहीन संग्रहण हेतु छाल तने की पुरी गोलाई से न निकाल कर केवल एक तिहाई हिस्से को ही निकालें जिससे नये छाल पुनः धाव को भर ले एवं पेड़ को नुकसान न पहुंचे।



व्यापारिक महत्व का है। इसका दोहन अैज्ञानिक विधि से होने के कारण विलुप्ता के कागार पर है विनाशविहीन दोहन हेतु कम से कम एक कन्द संग्रहण के समय अवश्य छोड़ना चाहिए।

## सालपर्णी

सालपर्णी (*Desmodium gangeticum*) का जड़ दस्मुलारिष्ट औषधी के निर्माण के कारण संग्रहण किया जाता है। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि औषधीय महत्व का रासायनिक तत्व ड्स्मोडिन जड़ के साथ-साथ पौधे के परिपक्व होने पर आकाशीय भाग में भी पायी जाती है अतः मूल के स्थान पर आकाशीय भाग को एकत्र किया जा सकता है जिससे जड़ से पुनः पीक आ जाए। यदि जड़ हेतु सम्पूर्ण पौधा उखाड़ा जाये तो विनाशविहीन विदोहन हेतु 30 से 40 प्रतिशत पौधे अवश्य छोड़े जायें।

## भूई आंवला

भूई आंवला (*Phyllanthus amarus*) पौधे में फाइलेन्थीन नामक तत्व पाये जाने के कारण यह औषधीय महत्व का होता है। इस पौधे की विनाशविहीन दोहन हेतु 10 प्रतिशत पौधा संग्रहण के समय छोड़ना आवश्यक है।

## कालमेघ

पहले वनों में कालमेघ (*Andrographis paniculata*) की उपलब्धता अधिक थी, परन्तु मांग बढ़ने के साथ-साथ इसकी

उपलब्धता कम होती गई और आज स्थिति यह है कि बहुत से वन क्षेत्रों से यह प्रजाति लुप्तप्राय सी हो गई है। यह स्थिति इस पौधे के अैज्ञानिक व विनाशवान दोहन के कारण हुई है। समय की मांग को देखते हुए इस पौधे की खेती की जाय।

मलेरिया रोग में भी यह एक महत्वपूर्ण औषधि है। एक तो यह रोग के कारण को ठीक करती है तथा मलेरिया के दौरान जो लीवर कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं उन्हें पुनः ठीक करने में बहुत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त यह अग्निमांध, रक्त विकास, जीर्णज्वर तथा विभिन्न चर्मरोगों में भी उपयोगी है। इससे बनने वाली दवाई 'टेफ्रीली' का उपयोग वायरल हेपेटाइटिस में किया जाता है। कालमेघ के विनाश विहीन संग्रहण हेतु पौधे के आकाशीय भाग को धारदार औजार से जमीन के एक से दो इंच ऊपर से काटें।

## सर्पगंधा

रावोल्फिया सर्पेन्टाइना (*Rauvolfia serpentina*) यह हिमालय, उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, मेघालय, पश्चिमी घाट, उड़ीसा, छोटा-नागपुर, गोआ, कर्नाटक, केरल, छत्तीसगढ़ में बस्तर आदि में प्रचुरता से पाई जाती है। वनों में सर्पगंधा वनस्पति प्राकृतिक रूप से पहले प्रचुरता से उपलब्ध थी, परन्तु इसके अत्यधिक दोहन ने इसे संकटग्रस्त पौधों की श्रेणी में पहुँचा दिया। फलस्वरूप भारत सरकार द्वारा इस पौधे को निर्यात के लिए प्रतिबंधित पौधों की सूची में डाल दिया गया है तथा वनों से भी इसके विदोहन पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।



सर्पगंधा के विनाश विहीन संग्रहण हेतु जड़ का एक 2-3 इंच का टुकड़ा अवश्य छोड़े।



शतावर के विनाश विहीन संग्रहण हेतु कंद का दस प्रतिशत अवश्य छोड़े।



# मृदा की उर्वरता में मृदा के सूक्ष्म जीवों का महत्व

डॉ. पारुल भट्ट कोटियाल एवं डॉ. एम.के. गुप्ता  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सूक्ष्म जीवों का मृदा की जैवविविधता में एक महत्वपूर्ण योगदान है। एक ग्राम मिट्टी में अरबों की संख्या में सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं। यह सूक्ष्म जीव आपस में एवं वनस्पति और अन्य जीवों में सामंजस्य बैठाकर हमें एक ऐसा परिस्थितिकी तंत्र प्रदान करते हैं जो जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म जीवों के महत्वपूर्ण योगदान मृदा में पोशक साइकिल चालन एवं विघटित करना हैं। यह सूक्ष्मजीव जटिल सामग्री को विघटित करते हैं एवं पोशक तत्वों को एक जटिल रूप से सरल रूप में परिवर्तित करते हैं जिससे कि यह पोशक तत्व पौधों और अन्य जीवों को उपलब्ध हो जाते हैं।

मृदा की उर्वरता अकार्बनिक पदार्थ एवं कार्बनिक पदार्थ पानी और हवा पर ही निर्भर नहीं है। यह सूक्ष्म जीवाणुओं की उपस्थिति पर भी निर्भर करते हैं। उपयोगी सूक्ष्मजीव विशाक्त अपशिष्ट को एवं दूसरे प्रदूषण पदार्थ को विघटित कर मृदा की उर्वरता को बढ़ाते हैं। मृदा में कार्बन डाइआक्साइड और कार्बनिक पदार्थ की उपस्थिति में सूक्ष्मजीव विभिन्न तरीकों से परिवर्तन कर पोशक तत्वों को पौधों को उपलब्ध कराते हैं एवं स्थिर वांछनीय मृदा संरचना बनाकर पौधों की वृद्धि कर उत्पादकता बढ़ाते हैं।

मृदा जीव दो समूहों में वर्गीकृत हैं : मिट्टी वनस्पति और मिट्टी पशुवर्ग। ये फिर उप मिट्टी मैक्रो वनस्पति (उच्च पौधों की जड़ों) और मिट्टी सूक्ष्म वनस्पति (बैकिटिरिया, कवक, actinomycetes और शैवाल) में विभाजित हैं। मिट्टी मैक्रो पशुवर्ग (मोल, चीटियों और केंचुआ) और मिट्टी सूक्ष्मजीव (प्रोटोजोआ और नेमाटोड) इन सभी ग्रुपों में बैकिटिरिया सबसे अधिक संख्या में पाए जाते हैं दूसरे स्थान पर एकिटनोमासिटिस उसके बाद फफूंद तथा बाद में शैवाल पाए

जाते हैं जो कि किसी मुख्य स्थान या विशिष्ट परिस्थितियों में पाए जाते हैं। वैज्ञानिक गणना के अनुसार इन चार महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीवों के बायोमास 960 कि.ग्रा./एकड़ है। एक उपजाऊ मिट्टी में ऊपरी सतह में विभिन्न तरीके के सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं जो कि कार्बनिक पदार्थ विघटित कर हयूमस बनाते हैं।

समस्त तरह की वनस्पति पोशक तत्वों को आयनिक रूप में ग्रहण करती है। पोशण तत्व जटिल आणुविक रूप में पाए जाते हैं इन जटिल पोशक तत्वों का सरल रूप में रूपांतरण सूक्ष्मजीवों द्वारा किया जाता है इस प्रक्रिया को mineralization कहा जाता है। भौतिकी बनावट, हवा का आना जाना, जल धारण क्षमता एवं पोशक तत्वों की उपलब्धि मृदा के खनिज घटक निर्धारित करते हैं जो चट्टानों के टूटने एवं सूक्ष्मजीवों की तोड़ने की गतिविधियों से बनते हैं। मृदा में सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति एवं संख्या मिट्टी की प्रकृति एवं रासायनिक संरचना पर निर्भर करती है। मिट्टी की ऊपरी परत पर 5–15 से.मी. की गहराई पर सबसे अधिक सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं। जिनकी संख्या लगभग 10,00,000 प्रति घन से.मी. है।

मृदा स्वास्थ्य मृदा की भौतिक एवं रासायनिक घटकों को देखकर नहीं पता चलता अपितु उसके लिए सूक्ष्मजीवों का अध्ययन करना भी अति आवश्यक है। सूक्ष्मजीव किसी भी बदलाव को तुरंत भांप लेते हैं एवं तेजी से पर्यावरण परिस्थितियों के अनुकूल ढल जाते हैं। जो सूक्ष्मजीव जितनी जल्दी रूपांतरित हो जाते हैं उनकी संख्या में वृद्धि हो जाती है। इसलिए सूक्ष्मजीवों की संख्या में अगर कोई बदलाव होता है तो वो मिट्टी के स्वास्थ्य में परिवर्तन के बहुत अच्छे संकेत के रूप में कार्य करते हैं।



## मृदा के गुणवत्ता सूचकांक (SQI) द्वारा मृदा स्वास्थ्य का मूल्यांकन

डॉ. पारुल भट्ट कोटियाल एवं डॉ. एम.के. गुप्ता  
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

कृषि और वन प्रबंधन मॉनिटरिंग में मृदा की समग्र गुणवत्ता उत्पादकता में संभव परिवर्तनों को देखने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वन संवर्धन में विभिन्न प्रबंधन के तरीकों का उत्पादकता पर प्रभाव का मूल्यांकन करना पड़ता है इसलिए मृदा की गुणवत्ता सूचकांक (SQI) का उपयोग बहुत सुविधाजनक है। यह सूचकांक मृदा की कार्यक्षमता की एक समग्र तस्वीर प्रदान करता है। यह मृदा की जैविक, रासायनिक और भौतिक परिस्थितियों को दर्शाता है। जो कि सतत उत्पादकता के लिए बहुत आवश्यक है। यह सीधे नहीं मापा जा सकता है। मृदा स्वास्थ्य विशिष्ट मृदा गुण जैसे कार्बनिक पदार्थ सामग्री को मापने के द्वारा और मृदा की स्थिति (जैसे प्रजनन क्षमता) को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है।

मृदा की गुणवत्ता का छह व्यापक कार्यों जैसे भूजल गुणवत्ता, सतह जल की गुणवत्ता, हवा की गुणवत्ता, भोजन की गुणवत्ता मृदा की संरचनात्मक जैसे बनावट, जल धारण क्षमता; मृदा की गहराई, रासायनिक जैसे अम्लता, कटियन विनियम क्षमता और जैविक जैसे सूक्ष्मजीव गतिविधि द्वारा मापी जाती है और मृदा की गुणवत्ता सूचकांक (SQI) मूल्य मृदा भौतिक रासायनिक और जैविक कारक पर निर्भर करता है। यह थोक घनत्व पी.एच. जैविक कार्बन, नाईट्रोजन, पोटेशियम, फॉस्फोरस, कैल्सियम, सोडियम, जीवाणु और

केंचुआ जैसे गुण शामिल हैं। इन संकेतकों को मोटे तौर पर भौतिक, रासायनिक और जैविक संकेतक के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है और इन संकेतकों में बदलाव को मापने से हम मृदा की समग्र गुणवत्ता एवं प्रजनन क्षमता का आकलन कर सकते हैं। मृदा के गुणवत्ता सूचकांक इस धारणा पर आधारित है कि ऊपरी सतह की उत्पादकता एवं जमीन के नीचे की प्रक्रिया का एक सीधा संबंध है और इसलिए जब भी एक जलरी मृदा कारक जड़ों के विकास को रोकता है तो सतह के ऊपर की उत्पादकता में कमी आ जाती है। मृदा की गुणवत्ता सूचकांक (SQI) मृदा की गुणवत्ता पर मृदा प्रबंधन के व्यवहार प्रभाव का आकलन करने के लिए उपकरण के रूप में हाल के वर्षों में प्रस्तावित किया गया है। मृदा की गुणवत्ता सूचकांक कृषि एवं वन प्रणालियों की आर्थिक विश्लेषण में और कृषि और वन पर्यावरण नीति के डिजाईन में एक महत्वपूर्ण उपकरण हो सकता है। यह सूचकांक समय के साथ विभिन्न भूमि उपयोग एवं वन मृदा के गुणों में परिवर्तन की निगरानी के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है इसमें एक ही अंक में मृदा के 19 भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को एकीकृत करके गणना की जाती है और नियमित रूप से परीक्षण करने से हम अपनी मृदा के स्वास्थ्य का एक आलेख का निर्माण कर भविष्य में इसका उपयोग कर सकते हैं।



## ताप प्रदूषण एवं वन

डॉ. ओम कुमार एवं श्री सुधीर कुमार  
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

उद्योग धन्धे शहर में गर्मी पैदा करने के प्रमुख स्रोत है। शहर की जनसंख्या जितनी अधिक होगी शहर उतना ही ज्यादा गर्म होगा। देखा गया है कि पुराने कच्चे मिट्टी से बने मकानों की अपेक्षा आज पक्के कंकरीट से बने मकान गर्म रहते हैं। एक नियत सीमा से अधिक ताप के बढ़ने को ही ताप प्रदूषण कहते हैं।

### मुख्य स्रोत

उद्योग धन्धे, परमाणु रियेक्टरों, शहर की बढ़ती जनसंख्या और अधिक से अधिक वनों का कटान ताप प्रदूषण के मुख्य कारण है।

औद्योगिक प्रतिष्ठानों परमाणु व नाभिकीय रियेक्टरों आदि में शीतलन के लिए काफी मात्रा में जल का उपयोग होता है। यह गरम पानी, झीलों नदियों या समुद्र में निष्कर्षित किया जाता है। इससे जल का तापमान बढ़ जाता है। इससे ताप प्रदूषण का जन्म होता है। जो मछलियों व अन्य जलीय प्राणियों व वनस्पति पर हानिकारक प्रभाव डालता है।

वायुमण्डल का तापमान धीरे-धीर बढ़ रहा है। इस बात का असर धीरे-धीर हिम नदों (ग्लेशियरों) पर तथा 'हिम टोट, (आइसकैप्स) पर पड़ रहा है। ये धीरे-धीर पिघलने लगे हैं। बदलते हुए तापमान का प्रभाव पशुओं पर तथा वनस्पति पर भी पड़ रहा है। वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। वर्ष 1900 के बाद उसकी मात्रा में 0.14 प्रतिशत की वृद्धि हुई। हम भूर्भु से निकले हुए ईंधन को जला रहे हैं। दुनिया के दलदलों में 3 खरब 66 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड बन्द है। बढ़ते हुए तापमान में ये दलदल धीरे-धीर सूख जाते हैं। तब वह कार्बन डाइऑक्साइड हवा में मिल जाती है यह प्रक्रिया जब एक बार शुरू हो जाती है तो अपने आप बढ़ती जाती है।

आज सारी दुनिया में वन कट रहे हैं। इससे भी वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। और थोड़ा-थोड़ा ताप मान में भी बढ़ोतरी हो रही है। उद्योग धन्धे तथा वाहन आदि नगर के वातावरण को गर्म कर देते हैं। सीमेन्ट के बने मकान भी ताप को शोषित कर नगर का तापमान बढ़ाते हैं। जनसंख्या का अधिक्य भी शहर के तापमान

को बढ़ाने में योगदान देता है। पेड़ पौधे तथा वनस्पतियां ताप को कम करती हैं। इस लिए नगर के जिन भागों में पेड़ पौधे अधिक होते हैं। वहां का तापमान कम होता है। गांवों का तापमान शहरों की अपेक्षा इस लिए कम होता है कि वहां पर उद्योग कम होते हैं, पेड़ पौधे अधिक होते हैं तथा वहां पर जनसंख्या का घनत्व कम होता है।

हमारे पूर्वजों ने पहाड़ पथर, नदी, पेड़, पौधों पर छेड़छाड़ करने के स्थान पर उनको पूजने की बात की है। यही नहीं पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए उन्होंने पंचतत्व के इस शरीर को मृत्यु के पश्चात उसी में विलीन हो जाने की परिकल्पना प्रस्तुत की है। तुलसी, आम, पीपल को पूजने की बात कही गयी है। और इसे पुनीत कार्य माना गया है। हमारे पूर्वजों की यही मंशा थी कि प्राकृतिक संतुलन बना रहे और आज सभी पर्यावरणीय विशेषज्ञ इस बात से सहमत है कि वनों पर ही प्राणीयों का अस्तित्व निर्भर है।

तापमान पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं दोनों को ही प्रभावित करता है। समस्त जैविक क्रियाये ताप द्वारा प्रभावित होती है। उषा को सहने की क्षमता भी पर्यावरण के अन्य कारकों जैसे आर्द्रता इत्यादि से प्रभावित होती है। यही कारण है कि मरुस्थलों में बहने वाली शुष्क वायु ( $32^{\circ}\text{C}$ ) मनुष्य को अधिक कष्टप्रद प्रतीत नहीं होती इसके विपरीत उष्ण कटिबन्ध क्षेत्रों में आपेक्षिक आर्द्रता अधिक होने से इसी तापमान पर वातावरण कष्टप्रद व असहनीय हो उठता है।

### पौधों में तापमान के प्रभाव

पौधों में जल अवशोषण, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन तथा वाष्पोत्सर्जन इत्यादि सभी प्रमुख क्रियाएं तापमान से प्रभावित होती हैं। प्रत्येक जीवित वस्तु एक निश्चित तापमान से सीमित होती है। अधिकांश जैविक क्रियाएं  $0\text{--}50^{\circ}$  से तापमान सीमा के बहार सामान्यतः जीवी क्रियाएं धीमी पड़ जाती हैं।

### तापमान का पौधों की वृद्धि पर प्रभाव

पौधों की वृद्धि, उनमें फल, फूलों का सुचारू रूप से पैदा होना तथा उनके अस्तित्व पर तापमान का गहरा प्रभाव पड़ता है। पौधों पर बहुत से प्राणी अपने आहार के लिए निर्भर करते हैं।



पौधों में वृद्धि मुख्यतः रासायनिक एवं क्रियात्मक प्राकर्म के फलस्वरूप ही होती है। वैसे तो यह वृद्धि सामान्य रूप से होती है परं ऊँचे तापमानों में अधिक अच्छी तरह से होती है। अधिक तापमानों में यद्यपि पौधों में पुनरुत्थान नियमानुसार ही होता है। परं अत्यधिक उत्सर्जन से जल का संतुलन प्रभावित होता है।

अधिक ताप के प्रभाव से पौधों में रचना और क्रियाविधि सम्बन्धी कुछ परिवर्तन देखे जाते हैं जो निम्न हैं :

### तापमान के प्रभाव

1. तापमान में अधिक वृद्धि होने से पौधों में वाष्पोत्सर्जन अधिक होता है तथा पौधे मुरझा जाते हैं या बिलकुल ही सूख जाते हैं।
2. पौधों की पत्तियां लम्बवत दिशा में बढ़ती हैं जिससे सूर्य की किरणें को कम से कम ग्रहण कर सके।
3. पत्तियों में पर्ण हरित कम मात्रा में होता है।
4. पत्तियां रोम युक्त होती हैं।

### ताप प्रदूषण पर नियन्त्रण

1. अधिक से अधिक वनों को लगाकर हम ताप प्रदूषण पर नियन्त्रण कर सकते हैं।
2. बड़ती हुई जनसंख्या को रोककर भी हम ताप प्रदूषण को कम कर सकते हैं।

3. ऐसा देखा गया है कि छायादार वृक्ष सूर्य के ताप को जमीन पर पड़ने से रोककर वातावरण के तापमान में 2 डिग्री फारेनहाइट से 3 डिग्री फारेनहाइट तक कमी करते पाये गये हैं।

वन छाया व नमी को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं। मृदा की नमी को वाष्पन से रोकते हैं, तापमान को बढ़ने से रोकते हैं, तथा वायुमण्डलीय आर्द्रता को अवशोषित करके वर्षा में सहायक होते हैं। जमीन को ढकने वाले पौधे जमीन को तेज वर्षा की धारा से बचाते हैं, इस प्रकार ये पेड़ पौधे जल के बहाव को रोककर बाढ़ की सम्भावना को कम करते हैं परिणामस्वरूप ये भूक्षण रोकने में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं, इनकी जड़ें मृदा कणों को मजबूती से जकड़ी रहती हैं। जिनकी वजह से भूक्षण की समस्या नहीं हो पाती इतना ही नहीं पेड़ पौधों की वजह से जमीन की मृदा पोरस बनी रहती है जिस वजह से वर्षा का पानी सुगमता से जमीन के अन्दर रिसता चला जाता है यह जमीन के अन्दर एक जलाशय का रूप धारण कर लेता है तथा बाद में यही पानी झरनों, नदियों के रूप में बहता रहता है।

वन वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड तथा ऑक्सीजन का संतुलन बनायें रखने में सहायक है। पर्याप्त मात्रा में पेड़ पौधे होने से ये वायुमण्डल में विद्यमान कार्बन डाईऑक्साइड को प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा भोजन बनाने में प्रयोग करते हैं तथा बदले में जीवनधारियों को ऑक्सीजन देते हैं जिसे हम सांस लेने में प्रयोग करते हैं।



# उत्तर भारत में बहुपयोगी वृक्ष प्रजातियों पर आधारित कृषि वानिकी

डॉ. चरन सिंह एवं डॉ. रामवीर सिंह  
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

## परिचय :

पर्वतीय क्षेत्रों में बहुपयोगी वृक्ष प्रजातियों पर आधारित कृषि वानिकी को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा भोजन, चारा एवं रेशा उत्पादन का मुख्य साधन माना गया है विभिन्न अध्ययनों के आधार पर कहा जा सकता है कि बहुपयोगी वृक्ष कृषि, वानिकी पद्धति, भूमि सुधार तथा मृदा संरक्षण में काफी उपयोगी हैं। जब भी पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की बात आती है पड़ती भूमि तथा अवक्षरित (*degraded*) मृदा का दृश्य सामने आता है। हमारे देश में कुल भूमि की लगभग एक-तिहाई भूमि पड़ती भूमि हैं जिसका एक बड़ा हिस्सा पहाड़ी क्षेत्रों में है इसका कारण पहाड़ी ढलान होने के कारण मृदा क्षरण माना जाता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से ढालानों के कटाव को रोकना, पानी तथा मृदा को संरक्षण, भूमि की उर्वकता बढ़ाना तथा पड़ती भूमि का उपयोगी बनाना आदि बड़ी चुनौती हैं। इसके लिए जैविक-अभियांत्रिकी तकनिकी पर आधारित क्रिया-कलापों की आवश्यकता हैं लेकिन इस तरह के कार्य केवल किसानों द्वारा नहीं किये जा सकता क्योंकि इनके लिए तकनीकी तथा वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है। विकल्प के तौर पर पारम्परिक कृषि वानिकी पद्धतियों द्वारा भी किसानों द्वारा भूमि सुधार तथा मृदा संरक्षण का कार्य किया जा सकता है। इसके लिए बहुपयोगी वृक्षों को वैज्ञानिक तरीके से पर्वतीय कृषि वानिकी में समावेश किसानों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

बहुपयोगी वृक्षों का कृषि वानिकी के तहत समावेश वनों के संरक्षण में भी सहायक हैं क्योंकि यह वनों पर स्थानीय लोगों के भोजन, चारा तथा अन्य वन उत्पादों से सम्बद्ध दबाव कम करने में सहायक हैं।

यद्यपि बहुवर्षीय प्रजातियों को कृषि फसलों के साथ उगाने पर उनके बीच पोषक तत्वों तथा प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ती है लेकिन पौधों का प्रबन्धन वैज्ञानिक तरीके से किया जाय तो इस प्रतिस्पर्धा को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसके लिए उचित कृषि फसल जो कि बहुवर्षीय पौधों की छाया में पनप सके का चुनाव उपयोगी रहता है।

साथ ही बहुवर्षीय पौधें जब वृक्षों का रूप लेने लगे तब उनके छत्रक का छटान करके कृषि फसल के लिए वांछित प्रकाश की पूर्ति की जा सकती है।

## पर्वतीय कृषि वानिकी के लिए बहुपयोगी वृक्ष प्रजातियों का चयन :

बहुपयोगी वृक्ष प्रजातियों के गुणों के अनुसार ही कृषि फसलों के साथ इनको स्थापित किया जाता है अध्ययनों के आधार पर खैर, सिरस, कचनार, खड़िक, सफेदा, भीमल, सुबबूल, वकायन, शहतूत, सैजन, पॉपलर आदि कृषि वानिकी के लिए उचित तथा लाभकारी प्रजातियां पाई गई हैं। इन सभी प्रजातियों का चयन किसानों को भोजन, ईंधन चारा, रेशा तथा अन्य उत्पादों की आवश्यकता के अनुसार करना होता है इन सभी खैर (अकेशिया कट्टैचू) कृषि वानिकी प्रजातियों का उपयोग निम्नवत किया जाता है।

इस प्रजाति के काष्ठ से कृषि उपकरण, हत्थे घरेलू सामान, नाव का सामान बेल गाड़ियों के पहियों की धुरी तथा चारकोल आदि का निर्माण किया जाता है। लकड़ी को पानी में उबालकर कत्था प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग रंगाई तथा औषधि के रूप में किया जाता है। कत्था को ठंडा, प्यास शामक तथा गले के रोगों में उपयोगी माना गया है इसकी पत्तियां भेड़ बकरियों के लिए चारे के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं। खैर के तने से गोंद भी प्राप्त किया जाता है जो कि दस्री बबूल के गोंद को एक विकल्प है। खैर की पत्तली पटिट्यों को कत्था निकालने के बाद बोर्ड बनाने के काम में लाया जाता है।

## सिरिस (एल्बीजिया लैबैक)

इस प्रजाति के काष्ठ का उपयोग उच्च गुणवत्ता के घरेलू सामान, अलमारी, सजावटी सामान खिड़की, दरवाजे, कृषि उकरण, हत्थे, फर्श के तख्ते आदि में किया जाता है। इसकी लकड़ी से टेनिस के रैकिट तथा तसवीरों के फ्रेम आदि बनाए जाते हैं।

इसकी पत्तियों का उपयोग ऊँटों तथा अन्य पशुओं के लिए चारे के रूप में किया जाता है।



## कचनार (बौहिनिया वेरीगोट)

कचनार के तने से कृषि औजारों के हथये बनाए जाते हैं तथा पत्तियों का प्रयोग चारे के रूप में किया जाता है। छाल का प्रयोग औषधीय रूप में होता है। फलों की कलिका अवस्था में सब्जी बनाई जाती है।

## खड़िक (सेल्टिस ऑस्ट्रेलिस)

इस प्रजाति की लकड़ी लचीली, मजबूत तथा टिकाऊ होती है। इसका प्रयोग औजारों के हथये, कप, चम्च, खेल के सामान, हल तथा अन्य सामान बनाए जाते हैं। इस प्रजाति की पत्तियों में प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते हैं अतः ये पशुओं के लिए चारे के रूप में प्रयोग की जाती है।

## सफेदा (यूकेलिप्टस)

सफेदा की पत्तियों में तेल पाया जाता है जिसे आसवन विधि से निकाला जाता है। इस तेल का प्रयोग औषधीय तथा स्नेहन के रूप में किया जाता है। इस तेल को प्रयोग सौन्दर्य प्रसाधनों में भी किया जाता है। साथ ही इसका उपयोग चोट मोंच की दवाइयाँ बनाने में भी किया जाता है।

सफेदा की लकड़ी का उपयोग पैकिंग बाक्स, दरवाजों, खिड़की तथा बलिलयों बनाने में किया जाता है।

लकड़ी तथा पतली टहनियों का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। इससे औद्योगिक स्तर पर चारकोल का निर्माण भी किया जाता है।

सफेदा की कुछ प्रजातियों के फूलों के मकरन्द से मधुमक्खियाँ शहद का निर्माण करती हैं।

## भीमल (ग्रीविया ओप्टीवा)

भीमल को कृषि वानिकी के अन्तर्गत पर्वतीय क्षेत्रों में लघु कृषकों द्वारा खेतों की परिधि पर उगाया जाता है तथा खेतों में धास के साथ इसका पौधा रोपण भी किया जाता है। इसकी पत्तियों का उपयोग स्थानीय लोगों द्वारा पशु चारे के स्प में किया जाता है। इससे रेशा प्राप्त कर रसियाँ बनाई जाती हैं। लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप भी किया जाता है। तने की छाल का उपयोग साबुन तथा सैम्पू बनाने में किया जाता है।

## सुबबूल (ल्यूसीना ल्यूकोसिफेला)

इस प्रजाति से उत्तम कोटि का ईंधन प्राप्त होता है तथा पत्तियों तथा कोमल टहनियों से पशुओं के लिए चारा प्राप्त होता है। पत्तियों से उत्तम कोटि की हरी खाद का निर्माण होता है। औद्योगिक स्तर पर इस प्रजाति से पेपर, गोंद तथा तख्तों का निर्माण किया जाता है।

## बकैन (मीलिया एजेडिरैक)

बकैन नीम परिवार की तेजी से बढ़ने वाली कृषि वानिकी के तहत उगायी जाने वाली प्रजाति हैं इसकी दो प्रजातियाँ हमारे देश में सामान्यतः कृषि वानिकी पद्धति में लगाई जाती है। मीलिया एजेडिरैक जिसे बकैन के नाम से जाना जाता है तथा दूसरी मीलिया कम्पोजिटा जिसे सामान्यतः वर्मा ड्रेक तथा ड्रेक के नाम से जाना जाता है। बकैन का तना टेड़ा-मेड़ा तथा गठीला होता है जबकि वर्माड्रेक का तना सीधा तथा साफ सुथरा होता है तथा यह पौधा अपेक्षाकृत जल्दी बढ़ता है यद्यपि इसकी लकड़ी कुछ हल्की एवं मध्यम दर्ज की होती है फिर भी इसका उपयोग कृषि उपकरण तथा भवन निर्माण में किया जाता है इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी पेकिंग बाक्स बनाने में प्रयुक्त होती है।

यह प्रजाति भेड़ बकरियों के लिए चारे का एक अच्छा स्त्रोंत हैं बीजों का प्रयोग साबुन तथा शेम्पू बनाने में किया जाता है। बीजों का प्रयोग रक्त शोधन के रूप में भी किया जाता है।

## शहतूत (मोरस एल्बा)

शहतूत कृषि वानिकी के तहत उगाया जाने वाला माड़ीनुमा पौधा है इसकी छाया कृषि फसलों पर विशेष प्रभाव नहीं डालती। छटाई से प्राप्त टहनियों से ढलियों, टोकरियों आदि सामान बनाये जाते हैं टोकरियों तथा अन्य ढुलाई के सामानों का निर्माण ग्रामीणों लोग ही करते हैं जिससे उनको स्थानीय तौर पर रोजगार प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रजाति पर रेशम की का पालन भी किया जाता है इससे भी ग्रामीण लोगों को रोजगार मिलता है।

## सैजन (मोरिंगा टेरीगोस्प्यमा)

यह एक मध्यम आकर का वृक्ष होता है जो कि सामान्यतः हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है इसके अतिरिक्त इसको मैदानी क्षेत्रों में भी उगाया जाता है।

सैजन की फलियों का उपयोग सब्जी तथा अचार के रूप में किया जाता है तथा जड़ की छाल का उपयोग यकृत शोथ को ठीक करने के लिए किया जाता है इसके अतिरिक्त इसमें रोग रोधी गुण होने के कारण यह प्राकृतिक तौर पर पेनिसिलीन का कार्य करता है।

कृषि वानिकी के तहत इस प्रजाति का पारिवर्धन आवश्यक है क्योंकि यह प्रजाति आज बहुत कम संख्या में विद्यमान है।



## बांस

बाँस बहुत ही तेजी से बढ़ने वाली वृक्षीय अथवा काष्ठीय घास है। भारत में इसकी 125 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यह गरीबों के काम आने वाली बहुपयोगी प्रजाति है। इसे हरा सोना तथा गरीबों का मित्र भी कहा जाता है। यह भारत के उत्तर पूर्व भाग में बहुतायत से उगाई जाती है। इसकी खेती बंजर जमीन तथा नदियों के किनारे जहां भू-क्षरण की सम्मावना अधिक होती है वहाँ की जाती है। इसकी रेशेदार जड़े मिट्टी के कटान को रोकने में सहायक हैं। बाँस का एक साथी रिंगाल भी है जो कि विशेष तौर पर पर्वतीय क्षेत्रों में उगाया जाता है।

बाँस की सीधाई तथा हल्केपन के कारण बांस को विभिन्न उपयोगों में लाया जाता है। बाँस की कुछ प्रजातियों सभी तथा अचार के रूप में खाया भी जाता है। इसके अतिरिक्त बाँस का उपयोग टोकरी, विछोत चटाई, झाड़ू ब्रुश, मकान, टोपी, वाद्ययंत्र कुर्सी, चिप, ताबूत, कंघे, फूल-दान सोफे, कपड़े, पतंग, आदि बनाने में किया जाता है। आजकल बाँस तथा रिंगाल का उपयोग घरों के सजावटी सामान बनाने में भी किया जाता है। खाने की चम्मच तथा फर्क का निर्माण भी आज बाँस से ही किया जाने लगा है।

बाँस से उपयोगी औषधी वंशलोचन भी प्राप्त की जाती हैं जिसे च्यवनप्राश आदि में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार बाँस हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी प्रजाति है।

## पॉपलर (पोपूलस डेल्टाइडिस)

इसे वन पीपल के नाम से भी जाना जाता है यह तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति हैं तथा भारत के मैदानी भागों के लिए कृषि वानिकी पद्धति में एक वरदान साबित हुई हैं। इसका रोपण उत्तरी भारत के मैदानी भागों में उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब तथा हरियाणा राज्य में किया जाता है। इसकी लकड़ी का उपयोग प्लाईवुड बनाने के लिए किया जाता है आधुनिक अनुसन्धानों द्वारा इसके नये-नये क्लोन भी तैयार कर लिए गये हैं जैसे एस-7 सी-8, डी-121, आदि। इन क्लोनों से प्राप्त पौधों के रोपण से पॉपलर की लकड़ी का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

कृषि वानिकी के तहत पोपलर को मेड़ो पर तथा धनात्मक रूप में गेहूँ, मक्का तथा अन्य फसलों के साथ रोपित कर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। जिससे किसानों की आमदानी में वृद्धि होती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में पोपूलस सिलियेटा (पहाड़ी पीपल) का रोपण पट्टीदार खेतों के किनारों पर किया जाता है।

उपरोक्त विषयक विवरण के आधार पर स्पष्ट हैं कि कृषि वानिकी पद्धतियों में बहुपयोगी प्रजातियों का समावेश आदि काल से रहा है तथा ये प्रजातियाँ मानव के लिए हमेशा ही उपयोगी रही हैं। लेकिन इनमें से अधिकतर प्रजातियाँ कृषि वानिकी क्षेत्र तथा प्राकृतिक जंगलों से लुप्त होती जा रही हैं। मानव कल्याण के लिए इन प्रजातियों का प्राकृतिक वन क्षेत्रों तथा कृषि वानिकी में संरक्षण एवं प्रवर्धन आवश्यक है।



# पड़ती भूमि में कृषि वानिकी के अन्तर्गत महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की खेती एवं उपयोग

डॉ. रामबीर सिंह एवं डॉ. चरन सिंह  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्र (329 मिलियन हेक्टर) का लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्र पड़ती भूमि (अकृषि, बंजर, क्षारीय लवणीय, अम्लीय, अनुपजाऊ एवं कृषि योग्य भूमि आदि) के अन्तर्गत है जिसका पर्यावरण, बढ़ती जनसंख्या (मांग), औषधियाँ, तथा खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। देश की उपजाऊ भूमि की उर्वरा शक्ति मानव जन्य कारकों से दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। वर्तमान में लगभग 231 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन मात्र 144 मिलियन हेक्टेअर उपजाऊ भूमि से किया जा रहा है। जिस पर लगभग 110 करोड़ जनमानव खाद्य पूर्ति हेतु आश्रित है। इस बढ़ती हुई जन व पशु संख्या के लिए तथा सीमित होती हुई कृषि योग्य भूमि में आज नहीं तो कल खाद्यान्न, औषधियाँ, पशुचारा व ईंधन उपलब्ध करना कठिन हो जायेगा।

मृदा उत्पादकता में कमी एवं बेकार भूमि का होना एक गंभीर समस्या है। जो कि पानी व हवा क्षरण वनों के आवरण को हटाना, वनभूमि का अधिग्रहण तथा अत्यधिक मानवीय हस्तक्षेप इसके प्रमुख कारण हैं। जिससे वनों पर खाद्यान्न, औषधियाँ, पशुचारा व ईंधन के लिए अत्यधिक बोझ पड़ रहा है। बोहरा (1985) के अनुसार भारत में लगभग 12 मिलियन टन मृदा प्रति वर्ष बह कर नष्ट हो जाती है। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन के मतानुसार भारत के कुल 329 मिलियन हेक्टर भौगोलिक क्षेत्रफल में से 167 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र किसी न किसी प्रकार की अधोगति से प्रभावित हैं।

जल क्षरण	—	30.3 प्रतिशत
वायु क्षरण	—	16.8 प्रतिशत
क्षारीय व लवणीय	—	2.4 प्रतिशत

अर्थात् करीब 50 प्रतिशत भूमि अधोगति को प्राप्त हुई है। इसी प्रकार प्रति वर्ष करीब 2.1 हैक्टेयर भूमि वृक्ष विहीन होकर अधोगति को प्राप्त हो रही हैं। सिंह एवं अन्य (1981) के अनुमान से देश में पड़ती भूमि का क्षेत्रफल करीब 175 मिलियन है। पड़ती भूमि विकास उत्पादन समिति (NWDB) ने 120 मिलियन हैक्टेयर पड़ती भूमि दर्शायी हैं। जिसमें 40 मिलियन हैक्टेयर जंगल वाले भाग में एवं 80 मिलियन हैक्टेयर कृषि क्षेत्र में हैं। यदि हास इसी गति से आगे भी होता

रहा या इसके प्रबंध में कोई सकारात्मक परिवर्तन न किये गये तो भविष्य में खाद्यान्न, औषधियाँ, फल, ईंधन, काष्ठ एवं पशुचारे आदि की गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

संसाधनों के अनुचित इस्तेमाल से इन मृदाओं की उत्पादकता प्रभावित होकर पड़ती भूमि का रूप ले रही है। यदि हास इसी गति से होता रहा तो आने वालों दिनों में कई क्षेत्रों में अकाल भी पढ़ सकता है। इन पड़ती भूमि के सुधार व उचित उपयोग के लिए कृषि वानिकी ही उपयुक्त विकल्प हो सकता है। इन कृषि वानिकी पद्धतियों से मृदाओं की भौतिक व रासायनिक दशा में सुधार लाकर पड़ती भूमि को कृषि योग्य भूमि में बदला जा सकता है। तथा औषधीय पौधों की खेती कर उपयोग में लाया जा सकता है।

## कृषि वानिकी क्या हैं ?

कृषि वानिकी एक प्राचीन परम्परागत पद्धति है जिसमें खाद्यान्न फसलों के साथ-साथ बहुउद्देशीय वृक्षों को उगाना तथा एक ही इकाई भूमि में कृषि फसलों और मवेशियों को साथ-साथ उपयोगिता के आधार पर सम्मिलित करना ही कृषि वानिकी कहलाता है। जिसका मुख्य उद्देश्य कुल उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ जमीन की उर्वरकता को भी बनाये रखना है।

## कृषि वानिकी के प्रकार

- कृषि-वन वृक्ष पद्धति :** इस पद्धति में वन वृक्ष और कृषि फसल साथ-साथ उगाई जाती है। वन फसल छायादेने वाली, सहारा देने वाली फसल के रूप में भूमिका निभाती है। जहाँ एक ओर वृक्ष से उपयोगी वस्तुएँ जैसे ईंधन, चारा, काष्ठ एवं सामान बाँधने की सामग्री मिलती है, वहाँ कृषि फसल भी निचले तल पर उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। जैसे - बबूल, खमेर, गुरार (वन वृक्ष) के साथ सब्जियों का उत्पादन।
- वन चारागाह पद्धति :** इस पद्धति में वन वृक्ष के साथ निचली सतह पर घास उगाई जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य पशुओं के लिये चारा उपलब्ध कराना है। जैसे - शीशम के साथ दीनानाथ घास।



आँवले की खेती

3. कृषि वन फलोद्यान पद्धति : इस पद्धति में वन वृक्ष और फलोउद्यान के साथ कृषि फसल ली जाती है। जैसे – सफेद सिरस (वन वृक्ष), नीबू व आँवला (फल वृक्ष) और गेहूं (कृषि फसल)।
4. वनौशधि पद्धति : इस पद्धति में वन वृक्ष के साथ औषधीय पौधे उगाई जाती हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य वन वृक्ष के बीच में औषधीय पौधे लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त करना है। जैसे – सागौन के साथ सफेद मूसली।

### कृषि वानिकी से लाभ :

1. एक साथ एक ही जमीन पर दो फसल (कृषि और वृक्ष) लगाने से सम्पूर्ण उत्पादकता बढ़ जाती है।
2. अनुपयोगी भूमि का सदुपयोग हो जाता है और उसकी उत्पादकता में सुधार हो जाता है।
3. अनाज, ईंधन, चारा, फल और रेशे का उत्पादन।
4. वन पर ईंधन व चारा के लिये निर्भरता कम हो जाती है।
5. लघु उद्योगों को बढ़ावा मिलता है।
6. जमीन की सतह से लगभग 8 मिलियन टन पोषक तत्व ढहकर नष्ट होने से रुकते हैं।



7. नाईट्रोजन स्थिर करने वाले वृक्षों द्वारा भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ता है।
8. वन चारागाह पद्धति द्वारा अधिक से अधिक चारा प्राप्त कर दूध, मांस, अंडा, का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।
9. अतिरिक्त आय और रोजगार बढ़ाता है।
10. औषधीय पौधों की बढ़ती मांग की पूर्ति करना।

### धान के साथ बच की खेती एवं उनसे लाभ :

**धान :** बच पद्धति – धान के साथ बच की खेती करके किसान भाई अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं। सबसे पहले हम बच के बारे में बताना चाहते हैं।

**बच :** बच का वानस्पतिक नाम एकोरस क्लेमेस है एवं यह दलदली भूमि पर उगने वाला एरियेसी परिवार का सदाबहार पौधा है।

**औषधीय उपयोग :** (i) बच के पौधों का उपयोग हिस्टीरिया, स्मरणशक्ति, मिर्गी, गुर्दे एवं यकृत की बीमारीयों, दमा, चर्म रोग, गले के विकार, ज्वर एवं खासी के उपचार में आता है। बच की कंद से तेल निकाल कर इसका उपयोग त्वचा को निखारने के लिये किया जाता है। सूखे चूर्ण के सेवन से याददाश्त बढ़ती है।

### बच की खेती की पद्धति :

1. मृदा और जलवायु : बच की खेती के लिये कसली या चिकनी मिट्टी जिसका पी.एच. 6–7.5 हो एवं जहाँ सिंचाई के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो (दलदली क्षेत्रों में), की जाती है।
2. रोपाई : बच राइजोम के टुकडे 30 × 30 से. मी. के अन्तर पर 4 से. मी. जमीन में गहराई में लगाना चाहिये।
3. समय : रोपाई का समय जून से जुलाई एवं अक्टूबर से दिसम्बर के बीच करनी चाहिये।

**फसल अवधि :** लगभग 9 माह।



**बच की कटाई :** जब पत्तियाँ पीली पड़कर सूखने लगे तब फसल खुदाई के लिये तैयार हो जाती हैं। तैयार फसल को फावड़े या ट्रेक्टर द्वारा खोदकर निकाला जाता है। निकाले गये कंद को पानी से धोकर छाँव में सुखा लिया जाता है और सूखी जड़ को बोरों में भरकर बेचने लायक तैयार कर लिया जाता है।

### उपज एवं आय :

धान की उपज के अतिरिक्त एक हैक्टर से लगभग 35–40 किंविटल सूखी बच प्राप्त होती हैं।

### सागौन के साथ मूसली की खेती एवं उससे लाभ:

इस पद्धति के अन्तर्गत सागौन के साथ सफेद मूसली की खेती की जाती है।

### सफेद मूसली :

सफेद मूसली एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है जो कि भारत के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र जैसे – मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के सागौन के जंगलों में पाया जाता है।

### औषधीय उपयोग :

1. सफेद मूसली के कंद का उपयोग आयुर्वेदिक औषधियों में होता है।
2. यह मुख्य रूप से शक्तिवर्धक के रूप में प्रयोग किया जाता है।
3. साथ ही इसका उपयोग गठिया रोग, नाड़ी संबंधी एवं मधुमेह में किया जाता है।



सागौन के साथ मूसली की खेती

### सागौन के साथ मूसली की खेती कैसे करें :

**उपयुक्त मृदा :** सफेद मूसली की खेती रेतीली दोमट मिट्टी जहाँ पानी का निकास अच्छा हो, उपयुक्त होती है।

### सफेद मूसली का रोपण :

1. नर्सरी में तैयार किये गये स्वस्थ पौधों को सागौन के पौधों के बीज में कतार से कतार 10 इंच की दूरी पर लगाया जाता है।
2. पौधे को 1 इंच मिट्टी में गहराई में लगाना चाहियें।

इस प्रकार विभिन्न पड़ती भूमियों में कुछ बहुउद्देशीय प्रजातियाँ लगाकर कृषि वानिकी के अन्तर्गत औषधीय पौधों को उगाकर उपयोग में लाया एवं सुधारा जा सकता है तथा देश में इस बढ़ती हुई खाद्यान्न, पशुचारा, ईंधन एवं औषधियों की मांग की भी पूर्ति की जा सकती है, तथा आने वाले इस संकट से बचा जा सकता है।

# वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून द्वारा विकसित आधुनिक वन आग नियंत्रक औजार

श्री वी.के. धवन  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून के वन संवर्धन प्रभाग ने वन आग से निपटने के लिए आधुनिक हाथ से प्रयोग किये जाने वाले औजार विकसित किये हैं। ये औजार बहुत ही हल्के (2.5 कि.ग्रा.) तथा एक कैन्वस बैग में रखे जा सकते हैं। एक व्यक्ति इस थैले को अपनी पीठ पर लाद कर वन आग को नियंत्रित करने के लिए आसानी से पहाड़ी स्थानों पर पहुँच सकता है। उत्तराखण्ड सरकार ने उत्तराखण्ड वन विभाग को इस प्रकार के औजारों से वन पंचायतों सहित उन सभी वन प्रभागों को सुसज्जित करने को कहा है जो कि एसे संवेदनशील क्षेत्रों में है जहां वन आग का खतरा है। 2014 आग लगने के मौसम के दौरान उत्तराखण्ड वन विभाग ने वन पंचायतों सहित विभिन्न वन विभागों को 3,000 औजारों की किट उपलब्ध करवाई है।

## 1. अग्नि शमन हेतु बेलचा : इस किट में तीन प्रकार के अग्नि शमन बेलचे हैं :

**तीर तथा कील के आकार के बेलचे :** इन्हे छोटी शाखाओं तथा पत्तियों से आग हटाने के लिए उपयोग किया जाता है। इन बेलचों का उपयोग करके एक रेखा खींच कर आग को आगे बढ़ने से रोका जा सकता है।

**खुंटी के आकार का बेलचा :** इसे धने कूड़ा करकट में आग खोजने के लिए उपयोग किया जाता है।

**2. अग्नि शमन झाड़ु :** इसे विशेष रूप से सतह में लगी आग को नियंत्रित करने के लिए बनाया गया है। यह सतह आग से निपटने के लिए एक नवीन औजार है। अनेकानेक प्रयोगों के पश्चात अग्नि शमन झाड़ु विकसित किया गया है। इस औजार को स्प्रिंग स्टील की तारों के साथ स्टील के एक कटोरे के साथ बाँध कर समयोज्य (adjustable) रोड के साथ जोड़ा गया है। इस औजार को विकसित करने का उद्देश्य जैवविविधता के ढास को रोकना तथा अग्नि शमको द्वारा हरी शाखाओं (झापा) के उपयोग के रोकना है।

**3. अग्नि बीटर :** यह ढेर में छिपी आग को बुझाने के लिए विकसित किया गया औजार है। यह अधिकतर आग बुझाने के पश्चात् उपयोग किया जायेगा। यह घास में लगी आग का शमन करने में बहुत प्रभावी है।



वन आग नियंत्रक औजार

- 4. लकड़ी का हत्था तथा टॉर्च :** लकड़ी के हत्थे को अच्छी पकड़ के लिए अभिकल्पित किया गया है। टॉर्च की फिटिंग रात में दल को आसानी से रास्ता दिखाने के उद्देश्य से की गई है।
- 5. समायोज्य रौड :** यह बहुउपयोगी है तथा सभी प्रकार के विकसित औजारों में फिट की जा सकती है। रौड हल्की है तथा विभिन्न लम्बाइयों तक समायोजित की जा सकती है। यह हाई ग्लास कन्डियूट पाईप से लकड़ी के हत्थे के साथ बनाई गई है। समायोज्य लम्बाई 5 से 9 फिट है।
- 6. वन आग औजार किट :** यह विशेष प्रकार का थैले विभिन्न प्रकार के औजारों को ले जाने के लिए इस प्रकार अभिकल्पित किया गया है ताकि औजारों को ले जाने के लिए न अधिक भार और न ही अधिक परेशानी महसूस की जाए। किसी एक औजार को छेड़ बिना दूसरे औजार को आसानी से समायोजित करने की व्यवस्था की गई है।

इन औजारों के क्रय के लिए श्री जयराज, अतिरिक्त प्रधान मुख्य वन संरक्षक (पर्यावरण), उत्तराखण्ड वन विभाग की अध्यक्षता में 2013 में एक समिति गठित की गई थी। श्री वी.के. धवन, अनुसन्धान अधिकारी तथा श्री दीपक बर्थवाल, लॉगिंग इन्स्ट्रक्टर, वन अनुसन्धान संस्थान से समिति के तकनीकी विशेषज्ञ थे। दोनों ही व्यक्तियों ने इन औजारों को विकसित करने के लिए कार्य किया। इन औजारों की देहरादून, उत्तराखण्ड के सर्वश्री अतुल ठेड़र्स द्वारा उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश तथा तमिलनाडू वन विभागों को



आपूर्ति की जाती है। इन राज्यों के कार्यक्षेत्रीय कर्मचारियों द्वारा दी गई प्रतिपुष्टि से ज्ञात हुआ है कि ये औजार बहुत प्रभावी पाये गये हैं। इन औजारों के अतिरिक्त एक लैड टॉच, एक पाठल तथा एक पानी की बोतल भी प्रस्तावित की गई है जिसे समिति ने अनुमोदित किया है। यह लैड की टॉच अग्निशमकों के सिर पर बांधी जा सकती है ताकि वे बड़े

आराम से हाथों से कार्य कर सकें। पाठल को वन आग से प्रभावित शाखाओं तथा छोटे वृक्षों को काटने के लिए उपयोग किया जा सकता है तथा पानी की बोतल (2 ली.) अग्निशमकों के लिए उपलब्ध करवाई गई है। सभी औजारों तथा उपकरणों को कैन्चस बैग के भीतर रखा जा सकता है।

# विविधा

रा आ गा ता आ



## जगन्नाथ रथ यात्रा के पहिये खींचता फासी का वृक्ष

डॉ. संजय सिंह एवं कुमारी प्रिया  
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

### परिचय :

फासी (अनोगीसस एकूमिनेट) छोटी पत्तियों वाला एक मध्यम आकार का सदाबहार वृक्ष है, जो कोम्बेटेसी परिवार से संबंध रखता है। यह सीधे और बेलनाकार तने तथा दृढ़ लकड़ी का पेड़ अरावली पर्वतमाला और भारतीय रेगिस्तान के पारिस्थितिकी प्रणालियों का अत्यधिक मूल्यवान जैवभार निर्माता है। यह 9.5 से 40 मीटर की ऊँचाई का बेलनाकार ट्रंक और सुंदर नीचे की और झुकती टहनियों के साथ एक बड़े लंबा और सुंदर पर्णपाती पेड़ है जो 2.4 मीटर की परिधि और 12 से 24 मीटर का एक स्वच्छ शाखा—रहित तना रखता है। यह वाणिज्यिक महत्व का वृक्ष है जिसे उपकरण निर्माण के लिए एक प्रथम श्रेणी लकड़ी के रूप में माना गया है। फासी ईधन, चारा, लकड़ी और पारिस्थितिकी सेवाएं प्रदान करता है।

पौधे की पत्तियों दर्दनाक सूजन के इलाज के लिए आंध्र प्रदेश की पारंपरिक और आदिवासी चिकित्सा में उपयोग की जाती हैं। वास्तव में अनोगीसस एकूमिनेटा पारंपरिक चिकित्सा में व्यापक रूप से एक जलन—विरोधी और दर्द—निवारक के रूप में प्रयोग किया जाता है, हालांकि, इन गुणों का वैज्ञानिक दृष्टि से मूल्यांकन नहीं किया गया है।

भारत में फासी अलग अलग नामों से जाना जाता है। जैसे बांग्ला में चकवा, बिहार में पंसिया, कन्नड़ में पाँसी, मराठी में फंस, राजस्थान में धौरिया, तमिल में नमाई, नूनेरा, तेलुगू में बुकाराम, पंचमन आदि। फासी के वृक्ष प्राकृतिक रूप से उड़ीसा और आंध्र प्रदेश में महानदी घाटी का निवासी है। इसके अतिरिक्त छोटानागपुर पठार और महाराष्ट्र में चंद्रपुर के आसपास के जंगलों में भी मिलता है। उड़ीसा में फासी विशेष रूप से नयागढ़, दस्पल्ला, कालाहांडी, अठमलिक, मयूरभंज, पुरी और संबलपुर के जंगलों प्रचुर है। फासी 100–3,000 मि. मी. वार्षिक वर्षा, यह 38–40 डिग्री का अधिकतम और 4–7 डिग्री के बीच छाया तापमान पसंद करता है।

अनोगीसस एकूमिनेटा बलुई सतहों और चट्टानी मैदानों में उगता है। यह उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती जंगलों में नदियों के किनारे और कभी—कभी मीठे पानी की दलदली भूमि पर अच्छी वृद्धि करता है। यह अक्सर अधिक या कम अमेद्य चट्टानी, रेतीली, जलोढ़ मिट्टी पसंद करता है। इस संबंध में,



महानदी तट पर फासी का वृक्ष



पुरी की विश्व—विख्यात जगन्नाथ रथ यात्रा



फासी से निर्मित रथ के पहिये



फासी अर्जुन और जामुन से अपनी ज़रूरतों के मामले में बहुत समान है।

### विशेष धार्मिक महत्व :

उड़ीसा भगवान जगन्नाथ की भूमि के रूप में जाना जाता है। पुरी की विश्व प्रसिद्ध रथ यात्रा भव्य ढंग से अति प्राचीन काल से मनाया जा रहा महत्वपूर्ण त्योहार है। भुवनेश्वर की भगवान लिंगराज की रथ यात्रा भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं और दोनों रथ यात्राओं को राज्य त्योहारों का दर्जा प्रदान किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में फासी का विशद पारंपरिक मूल्य है। भुवनेश्वर में पुरी और श्री लिंगराज मंदिर में श्री जगन्नाथ मंदिर की रथ यात्रा त्योहार के वार्षिक आयोजन के लिए लकड़ी के रथों का निर्माण फासी की लकड़ी से ही किया जाता है। हर साल रथ नए सिरे से निर्माण किया जाता है और अंत में त्योहार के बाद का निपटारा कर दिया जाता है। भगवान बलभद्र, भगवान जगन्नाथ तथा देवी सुभद्रा के लिए पुरी के विश्व प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर में तीन रथों के निर्माण के लिए 400 घन मीटर लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसमें



फासी का उन्नत चयनित वृक्ष  
(वन उत्पादकता संस्थान, रांची द्वारा)

से रथ के पहिये और तुम्बा बनाने के लिए फासी के 14 गुणा 6 फुट के 72 लट्ठे लगते हैं। फासी के आसन, सेमल, गम्हार, धावड़ा, कदम्ब आदि प्रजातियों का भी प्रयोग रथ के विशेष हिस्सों के निर्माण में होता है।

### उपयोग और संरक्षण में समन्वय की आवश्यकता

प्राकृतिक घने जंगल निरंतर दबाव झेलकर विरल होते जा रहे हैं। लकड़ी माफियाओं द्वारा भारी अवैध कटाई भी इसके लिए ज़िम्मेदार है। समय के साथ वाँछित प्रजातियों और इच्छित आयाम के वृक्षों मात्रा जो बहुतायत में राज्य के जंगलों में उपलब्ध थी कम होती जा रही है। इस कारण प्राकृतिक वनों से निर्दिष्ट प्रजातियों की लकड़ी की रथ यात्रा हेतु इतनी मात्रा में आपूर्ति कठिन हो गयी है। अतः दो तर की रणनीति अपनाई जा रही है। एक-प्राकृतिक वन क्षेत्रों में रह यात्रा में कम आने वाली प्रजातियों का व्यवस्थित प्रबंधन जिससे तत्काल आवश्यकता को पूरा किया जा और दूसरा—भविष्य की निरंतर आवश्यकता के लिये गहन वृक्षारोपण योजना कुछ भी करें तो वृक्ष अपना वाँछित स्वरूप प्राप्त करने में अनेक वर्ष लेता है। हमारे अनुमान से फासी की रथ में प्रयोग होने की उम्र किसी भी दशा में 35–40 वर्ष तथा उन्नत लकड़ी प्रदान करने की उम्र 70–80 वर्ष होगी।

ऐसी परिस्थिति में रथ में काम आने वाली लकड़ी प्रजातियों का विकल्प हो सोचना होगा। उपलब्धता के हिसाब से परंपरा को मिल बैठ के बदला जा सकता है। पहले से ही भुवनेश्वर में लिंगराज की यात्रा में ऐसा किया जा रहा है। साथ ही भव्य रथों के बड़ी परिधि वाले घटक पुनः उपयोग के लिए संरक्षित किये जा सकते हैं। फासी प्रजाति का इतना सांस्कृतिक मान होने पर भी इसमें चयन और सुधार पर पर्याप्त प्रयास नहीं किया गया है। हाल में ही हमारे संस्थान ने उड़ीसा में बड़े पैमाने पर फासी के उन्नत वृक्षों का चयन अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में किया है। इसी तरह के प्रयासों को तीव्र करना होगा। निजी भूमि में रथ यात्रा के लिए फासी और अन्य प्रजातियों के उत्पादन पर भी बल देना चाहिए। वस्तुतः एक बड़े मानसिक बदलाव की जरूरत है जिसमें सामाजिक सहभागिता उतनी ही महत्वपूर्ण है।

# सिन्दूरी का अप्रतिम सौन्दर्य

डॉ. रवि शंकर प्रसाद, श्री पंकज सिंह एवं डॉ. संजय सिंह  
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

## भूमिका :

रंगो का हमारे जीवन में काफी महत्व है। प्राचीन काल से ही यह मानव को अपने विशेष गुणों के कारण आकर्षित करता आ रहा है। आदि काल से ही रंगो का उपयोग खाध्य पदार्थ कपड़े तथा मिट्टी के बरतनों को रंगने के लिए किया जाता रहा है।

सिन्दूरी (*Bixa orellana*) एक बहुत ही उपयोगी पौधा है। यह मध्यम आकार का बहुवर्षीय पौधा है। यह भारत में विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे सिन्दुरी पुष्टी, तिर्सनापुष्टी, सुकोमला, रक्तबीजा, करचन्दा इसे हिन्दी में लटकन, सिन्दुरिया और जफुरा के नाम से भी जानते हैं। इससे मुख्य रूप से नारंगी रंग तैयार किया जाता है। यह पौधा 2–5 मीटर ऊँचा होता है। यह मूलरूप से अमेरिका और वेस्टइण्डिज में पाया जाता है। यह ट्रॉपिकल देशों जैसे ब्राजील, मेक्सिको, श्रीलंका, जमेका, पेरू, सूरिनाम और भारत में भी पाया जाता है। भारत में यह मुख्यतः कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, असम, तमिलनाडू, उडिसा, पश्चिम बंगाल, गुजरात, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में व्यवसायिक रूप से उगाया जाता है। यह मुख्यतः दो प्रकार का होता है। एक जिसके फूलों का रंग हल्का हरा लिए हुए सफेद होता है तथा दुसरे का रंग लाल होता है। इसके फल और फुल गुच्छों में होते हैं। इसके फल मुलायम और रोयेदार होते हैं। इसके फल में लगभग 45–50 बीज पाए जाते हैं। इसके फूल अगस्त–सितम्बर में होते हैं तथा फल



सिन्दूरी के पेड़



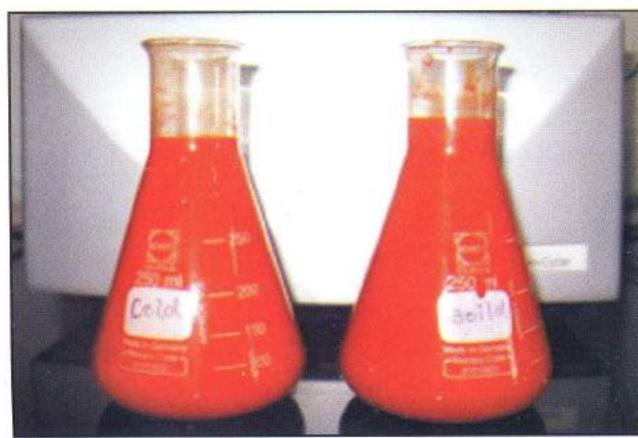
सिन्दूरी के बीज

फरवरी से मार्च तक पक जाते हैं। समय पर इसे नहीं तोड़ने से इसके फल फट जाते हैं और बीज झङ्ग जाते हैं। इसके बीज पतली ज़िल्ली से ढ़के रहते हैं। इसका नारंगी रंग साधारणः एनाटोडाई और विविसत के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद में इसके छाल का उपयोग खून साफ करने, सर दर्द, बुखार इत्यादि में किया जाता है। इसके पत्ती का उपयोग भी खून साफ करने तथा बीज से बने पेस्ट का उपयोग मच्छर भगाने के रूप में किया जाता है।

**सिन्दूरी के बीज से प्राप्त उत्पाद को साधारणतः दो नाम से जाना जाता है जिसे क्रमशः एचिवोट और एनाटो कहते हैं। बीज को पानी में डूबोकर हाथों से मसलने से एक नारंगी रंग निकलता है। जिसे केक के रूप में जमा लेते हैं। जिसे बाद में प्रसंस्करण कर डाइ बनाया जाता है। इसके बीज को सुखा कर उसे मसाले के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे प्राप्त उत्पाद को अलग–अलग देशों में विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे मेक्सिको में एजटेक केरिश्स में एनाटों तथा फिलिपिन्स में एक्युट कहते हैं। आज कल मिक्सिकन और कैरिबियन्स में एसिओट के नाम से जानते हैं तथा त्रिनिदाद और टोबॉगो में इसे रॉवको के नाम से जानते हैं।**

## जलवायु और मृदा :

यह मुख्यतः लाल और दोमट मिट्टी जिसका pH 6–7.5 होता है पाया जाता है। यह मुख्यतः गहरी मिट्टी में होता है। परन्तु यह विभिन्न प्रकार की मिट्टी में भी रोपा जाता है। इसमें समय–समय पर निराई–गुडाई की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि यह ट्रॉपिकल पौधा है। इस कारण यह 28°C से 44°C तापमान तथा 800–1500 मि.मी. वार्षिक



सिन्दूरी के ठंडे और गर्म जल में तैयार रंग



वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से लगाए जा सकते हैं। इसकी आयु मुख्यतः 20–25 साल तक होती है।

### पौधा रोपण :

यह मुख्यतः बीज, कलम और ऊतक संवर्धन विधि द्वारा तैयार किया जाता है। इसके बीज का अंकुरण 30–40% तक होता है। तथा इसके बीज को ज्यादा दिनों तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। क्योंकि यह चिपचिपा होता है। इसके पौधा में सूखारोग तथा डाइबैक की समस्या पायी जाती हैं। इस कारण इसके कलोनल (cutting) तथा टिसू कल्वर का प्रयोग किया जाता है। पौधा रोपण का मुख्य समय जुन से सितम्बर (मानसून) के समय होता है। परन्तु यह अक्टूबर माह में भी लगाया जा सकता है किन्तु उसके लिए सिंचाई की सुविधा आवश्यक है। पौधा लगाने के लिए गढ़ों का आकार 30x30x30 इंच तथा पौधे की दूरी 3x3 और 3.5 मीटर रखा जाता है। जिससे 1100 से 1200 पौधे प्रति हेक्टेयर तथा 450 से 500 पौधे प्रति एकड़ लगा सकते हैं। पौधा रोपण के तीन साल बाद फूल आने लगते हैं। ऊतक संवर्धन विधि द्वारा तैयार पौधे में फुल दो साल बाद ही आने लगते हैं। फुल आने के एक महीने बाद फल आने लगते हैं। इससे अच्छे पैदावार लिए सिन्दूरी के पौधे को समय पर छटाई की आवश्यकता पड़ती है। ताकि नये कल्ले निकल सके। छटाई के बाद फंफूदी नाशक दवा का उपयोग करते हैं। ताकि फंफूदी का प्रकोप ना हो।

### उर्वरक :

पहले वर्ष में उर्वरक की 300 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम की मात्रा पौधा रोपण के समय प्रति हेक्टेयर के हिसाब से दी जाती है। तथा तीन महीने के बाद पुनः 300 कि.ग्रा. यूरिया के साथ प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देते हैं। दूसरे वर्ष में (NPK) 800 कि.ग्रा. तथा 250 कि.ग्रा. यूरिया के साथ दिया जाता है ताकि पौधा अच्छी तरह बढ़ सके।

### खरपतवार नियंत्रण :

इसमें लगातार तीन वर्षों तक साल में दो खरपतवार नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है जिसमें एक वर्षा ऋतु के पहले और एक वर्षा ऋतु के बाद है।

### फलों की संग्रह :

फलों की संग्रह अक्टूबर–नवम्बर महीने से कि जा सकती है। इस समय फल पूरी तरह से परिपक्व हो जाता है। इसे हमेशा गुच्छे में ही तोड़ा जाता है।

### फलों का रखरखाव :

फलों को प्लास्टिक या तिरपाल पर फैलाकर छाया में सुखाया जाता है। इसमें लगभग एक सप्ताह का समय लगता है। सुखे फलों को पीटकर उससे बीज निकाला जाता है। उसके बाद उसे बोरे या सूती कपड़े के बैग में भरकर सूखे तथा ठंडे स्थान में भण्डारण करते हैं।

### भण्डारण :

यह अनेक तरह से बिक्री के लिए उपलब्ध होता है इस कारण इसके भण्डारण का अत्यधिक महत्व है। यह बीज, ग्राउड पेस्ट तथा तेल के रूप में बिक्री होता है। यह विभिन्न प्रकार के पैक में पाया जाता है जैसे बोतल, बैग, वैक्युम सिल्ल ऐक। इससे बने पाउडर विभिन्न प्रकार के मसाले तथा अन्य प्रदार्थ में मिश्रण कर रखा जाता है। इसके बीज और ग्राउड को कुछ महीनों तक शीशे के जार में रेफिजरेटर में रखा जाता है।

### उत्पादन :

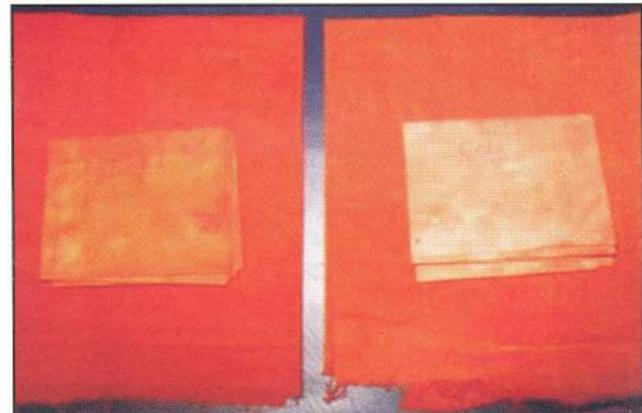
पौधा रोपण के तीसरे वर्ष से उत्पादन शुरू हो जाता है। पौधे की व्यावसायिक उम्र लगभग 12–15 वर्षों की है। इसका उत्पादन तीसरे वर्षों से 1–1.5 है। प्रति पौधा तथा आगे चलकर यह 4–5 टन प्रति है होता है।

### सुगंध एवं स्वाद :

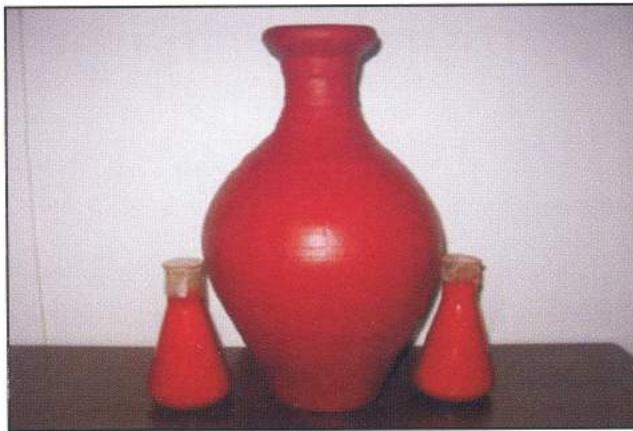
जब इसे थोड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थ में इस्तेमाल करते हैं तो इसमें कोई खास सुगंध नहीं होता परन्तु जब इसे अधिक मात्रा में इस्तेमाल करते हैं तब यह मिट्टी जैसा सुगंध देता तथा तीखा होता है। इसका बीज थोड़ा पिपरमिन्ट की तरह सुगंध देता है।

### उपयोग :

सिन्दूरी से प्राप्त डाइ का प्रयोग मुख्यतः मख्खन, घी, चॉकलेट आइसक्रीम और चीज इत्यादि में किया जाता है। इसके अलावा इसका उपयोग सूती कपड़े, सिल्क के कपड़े,



रंगे गए कपड़े और कागज



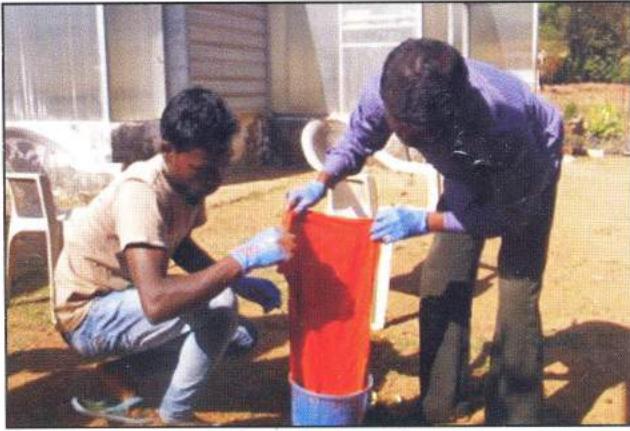
रंगे हुये मिट्टी के बर्तन

चमड़े, दवाइयाँ और मिट्टी के बरतनों को रंगने के लिए भी किया जाता है। कहीं-कहीं पर इसका उपयोग जूता पॉलिस, बिन्दी और कुमकुम बनाने में किया जाता है। आदिवासी लोग इसका उपयोग सौन्दर्य प्रशाधन के रूप में भी करते हैं। आयुर्वेद में इस पौधे के छाल का उपयोग खून साफ करने, सरदर्द, बुखार इत्यादि में किया जाता है। इसके बीज से बने पेस्ट का उपयोग मच्छर भगाने के लिए किया जाता है। इसके बीजों से रंग निकालने के बाद बचे पदार्थ का उपयोग जानवरों के चारा के रूप में किया जाता है। जिसमें काफी मात्रा में काब्रोहाइड्रेट और प्रोटीन पाया जाता है।

मुख्य तत्व विकिसन की मात्रा बीजों में 0.73 से 1.3 प्रतिशत तक पाया जाता है। और भार के हिसाब से अनेक प्रकार के कैरेटोनामड पाये जाते हैं। इसके बाद 82 प्रतिशत तक सिसविकिसन पाया जाता है। सबसे ज्यादा इसका उपयोग डाइ के रूप में किया जाता है।

### परीक्षण विधि :

सर्वप्रथम फलों से लगभग 500 ग्राम बीज पृथक करके पानी में भिगोया। हाथों से भली-भांति मसलकर सूती कपड़े से



रंगे गए सूती कपडे

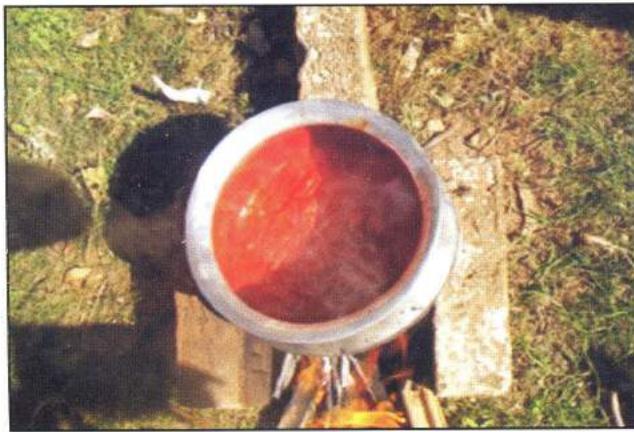
छान कर एक लिटर का मिश्रण तैयार किया। इसे दो हिस्सों में लेकर एक को बर्तन में उबाल आने तक गरम किया तथा दूसरे को यथावत रहने दिया। दोनों धोल में सफेद सूती कपड़े को एक घंटे तक भीगा रहने दिया जिससे रंग ठीक से तरह चढ़ जाए। पुनः निकाल कर नमक के धोल में दोनों कपड़े को एक घंटे तक भीगो दिया। दोनों प्रकार के कपड़े को सूखा कर साबुन से धोने पर पता चला कि, दोनों विधियों से रंगे गए कपड़े पर रंग पक्का हो गया। यद्यपि ठंडे मिश्रण से प्रथम बार कुछ रंग छूटता है।

उसी रंग का इस्तेमाल मिट्टी के बरतनों को रंगने में किया गया। एक लीटर मिश्रण में (20 ग्राम) गोंद का प्रयोग किया ताकि रंग अच्छी तरह पकड़ लें। पाया गया कि मिट्टी के बरतनों ने अच्छी तरह रंग पकड़ लिया और उनका स्वरूप आकर्षक हो गया।

### उपसंहार :

आजकल पुनः प्राकृतिक रंगों का प्रयोग बढ़ रहा है। क्योंकि रसायनिक रंगों के अनेक हानिकारक प्रभाव देखने को मिल रहे हैं। वनस्पतियों से तैयार रंग न केवल सुगंधित और सुरक्षित होते हैं, बल्कि इसमें औषधीय गुण भी पाए जाते हैं। हमारे देश में रंगों का बड़ा महत्व है। यहां पर रंगों के अनेक त्योहार हैं। किन्तु उसमें होली एक अलग स्थान रखता है। हमारे यहा प्राचीन काल से ही प्राकृतिक रंगों का महत्व रहा है। यहा इसके अव्ययी घटक, उनके औषधीय गुणों इत्यादि के आधार पर उनका उपयोग होता है। अतः इसका प्रयोग कर हम हानिकारक दुष्प्रभावों से बच सकते हैं।

आज भी हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के फूलों और पत्तियों से तरह-तरह के रंग तैयार किए जाते हैं। जरूरत है इसे प्रोत्साहित कर सही मात्रा में इस्तेमाल करने की ताकि रसायनिक रंगों का हमारे दैनिक जीवन में कम-से-कम उपयोग हो और हम उसके हानिकारक प्रभाव से बच सकें।



रंगों को तैयार करने की विधि



## “साइलेंट स्प्रिंग-खामोश वसंत” : वर्तमान पर्यावरण क्रांति का पहला दस्तावेज

श्री अनूप सिंह चौहान

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

पिछली सदी के उत्तरार्ध में राशेल कार्सन (1907–1964) ने “साइलेंट स्प्रिंग” पुस्तक में डी.डी.टी. व अन्य कीटनाशकों के दुष्प्रभावों को उजागर कर जो जन चेतना पैदा की, उसने अमेरिका में पर्यावरण बनाम आर्थिक उन्नति की बहस को जन्म दिया। उसने वैज्ञानिक तर्कों व शोध द्वारा आधुनिक वैश्विक पर्यावरण आंदोलन को मजबूत आधार दिया। तमाम शक्तिशाली व्यवसायी समुदाय के सम्मुख अकेले खड़े रह कर इस समुद्र जीव-विज्ञानी ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान पर्यावरण प्रदूषण की ओर मोड़ दिया।

1962 में प्रकाशित इस पुस्तक में राचेल कार्सन ने कीटनाशकों, प्रमुखतः डी.डी.टी. के उपयोग से जुड़े खतरों से समाज को आगाह किया। पुस्तक में अनेक ऐसे अध्ययनों का विवरण दिया गया है जहाँ इन कीटनाशकों ने हानिकारक प्रभाव छोड़े हैं। वह रसायन जो कीटनाशकों के रूप में प्रयुक्त किये गये थे, किस प्रकार दीर्घावधि में पर्यावरण एवं मानव जीवन पर कैसा दुष्प्रभाव छोड़ते हैं, यह सब इस पुस्तक की मुख्य विषयवस्तु है। इस पुस्तक द्वारा पैदा विवाद ने पर्यावरण कानून व ऐसे सरकारी संस्थानों की आवश्यकता को महसूस कराया जो इन रसायनों के उपयोग को नियंत्रित व नियमित कर सके। सुश्री कार्सन अमेरिकी व्यूरों के मत्स्य विभाग में कार्यरत थी, इसी दौरान उन्हे मालूम हुआ कि रासायनिक कीटनाशक हमारे वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं। उनकी विंता मुख्य रूप से सरकार द्वारा डी.डी.टी. के उपयोग से थी। वह अपने पूर्व अध्ययनों से इसके वातावरण पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों से अवगत थी। कार्सन के अनुसार “जैसे—जैसे मैंने इसके उपयोग से होने वाले दुष्परिणामों को जाना, मैं भयभीत होती चली गई। एक प्रकृति विज्ञानी होने के नाते मेरे लिए यह जरूरी था कि मैं इन हानिकारक प्रभावों को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करके जनता को अवगत करूं। इस प्रकार ‘साइलेंट स्प्रिंग’ लिखकर मैंने जनता को इन कीटनाशकों से होने वाले दुष्प्रभावों की जानकारी देने का प्रयास किया जिससे जनता में इनके उपयोग के प्रति एक विरोध की भावना आए”।

### पुस्तक का प्रभाव :

इस पुस्तक के अंश जब पहली बार 1962 में “द न्यूयार्कर”

में प्रकाशित हुए तो रसायन उद्योगपति आक्रोश में आ गये। कीटनाशकों के समर्थकों ने आरोप लगाया कि यह पुस्तक एक अधूरी तस्वीर प्रस्तुत करती है तथा उनके लाभों को नजरदांज करती है। एक अमेरिकी रसायन कम्पनी के अधिकारी ने कहा, “यदि हम कार्सन की जानकारी पर यकीन करें तो हम फिर से एक अंधकार पूर्ण युग में चले जाएंगे जहाँ केवल कीटों का साम्राज्य होगा।” रसायन उद्योगपतियों ने इन कीटनाशकों की उपयोगिता के लिए उग्र अभियान चलाए। उन्होंने जनता को बताने की कोशिश की कि डी.डी.टी. किस प्रकार अमेरिका को मलेरिया, पीत ज्वार व निद्रा रोग से मुक्त कराने में सक्षम है। यहीं नहीं उन्होंने यह भी प्रचारित किया कि डी.डी.टी. के प्रयोग से कृषि उत्पादन में गुणात्मक वृद्धि हुई है और इस कारण विश्व भूख व कुपोषण का मुकाबल कर पा रहा है। कार्सन की पुस्तक के विरुद्ध वैज्ञानिकों, किसानों व कीटनाशक समर्थकों ने मुख्य तर्क यह प्रस्तुत किया कि इनके उपयोग को रोकने पर उत्पादकता में भारी गिरावट होगी। कृषि वैज्ञानिकों ने तर्क दिया कि विश्व में खाद्य पदार्थों की भारी कमी हो सकती है।

किंतु जैसे—जैसे रसायन उद्योगपतियों ने कार्सन की पुस्तक विरोध किया, यह पुस्तक और भी लोकप्रिय हो गई। उसे भारी जन समर्थन मिलने लगा। न्यायमूर्ति विलियम ओ. डगलस ने इस पुस्तक को ‘मानव जाति के लिए “इस सदी का सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज” बताया। “द न्यूयार्कर” में पुस्तक अंश प्रकाशित होने के बाद लोगों ने पत्र लिख कर कार्सन को भारी जन समर्थन दिया। देखते ही देखते पुस्तक की 1.5 लाख प्रतियां बिक गई।

इस जागरूकता के फैलने पर लोगों ने अपने समुदायों में डी.डी.टी. के उपयोग में भारी कमी कर दी। अनेक स्थानों पर लोगों ने डी.डी.टी. के छिड़काव को रुकवा दिया। 1962 में टैक्सास में होने वाले सम्मेलन में बड़ी संख्या में लोगों यह जानने के लिए भाग लिया कि डी.डी.टी. का वन्य जीवन पर क्या प्रभाव होता है? यहाँ चिंतित नागरिकों ने यह निर्णय लिया कि हमें डी.डी.टी. के उपयोग को बंद कर प्रकृतिकीटों के संतुलन को बनाए रखना चाहिए तथा कथित हानिकारक कीटों को अपने पर्यावरण में बने रहने देना चाहिए।



## पुस्तक अंश

"हममें से प्रत्येक के लिए— जैसे कि मिशिगन के रोबिन पक्षियों के लिए अथवा मिरामिची में पाये जाने वाली सालमन मछली के लिए, यह एक पारिस्थितिकी समस्या है, हमारे अंतर्राष्ट्रीयों व परस्पर निर्भरता की ! हमने जलधाराओं में कीटों को विष दिया और सालमन वहां से लोप हो गई अथवा मर गई। हमने अपने एल्म वृक्षों पर कीटनाशक छिड़के तथा अगले वर्ष संत में ही वह रोबिन के कलरव से मुक्त हो गये। यह नहीं कि हमने रोबिन पक्षी पर जहर छिड़का किंतु इसलिए कि यह जहर सफर करता है— कदम—दर—कदम उस ज्ञात जीवन चक्र की ओर जोकि एल्म पत्तियों, केंद्रों व रोबिन पक्षियों के बीच चलता है। यह सब हमारे आस—पास की दुनिया में घटते देखा जाता है तथा अवलोकन करने से वास्ता रखता है।"

एक अन्य परिदृश्य को दिखाते हुए वह कहती हैं— "...एक समय में अमेरिका के सुदूर अंतर्भाग में बसे एक शहर में सभी जीव अत्यन्त सद्भावना के साथ सामंजस्य पूर्ण जीवन जी रहे थे। तभी उस क्षेत्र पर एक तुषार पात के बाद वहां सब कुछ बदलने लगा। शहर एक विचित्र सी खामोशी के बाद ठहर सा गया। सभी ओर पक्षी मरणासन्न थे, वे कांपते थे किंतु उड़ान भरने में अक्षम! यह वर्षांत बिना कलरव का था और वह भौं जो कभी विभिन्न पक्षियों के चहचहाने से गूंजती रहती थी, वहां अब कोई ध्वनि न थी व उन खेतों, वनों व दलदलों पर एक सन्नाटा पसर गया था"।

इसी प्रकार की शंकाओं से युक्त पत्र कृषि विभाग में भी आए। इस सब के प्रभाव में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ. केनेडी ने वैज्ञानिक सलाहकार समिति को यह जानकारी व शोध का दायित्व दिया कि इन कीटनाशकों का मानव जीवन व प्रकृति पर क्या हानिकारक प्रभाव पड़ता है तथा क्या इनके उपयोग के लिए कानून बनाया जाना चाहिए? एक वर्ष पश्चात, 1963 में कमेटी ने कार्सन की खोज व जानकारी को अनुमोदित किया। "साइंटिस्ट डाइजेर्स्ट" के ब्रूस फ्रिश के अनुसार कमेटी ने पाया की मानव व जीव जगत पर तात्कालिक व दूरगामी दुष्प्रभावों के पड़ने के बावजूद सरकार इन कीटनाशकों के उपयोग पर प्रतिबंध नहीं लगा रही है। सरकार को इसके उपयोग से हाने वाले दुष्प्रभावों की जानकारी भी नहीं है। अंततः समिति की रिपोर्ट जारी होने के बाद अनेक संघीय पर्यावरणीय कानून बनाए गये, इनमें अमेरिका में डो.डो.टी. पर प्रतिबन्ध भी था। निसंदेह यह कार्सन के प्रयास की परिणीति ही थी।

यह माना जाता है कि 1970 में अमेरिका में जब "पर्यावरण संरक्षण ऐजेंसी" की स्थापना हुई, तो इसकी पृष्ठभूमि में कार्सन

की पुस्तक में उठाए प्रश्न भी मुख्य कारण थे। कीटनाशक विनिमय, जोकि पहले कृषि विभाग का दायित्व था, को पर्यावरण संरक्षण ऐजेंसी को सौंपा गया क्योंकि कृषि विभाग ने इन कीटनाशकों के लाभकारी प्रभावों को ही देखा व दुष्प्रभावों को अनदेखा किया। इस ऐजेंसी की स्थापना के साथ ही अनेक कानून चलन में आए जैसे कि— "शुद्ध वायु कानून" व "शुद्ध जल कानून"। प्रेरणा स्वरूप भारत सहित अनेक विकासशील व विकसित देशों में पर्यावरण संरक्षण ऐजेंसी की स्थापना हो सकी।

इस पुस्तक का महत्व केवल कीटनाशकों के दुष्प्रभावों को सामने लाने तक ही सीमित नहीं है वरन् पर्यावरणीय मुद्दों को आम लोगों के बीच बहस का विषय बनाना भी है। वास्तव में, जैसा कि कानून प्रोफेसर डेविड ग्रेटचीज बताते हैं— "इन्ही कारणों से यह कृति इस दौर की महत्वपूर्ण पुस्तकों में शामिल है"। अलगोर का कहना है कि "साइलेट स्प्रिंग" ने पर्यावरणीय मुद्दों को न केवल रसायन उद्योग व सरकार के संज्ञान में लाया वरन् आम जनता तक पहुँचाया और इस लोकतंत्र को पृथ्वी को बचाने वालों की ओर मोड़ दिया"।



## कोकम (*Garcinia indica*): एक बहुउपयोगी पोधा

श्री रामवीर सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे  
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

कोकम (*Garcinia indica*) का पौधा Clusiaceae कुल में आता है। आम तौर पर यह कोकम के नाम से जानने वाला फलदार वृक्ष खाद्य, औषधीय एवं औद्योगिक प्रयोग में आता है। पूरे भारत में कोकम को अन्य नामों से भी जाना जाता है। जैसे आमसोल, आमसूल, बिनदिन, बीन, भीरंड, भ्रीज, ब्रिश, बिन्ना, कटम्बी, लुइक्या खट्टा सेब, पनारपुली, रतम्बा, असम में ठेकेरा और अन्य आदि नामों से भी जाना जाता है।

### उत्पत्ति एवं वितरण :

कोकम के पेड़ की उत्पत्ति पूर्वी है। लेकिन यह दक्षिणी भारत में भी पाये जाते हैं। जो मुख्यतः पश्चिमी घाट के उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों के रत्नागिरी, कोकण, कुर्ग एवं ब्यानाडु क्षेत्र में होते हैं। यह गुजरात, पश्चिमी बंगाल, खासी, जैतिया पहाड़ियों, असम के सदाबहार वनों में भी पाये जाते हैं। मुख्यतः इसकी एशिया, अफ्रीका एवं पुराने विश्व अनुवर्ती में जीनस (*Garcinia*) के साथ (Clusiaceae) परिवार की लगभग 200 प्रजातियां पाई जाती हैं।

कोकम देश के पश्चिम किनारे के साथ भारत के पश्चिमी घाट क्षेत्र की देशी प्रजाति है। भारत में लगभग इसकी 35 प्रजातियां पाई जाती हैं। जिसमें से 17 प्रजातियों विशेष क्षेत्रीय हैं। इनमें 7 प्रजातियां विशेष क्षेत्रीय पश्चिमी घाट की तथा 6 प्रजातियां अंडमान निकोबार द्वीप एवं 4 प्रजातियां भारत के उत्तर पूर्व क्षेत्र में पाई जाती हैं।

### भूमि व जलवायु :

कोकम को समुद्र तल से 800 मीटर की ऊँचाई पर 60–80% आर्द्रता, वार्षिक औसत तापक्रम 20–30°C में उगा सकते हैं तथा इसके पेड़ों के लिए गर्म एवं सामान्य आदि उष्ण कटिबंधीय जलवायु की कुल वर्षा की सीमा 2500–5000 मीटर उपर्युक्त होती है।

कोकम (*Garcinia indica*) बेकार भूमि, नदी किनारे एवं वन भूमि में भी पाया जाता है। इसके पौधे सदाबहार होते हैं। लेकिन कुछ समय ये कम वर्षा वाले क्षेत्र में भी फलते फूलते हैं। इसकी कम स्तर पर खेती भी करते हैं। इसकी खेती के लिए सिंचाई, खाद एवं कीटनाशकों के छिड़काव की आवश्यकता भी नहीं होती है।

### उपयोग :

**खाद्य उपयोग :** इसके फल के बाहरी छाल को सुखाकर आमसूल या कोकम प्राप्त करते हैं। महाराष्ट्र में इसका हल्के खट्टे मसालों में प्रयोग करते हैं। कोकम को विशिष्ट महक (गंध), काले एवं लाल रंग के लिए भी पैदा करते हैं। महाराष्ट्र के कोकम क्षेत्र में करी एवं अन्य खानें में इमली की जगह पर काम में लाया जाता है। गुजरात में इसे रसोईघर में भी स्वाद और चटपटा बनाने या स्वाद सही रखने में भी प्रयोग करते हैं। और दक्षिण भारत के अन्य भागों में भी करते हैं। कोकम की छाल को सीरप बनाने में प्रयोग किया जाता है। सीरप का उपयोग कोकम शरबत बनाने में किया जाता है। कोकम रक्वैश या शरवबत गाढ़ा करने में इसका उपयोग किया जाता है। जिसका रंग चमकीला लाल रंग होता है। कोकम शरबत पाचन बढ़ाने और गर्भियों में शरीर ठंडा रखता है महाराष्ट्र एवं कोकण में इसके फल के रस को आगल कहते हैं। इसका प्रयोग नारियल के दूध के साथ सोलकढ़ी बनाने में भी किया जाता है।

**औद्योगिक उपयोग :** कोकम (*Garcinia indica*) के बीज में 23–26% तेल होता है। जिसका उपयोग कमरे के तापक्रम को ठीक करने में किया जाता है।

इसका उपयोग मिठाई, हलवाई की दुकानों में, औषधियों और प्रसाधनों के प्रयोग में होता है। इसका फिलहाल उपयोग औद्योगिक क्षेत्र में फल की छाल से हाइड्रोक्सी साइट्रिक अम्ल बनाने में भी किया जाता है।

**अनुसंधान एवं विकास के प्रयास :** कोकम के फलों का उपयोग भारत में खाद्य पदार्थों के अलावा दवाइयों में भी प्रयोग के प्रयास हो रहे हैं। कोकम के फल गार्सीनोल का मुख्य स्रोत है। जिसका उपयोग स्वास्थ्य विभाग देश में विभिन्न बीमारियों के सार्थक लाभ के लिए विभिन्न दवाइयों के अनुसंधान एवं विकास कार्यों में कर रहा है।

इसके पेड़ों का उपयोग एन्टीऑक्सीडेंट, एन्टी इन्फ्लामेटरी, इन्फेक्शन, कैंसर तथा अल्सर जैसी घातक बीमारियों को ठीक करने में किया जा रहा है। कोकम के फलों से सीरप भी बनाए जा रहे हैं। जिसका उपयोग औषधी के तौर



पर भूख बढ़ाने तथा एसीडिटी को कम करने में किया जाता है।

कोकम के बीजों से तेल तथा मोम भी तैयार किया जा रहा है। इसके तेल को कोकम तेल के नाम से जानते हैं। जिसका उपयोग औषधी के रूप में पैरों की मसाज में गरमाहट के लिए तथा मोम से फटी हुई ऐडियो को ठीक करने में किया जा रहा है।

**अन्य उपयोग :** कोकम की नई पत्तियां, कोमल, लाल रंगीली एवं हरी पत्तियों को सजावट में किया जाता है। इस तरह से कोकम को बहुउद्देश्यों के प्रयोग में लाकर अधिक से अधिक लाभ कमा सकते हैं।

कोकम के सक्रिय संघटक का मूल्यांकन किया गया है। जिससे कि मधुमेह को ठीक किया जा सकता है। आई.डब्ल्यू.एस.टी. बंगलौर में चूहों पर एक अनुसंधान अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि कोकम के फल से प्राप्त रस से नर चूहों में 49% से

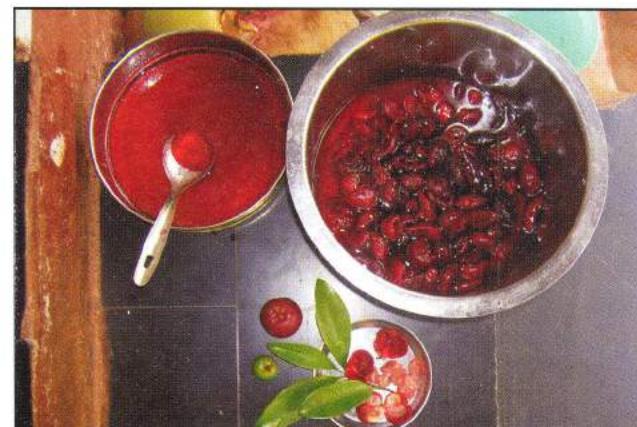


कोकम फल की सूखी छाल

60% तक शर्करा कम हो गई थी यह पाया गया है। अतः इसका प्रयोग मधुमेह प्रतिरोधक के रूप में भी किया जा सकता है।



कोकम फल, बीज, पत्त्य, एवं छाल



कोकम से बने हुए विभिन्न उत्पाद



# वनस्पति एवं उनके औषधीय गुण व उपयोग

डॉ. राजीव राय  
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

भारतवर्ष में हजारों सालों से औषधीय पौधों व जड़ी-बूटियों के उपयोग का प्रचलन रहा है। यह उपयोग आज ही से नहीं वरन् आदिकाल से प्रचलित है, जिनमें रिग वेद जो कि 4000 से 1600 ईसा पूर्व तक में, अथर्व वेद में, अलावा चरक संहिता में औषधीय पौधों के उपयोगिता का वर्णन किया गया है। अथर्व वेद में औषधीय पौधों के गुणों उपयोग का उल्लेख विस्तार से किया गया है। चरक संहिता में में 341 पौधों का औषधीय गुण व उपयोग किया गया है तथा सुश्रुत संहिता में भी इन पौधों का वर्णन किया गया है।

आदिकाल से पौधों का उपयोग मनुष्यों द्वारा विभिन्न उपयोगों में किया जा रहा है। वनों में रहने वाले आदिवासी समाज के लोग एवम् अन्य ग्रामीण समुदाय द्वारा पौधों व वनस्पति का उपयोग भोजन के रूप में, औषधी के रूप में, रंग रोगन हेतु, गोंद के उत्पादन व उपयोग हेतु, जलाऊ लकड़ी हेतु, भवन निर्माण हेतु किया जा रहा है जिसके प्रमाण सहित्य से पुष्टि होती है। देश के मध्य भारत क्षेत्र में मध्यप्रदेश में वनों का क्षेत्रफल 8.69 लाख हेक्टर भूमि जो कि 11.69 प्रतिशत भाग कुल भौगोलिक क्षेत्र के हिस्से

में वन विस्थापित हैं। इन वनों में आदिवासी समाज के लोग अन्नत काल से निवास कर रहे हैं जिनमें बैंगा, गोंड, भारिया, भूरिया, कोल, सौर, कोरकू, भील, भिलाला, आदि प्रमुख हैं। इन आदिवासी समाज के बन्धुओं का जीवन वनों में पाई जाने वाली वनस्पति पर अन्तिम है। भारतवर्ष में कुल 17,000 वानस्पतिक प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से 7,500 वनस्पति का उपयोग औषधीय स्वरूप में किया जाता है जो कि पाई जाने वाली प्रजातियों का 44 प्रतिशत है।

इन औषधीय प्रजातियों से उपयोग धीरे-धीरे भारतवर्ष के अलावा चीन, अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रॉस, यूरोप के विभिन्न राज्यों में भी प्रचलन धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इन औषधीयों में से काफी मात्रा में उपयोग विदेशों में होने से वहाँ इनकी माँग बढ़ गई है एवम् इनका निर्यात होने लगा है। हमारे देश के विभिन्न राज्यों से जहाँ यह बहुमूल्य वनस्पति पाई जाती है इन जंगलों से जड़ के रूप में, कन्द, पत्ती, तना, छाल, फल-फूल इन बहुमूल्य औषधीय वनस्पति का एकत्रीकरण किया जाता है जो कि छोटे-छोटे बिचौलियों के माध्यम से छोटे व्यापारी के द्वारा बड़े व्यापारियों को प्रदान किया जाता है एवं उनका संग्रहण

## तालिका प्रमुख वनस्पति व उनके औषधीय गुण व उपयोग

क्र.सं.	वनस्पति का नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
1.	खैर	जड़	अस्थमा, ब्रॉनकाइटिस
2.	सतावर	जड़	खाँसी, घाव, फोड़ा-फुन्सी
3.	सेना	जड़	रुयूमेटिक दर्द
4.	पथरचट्टा	जड़	किड़नी व लीवर में पथरी
5.	अन्नतमूल	जड़	ब्लड प्रेशर, खाँसी, सर्दी
6.	सर्फगंधा	जड़	ब्लड प्रेशर, बुखार, सर्पदंश
7.	विलारी कंद	कन्द	कान दर्द, फोड़े-फुन्सी में
8.	आमा हल्दी	कन्द	खाँसी, शरीर में सूजन, एनिमिया, कब्ज, घाव एवं चर्म रोग में
9.	काली हल्दी	कन्द	अस्थमा में
10.	जंगली हल्दी	कन्द	मोच आने पर व चोट लगने पर, ल्यूकोडर्मा में



कर के कुछ निर्धारित स्थलों से विरेशों में निर्यात किया जाता है। कुछ प्रमुख प्रजातियों जिनका अत्याधिक उपयोग होने के कारण इनकी उपलब्धता खत्म होने के विलुप्त होने के कगार

पर है। कुछ उपयोगी वनस्पति के औषधीय गुण इत्यादि निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत हैं :

क्र.सं.	वनस्पति का नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
11.	केवकन्द	कन्द	चर्म रोग, खाँसी में
12.	मालकांगनी	पत्ती	सिरदर्द
13.	ब्रह्मी	पत्ती	याददाश्त
14.	आक	लेटेक्स, जड़	खाँसी, अस्थमा
15.	मोहली	छाल	बदन दर्द
16.	शीशाम	पत्तियाँ व छाल	बदन दर्द
17.	तेन्दु	छाल, फूल सुखाकर	डायरिया, चर्म रोग व मूत्र रोग की रोकथाम
18.	शंखपुष्पी	पचांग	याददाश्त की वृद्धि में
19.	गुडमार	पत्ती, जड़	डायबिटिज, सर्पदंश में
20.	कुंजा	पचांग	खून की सफाई में
21.	कालमेघ	पचांग	मलेरिया बुखार
22.	सफेद मूसली	जड़	ल्यूकोरिया, शक्तिवर्धक
23.	जेहम	बीज, फल	चर्म रोग
24.	गुगल	गोंद	बुखार
25.	कलिहारी	कन्द	सर्पदंश
26.	आँवला	फल	डायबिटीज
27.	ईसबगोल	पचांग	कब्ज, शक्तिवर्धक
28.	भुईअँवला	पचांग	पीलिया रोग में
29.	गिलोय	पचांग	पीलिया, शक्तिवर्धक
30.	अश्वगंधा	पत्ती	आँखों के रोग में
31.	अकरकरा	पत्ती व तना	दॉतों के दर्द में
32.	इन्द्रायन	छाल, लेटेक्स	बवासीर, दॉतों के दर्द में, एण्टीबायोटिक, सर्दी खाँसी, शक्ति वर्धक
33.	नागरमोथा	जड़	एण्टीबायोटिक
34.	गोखरु	फल	जलन, पथरी में



## दिव्य वृक्ष बेल (बिल्व) : एक वनौषधि

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा एवं श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव  
उशनकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

**बिल्व वृक्ष** एक अत्यंत प्राचीन पूर्णतः देशी भारतीय वृक्ष है। बेल वृक्ष प्रायः धार्मिक स्थलों विशेषतया भगवान् शंकर के उपासना स्थलों पर लगाने की हमारे देश में एक अत्यंत प्राचीन परम्परा है। यह वृक्ष वृहद् न होकर मध्यम आकार वाला होता है। हमारे शास्त्रों में बेल को दिव्य वृक्ष माना गया है। इसकी शाखाओं पर तीक्ष्ण काँटे पाये जाते हैं। यह वृक्ष लगभग 25 से 30 फुट ऊँचा, 3 से 4 फुट मोटा होता है। इस पर पत्ते तीन—तीन या कभी—कभी पाँच—पाँच के समूह में लगते हैं। बेल का पुष्ट सफेद तथा सुगन्धपूर्ण होता है। इसके फल दो या चार इंच व्यास के प्रायः गोलाकार कड़े आवरण वाले, स्वादिष्ट, मधुर और हृदय को प्रिय लगाने वाली सुगन्ध लिए होते हैं। इसके गूदे में सैकड़ों बीज गोंद में लिपटे हुए रहते हैं।

बेल का वैज्ञानिक नाम एजल मार्मेलोस (*Aegle marmelos*), कुलनाम रुटेसी, अङ्ग्रेजी नाम बील (Beel) फ्रुट ट्री या बेल होता है। संस्कृत में बेल को बिल्व, शाण्डल्य, शैलूष, श्रीफल, मालूर, गंध—गर्भ, कण्टकी, सदाफल, पूतिवात, शैलपत्र, लक्ष्मीपुत्र और शिवेष्ट नामों से जाना लाता है। बेल को हिन्दी में बेल, बील, बोलो, बेलसोंट, बेलकचरी, श्रीफल; गुजराती में बेल, बीली, मराठी एवं बंगाली में बिल्व, बेल; तेलगु में बिल्वयु, मोरेडु; अरबी में सफरजले; उर्दू में बेल एवं तमिल में बिलूबम इत्यादि नामों से जाना जाता है।

बेल के फल के अन्दर टैनिक एसिड, एक उड़नशील तेल, एक कड़वा तत्व एवं एक विकना लुआबदार पदार्थ पाया जाता



बिल्व फल

है। बेल की जड़, पत्तियों और छाल में शक्कर को कम करने वाले तत्व और टैनिन पाये जाते हैं। फल के गूदे में मारशेलीनिस एवं बीजों में पीले रंग का तेल जो अत्यंत उत्तम विरेचन का कार्य करता है, पाया जाता है।

बसंत ऋतु के अंत में पुराने पत्ते झाड़कर नये

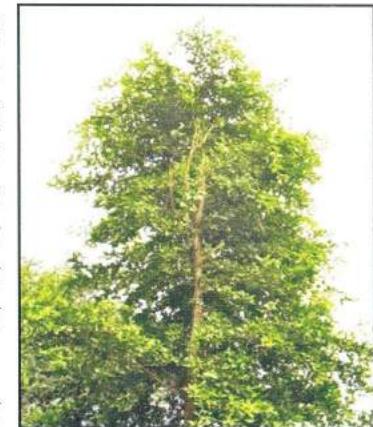
पत्ते आने लगते हैं। ग्रीष्म ऋतु में यह वृक्ष हरे—हरे पत्तों एवं फलों से भर जाता है। हमारे देश के समस्त प्रदेशों में पाये जाने वाला यह बेल कोई अपरिचित वृक्ष नहीं है। श्री शिवपुराण के अन्तर्गत बिल्व—माहात्म्य में वर्णित है कि बिल्व के मूल में अविनाशी महादेव का पूजन जो पुण्यात्मा पुरुष करता है, उसे निश्चित ही कल्याण की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य शिवजी के ऊपर बिल्वमूल में जल चढ़ाता है उसे समस्त तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होकर पवित्रता प्राप्त होती है।

एतस्य बिल्वमूलस्या थालवालमनुत्तमम् ।  
जलाकुलं महादेवो दृष्टा तुष्टो भवत्यलम् ।

अर्थात् इस बिल्व मूल के समस्त ओर जल से परिपूर्ण आलवाल को देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं।

बिल्व तथा श्रीफल नाम से प्रसिद्ध यह फल बहुत उपयोगी होता है। सामान्यतः इसे बेल नाम से ही जाना जाता है। आयुर्वेद के निघण्टु ग्रंथों में इसकी विशेषताओं के आधार पर अनेक नाम दिये गये हैं। धन्वतरि—निघण्टु में बिल्व, शलाटु, शाण्डल्य, हृद्यगंध, शैलूष, वातसार तथा अरिभेद आदि सत्रह नामों से जाना जाता है। इसी प्रकार राज निघण्टु में तेर्वेस, मदनपाल निघण्टु में नौ, कैयटदेव निघण्टु में अद्वाईस तथा भावप्रकाश निघण्टु में पाँच नामों से जाना जाता है। इस वृक्ष को शिवद्रुम भी कहा जाता है।

बिल्व का वृक्ष उर्वरता का प्रतीक, अत्यन्त पवित्र तथा समृद्धि देने वाला होता है। तीन पर्णों में विभाजित इसके पत्ते



बिल्व वृक्ष



बिल्व फल

(बिल्व पत्र) सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों; जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न इन तीनों अवस्थाओं तथा भूत, वर्तमान और भविष्य—इन तीनों कालों के प्रतीक स्वरूप माने जाते हैं।

बेल के पत्ते शंकर जी का आहार माने जाते हैं। इसलिए भक्त लोग बड़ी श्रद्धा से इन्हें महादेव के ऊपर चढ़ाते हैं। शिव की पूजा के लिए बिल्व पत्र आवश्यक माना जाता है। ऐसी धार्मिक मान्यता है कि पत्रों के त्रिनेत्रस्वरूप तीनों पर्णक शिव के तीनों नेत्रों को विशेष प्रिय हैं। इसके फूलों और पके हुए फलों में मीठी सुगंध आती है जो हृदय को भाती है। इसलिए संस्कृत में बिल्व को हृदयगन्ध भी कहते हैं।

बिल्व वृक्ष में छोटे-बड़े फल लगते हैं। कुछ फलों का छिलका मोटा तथा कठोर होता है किन्तु कुछ फलों के छिलके इतने पतले होते हैं कि हथेलियों के बीच में दबाने मात्र से टूट जाते हैं। ऐसे फलों को कागजी बेल कहा जाता है। कुछ बेल वृक्षों के फल मनुष्य के सिर के आकार के बराबर भी बड़े हो जाते हैं।



बिल्व छाल

धार्मिक महत्व एवं उपयोगी फल होने के कारण यह वृक्ष भारतवर्ष में बगीचों एवं धार्मिक स्थलों में सब जगह लगाया जाता है। बाजार में मिलने वाले बेल फलों को दो समूहों में बाँटा जा सकता है। एक तो वे जो आकार में छोटे होते हैं और वनों में प्राकृतिक रूप से पैदा होते हैं। दूसरें वे जो आकार में बड़े होते हैं और बगीचों में उगाया जाता है। चिकित्सीय प्रयोजनों में दोनों ही प्रकार के बेल फलों का उपयोग किया

जाता है। बेल फल जब पूर्णतः विकसित हो जायें और पकने लगें तभी तोड़ लेना चाहिए।

बेल का औषधीय महत्व तो है ही साथ ही इसके अन्य कई उपयोग भी हैं। इसकी छाल से जो गोंद निकलती है वह बहुत उपयोगी होती है। बेल के फूलों की चाय स्वादिष्ट होती है। श्रीलंका में बेल के फूलों से बनी चाय का बहुत प्रचलन है। इस चाय को बेलिमल कहा जाता है। इसके पत्ते का उपयोग चारे के रूप में किया जाता है। ऊँटों को इसके पत्ते बहुत खिलाये जाते हैं। ऊँटपालक चैत्र मास में अपने ऊँटों को बेल का फल खिलाते हैं। ऐसा माना जाता है कि इससे उनकी बीमारियाँ भी दूर हो जाती हैं।

पवित्र होने के कारण बेल की लकड़ी की उपमा चन्दन से की जाती है। बेल के फूलों से मधुर-मधुर गंधयुक्त अर्क निकाला जाता है। इसके गूदे में अपक्षालक गुण विद्यमान होने के कारण इसका उपयोग कपड़ों को धोने के लिये साबुन के प्रतिनिधि के रूप में किया जाता है।

हमारे देश में प्राचीन समय में जब काँच की शीशियों का प्रचलन नहीं था तब वैद्य, हकीम और पंसारी बेल के सूखे फलों में दवाएँ रखते थे। वृन्त के जिस स्थान से फल अलग होता है, उस जगह से छिद्र करके किसी नुकीली वस्तु की सहायता से फल के अंदर का गूदा निकाल कर साफ कर लिया जाता था। वर्तमान समय में भी कुछ लोग बड़े फलों को दो भाग करके उसका गूदा निकालकर कटोरेनुमा छिलके को साफ करके सुखा लेते हैं। इस पात्र को पवित्र माना जाता है।

भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में बेल के अनेक भाग उपयोग में आते हैं। आयुर्वेद के प्रसिद्ध द्रव्य दशमूल के अंग के रूप में यह बहुत विस्तृत रूप से प्रयोग किया जाता है। अधपके फल ग्राही, दीपक और पाचक होता है। अतिसार की यह अत्युत्तम औषधि है। इसके 10 ग्राम चूर्ण को ठण्डे पानी के साथ लेने से आराम मिलता है। इसे खण्ड-खण्ड काटकर मुरब्बा भी बनाया



बिल्व पुष्प



जाता है। दस्त और प्रवाहिका में वैद्य इसे बहुत लाभकारी मानते हैं। पका हुआ बेल का फल मधुर, सुगंधित और शीतल होता है। बेल का ताजा फल अनुलोभक होता है। पके हुए फल का गूदा सूखा लेने पर यह हल्के नारंगी वर्ण का हो जाता है। पानी में इसे धोलने पर यह स्वादिष्ट नारंगी वर्ण का शर्वत बन जाता है, जिसमें मृदुग्राही गुण होते हैं। पके हुए फल का छिलका ग्राही और चिकित्सा हेतु उपयोग में आता है।

आयुर्वेद के चिकित्सा ग्रंथों में कच्चे एवं पके बेल के फल के अलग—अलग गुणधर्मों का वर्णन है। बेल का कच्चा फल गुण में स्निग्ध, संग्राही, दीपन, कटु, तिक्त—कषाय, उष्ण, तीक्ष्ण एवं वात तथा कफ को दूर करने वाला होता है। बेल का फल मधुर, अनुरस, गुरु, विदारी, विष्टभकर, दोषहर, तिक्त—कषाय, रस वाला एवं उष्णग्राही होता है। यह भारी देर से पचने वाला होता है। अनिनि को मंद करता है। विदाही, दुर्जर तथा ग्राही होता है।

बेल मधुर, कषाय रस युक्त, गुरु, हृदय को बल देने वाला तथा पित्त को जीतने वाला है। यह कफ विकार, ज्वर तथा अतिसार का नाश करने वाला और रुचिकारक तथा जठराग्नीदीपक है। कच्चा हो या पका, दोनों ही रूपों में बेल आँतों के रोगों में अद्भुत लाभ करता है। इसमें निहित गोंद आँतों की भीतरी दीवार को चिकना करती है। जिन लोगों की आँतें बहुत रुक्ष रहती हैं उन्हें बेल के सेवन से आश्चर्यजनक लाभ होता है। आँतों के रोगियों को बेल के एक फल का सेवन प्रतिदिन अवश्य करना चाहिए। जिस मौसम में पका हुआ फल न मिले उस मौसम में कच्चे फल को गर्म रेत या राख में भून कर खाना चाहिए। कच्चे फल की गिरी को धूप में सुखाकर उसका चूर्ण बनाकर रख लेना चाहिए। जिन दिनों में कच्चे या पके हुए बेल उपलब्ध ना हों उन दिनों इस चूर्ण का सेवन करना चाहिए।

बेल के फलों का ताजा रस कड़वा एवं चरपरा होता है। इसे पानी के साथ हल्का गर्म करके जुकाम तथा जुकाम के कारण हुए हल्के बुखार में सेवन से लाभ होता है। बेल की जड़ की छाल का काढ़ा मनोवसाद, विषष्णता, और हृदय की अनियमित धड़कन के उपचार हेतु प्रयोग किया जाता है। सविराम ज्वर में जड़ की छाल का काढ़ा बनाकर पिलाया जाता है। बेल के फल का छिलका केश तेलों को सुवासित करने के काम आता है। बेल की शाखाएँ दातुन के रूप में प्रयोग की जाती हैं। बेल के पत्तों को पुलिंस बनाकर शोथयुक्त भागों पर बाँधी जाती है। नेत्रशोथ में बेल के पत्तों को रगड़कर बाँधा जाता है। बेल पत्र इसी बेल नामक फल की पत्तियाँ हैं जिनका प्रयोग पूजा में किया जाता है। आयुर्वेद में बेल को अत्यंत गुणकारी फल माना गया है। यह एक ऐसा

फल है जिसके पत्ते, जड़ और छाल भी उपयोगी हैं। खाने या शर्वत बनाने के लिए खेतों—बागों में उगाए बेल तथा दवा बनाने में जंगली बेल का प्रयोग होता है। जंगली बेल के वृक्ष में कॉटें अधिक और फल छोटा होता है। उष्ण कटिबंधीय फल बेल के वृक्ष हिमालय की तराई, मध्य एवं दक्षिण भारत बिहार तथा बंगाल के घने जंगलों में अधिक पाये जाते हैं। औषधीय प्रयोग में बेल का कच्चा फल, मुरब्बे के लिए अधपका फल एवं शर्वत हेतु पका फल उपयोग में जाता है। बेल के पके गूदे में पचास ग्राम पानी में फूली इमली एवं पचास ग्राम दही में थोड़ा शक्कर का बूरा मिलाकर मिक्सी में घोंट लें। यह स्वादिष्ट पेय पचने में आसान, भूख बढ़ाने वाला तथा चुस्ती देने वाला शर्वत है। इसे कुछ दिनों तक नियमित रूप से लें।

उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त आयुर्वेदिक औषध—निर्माण करने वाली फार्मसियाँ और चिकित्साजगत के विद्वानों ने प्रचुरता से बेल को अपनी अनेक औषधियों में स्थान देकर इसकी उपयोगिता को और बढ़ा दिया है। आयुर्वेदिक चिकित्सक अत्यन्त श्रद्धा के साथ इसके विभिन्न अंगों का उपयोग रोगियों पर करते हैं।

इनका सेवन करने से पहले आयुर्वेदिक चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए। अर्जीं होने पर बेल की पत्तियों के दस ग्राम रस में एक—एक ग्राम काली मिर्च सेंधानमक के साथ मिलाकर पीने से आराम मिलता है। बेल के चूर्ण का इस्तेमाल छोटे बच्चों के दाँत निकलने के समय किया जाता है। जलने पर बेल चूर्ण को गर्म कर ठंडा किये हुए तेल में पेस्ट बनाकर जले हुए अंग पर लगाने से तुरंत आराम मिलता है। चूर्ण ना होने पर बेल के पके हुए गूदे का भी उपयोग किया जा सकता है। पाचन तंत्र में विकार आने से रोगी दुर्बल एवं अशक्त हो जाता है। ऐसे में बेल एवं आम की गुठली की गिरी का आधा ग्राम चूर्ण प्रातः चावल के माड़ के साथ उपयोग किया जाता है। यह चूर्ण पहले दिन दो—दो घण्टे के अंतर से, दूसरे दिन सुबह एवं दोपहर एवं तीसरे दिन प्रातः लेना चाहिए। कब्ज के दौरान पेट एवं सीने में जलन रहने पर पचास ग्राम गूदे में पचींस ग्राम मिश्री और ढाई सौ ग्राम जल मिलाकर शर्वत बनाकर प्रतिदिन लेने से कब्ज नष्ट हो कर चेहरे पर ओज आता है।

कई बार कफ जम जाने के कारण तेज खाँसी आती है। ऐसे में सौ ग्राम बेल के गूदे को आधा ली० पानी में पकायें। जब पानी तीन सौ ग्राम रह जाये तब उसे छान लें। इसमें एक किलो मिश्री, थोड़ी सी जावित्री एवं एक रक्ती भर के सर मिला कर एक तार की चाशनी बना लें। इस पौष्टिक एवं सुगंधित पेय को गुनगुना ही घूट—घूट कर पीने से सर्दियों में कफ इकट्ठा नहीं होता है। दमा के रोगी को बेल की पत्तियों का



काढ़ा 10–10 ग्राम शहद के साथ सुबह शाम देने से आराम मिलता है। अथवा 5 ग्राम रस में 5 ग्राम सरसों का शुद्ध तेल मिलाकर सेवन भी किया जा सकता है। 50 ग्राम सूखे बेल पत्रों का चूर्ण एक चम्च शहद के साथ 3 ग्राम सुबह शाम लेने से या पके गूदे को मलाई के साथ मिलाकर खाने से मूत्र और वीर्य दोष नष्ट होते हैं। पीलिया में बेल की कौपलों का 50 ग्राम रस में 1 ग्राम पिसी काली मिर्च मिलाकर सुबह शाम लिया जा सकता है। शरीर में सूजन होने पर पत्र रस को मलिए। सौ ग्राम गूदे को पानी में उबालकर कुल्ला करने से छाले ठीक हो जाते हैं। सिर दर्द में बेल पत्र के रस में भीगी पट्टी माथे पर रखने से लाभ होता है। रक्त शुद्धि हेतु बेल वृक्ष की 50 ग्राम जड़ 20 ग्राम गोखरू के साथ पीसकर छान लें। प्रातः एक छोटा चम्च चूर्ण आधे कप खौलते हुए पानी में घोलें। मिश्री या शहद के साथ गरमा—गरम सेवन करें। लाभ होगा। पुराना सिर दर्द होने पर 11 पत्तों का रस निकाल कर पीना चाहिए। गर्मियों में इसमें थोड़ा पानी मिला कर पीने से पुराना सिर दर्द ठीक हो जाता है। मोच या अन्दरूनी चोट लगने पर बेल पत्रों को पीस कर इसका पुलिंस बना कर बाँधने से आराम आता है। एक दिन में 3 से 4 बार पुलिंस बदलने पर बहुत लाभ होता है। बेल के पौधों को समुद्र तल से लगभग 1200 मीटर की ऊँचाई तक लगाया जा सकता है। बेल के पौधों तापमान के प्रति बहुत अधिक सहनशील होते हैं एवं इसके पौधों पर 7 डिग्री तक निम्न एवं 48 डिग्री तक अधिक तापमान पर भी कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। इसे सभी प्रकार की भूमी पर लगाया जा सकता है। वैसे दोमट मिट्टी वाली भूमी इसके लिए ज्यादा उपयुक्त होती है। पथरीली मिट्टी वाली भूमी में भी बेल को लगाया जा सकता है।

बेल के अच्छे उत्पादन हेतु गोबर की खाद, नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग करना उपयुक्त होता है। बेल को प्रायः बीज (ताजे) द्वारा ही उगाया जाता है। नर्सरी में बेल के बीजों को पोलीथीन की थैलियों में जून–जुलाई माह में बोकर एवं जब ये एक वर्ष के हो जाते हैं तो इन्हें बगीचों में या अन्य स्थानों पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है। बीजों से उगाये गये पौधे लगभग 7 से 8 वर्षों में ही फल देते हैं।

कार्यिक प्रसारण द्वारा बेल को अधिक उगाया जाता है। इस हेतु माह जून–जुलाई में उत्तम प्रजाति के बेल की शाखा से कली निकालकर उसे एक से दो वर्ष पुराने मूलवृन्त पर बाँध देते हैं। एक से डेढ़ माह में इसमें कलियाँ आ जाती हैं। इसके बाद मूलवृन्त का ऊपरी भाग काटकर पौधों को वर्षा ऋतु में रोप दिया जाता है। बेल के पौधों को कम सिंचाई की आवश्यकता होती है। नये पौधों को तो नियमित अंतराल पर सिंचाई की जाती है। परन्तु पुराने पौधों को 15 से 20 दिनों के

अंतराल पर सिंचाई ही पर्याप्त होती है। बेल के पौधों में बीमारी का प्रकोप कम ही होता है। परन्तु कुछ महत्वपूर्ण रोग जैसे पर्ण सुरंग, पर्ण धब्बा रोग तथा अतः विमलन रोग पाये गये हैं।

**वानस्पतिक विधि** द्वारा तैयार पौधों 4 से 5 वर्षों में फल देते हैं परन्तु पूर्ण फल 12 वर्ष के बाद ही आते हैं। बेल के फल 8 से 10 महीने बाद तोड़ने लायक होते हैं। इसके फल अप्रैल – मई माह में पकते हैं। पकने पर फलों का रंग हरे रंग से पीले रंग का हो जाता है। 10 से 15 वर्ष पुराने वृक्ष लगभग 200 से 400 एवं 40 से 50 वर्ष पुराने वृक्ष लगभग 800 से 1000 तक फल देते हैं। हल्के पीले रंग के तोड़े हुए फल को टोकरियों में भरकर ढँक दिया जाता है जो 15 से 25 दिनों में पक कर तैयार होता है। इस प्रकार पकाये गये फलों की तुलना में पेड़ पर प्राकृतिक रूप से पके हुए फलों में शर्करा की मात्रा कुछ कम होती है।

बेल के फलों का सामान्य तौर पर एक माह तक संग्रहण किया जा सकता है। बेल के फलों को कमरे के तापमान पर एक से दो सप्ताह तक जबकि शीतग्रह में 9 डिग्री तक लगभग दो से ढाई माह तक संरक्षित किया जा सकता है। शीतग्रहों में बेल के फलों को संरक्षित करने पर फलों की अभिशीत की क्षति होती है। जिससे फलों के उपर हल्के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। बेल के कच्चे फलों को छीलकर, छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर पुनः सुखाकर डिब्बे में भरकर नमी रहित स्थानों में संरक्षित किया जा सकता है। औषधीय उपयोग हेतु प्रायः जंगली बेल का उपयोग किया जाता है। बेल के सूखे हुए गूदे को बोरों में भी भंडारण कर सकते हैं। इसके लिए इसे शुष्क, साफ एवं नमी रहित वातावरण वाले भंडार में संरक्षित किया जा सकता है।

हमारे देश में अनेक वृक्षों के पूजन—सम्मानादि की प्राचीन परम्परा है। क्योंकि इनके अंदर गंभीर कल्याणकारी रहस्य छिपा हुआ है। नेपाल के बादीपुर में प्रत्येक दस वर्षों के बाद एक अनोखा समारोह होता है। जिसमें कन्याओं के सामूहिक विवाह बेल के फल से सम्पन्न कराने की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। ऐसी मान्यता है कि कुँवारी कन्याओं का विवाह बेल के फल से करा देने पर वे वैधव्य—दुख से आजीवन बच्चों रहती हैं।

**इस प्रकार बेल वस्तुतः** मानव अंग के लिए एक पूजनीय वृक्ष ही नहीं वरन् एक कल्याणकारी प्राकृतिक अनुपम वनौषधीय वरदान है। आज हमारी आवश्यकता ही नहीं अपितु समय की माँग भी है कि हम बेल के वृक्ष को न केवल संरक्षित करें बल्कि इसे वन क्षेत्रों, बगीचों, धार्मिक स्थलों आदि में रोपित कर जनसाधारण को उसके विभिन्न लाभकारी उपयोगों से अवगत करायें।



# पोषण एवं स्वास्थ्य के लिये रागी

सुश्री अमृता सिन्हा, सुश्री कंचन कुमारी और श्री पंकज सिंह  
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

## प्रस्तावना :

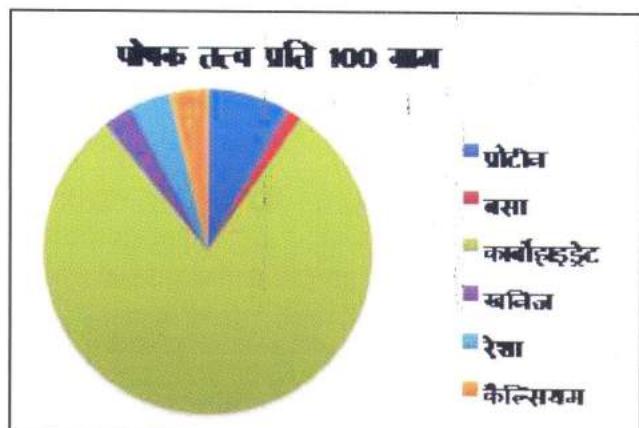
आदिकाल से मोटे अनाज के रूप में रागी (मँडुआ, Finger millet) की खेती की जा रही है। इसका वानस्पतिक नाम इलुसिन कोरेकना (*Eleusine coracana*) है तथा यह पोएसी (poaceae) कुल का पौधा है। भारत में भी इसकी अनेक प्रजातियां पाई जाती हैं। रागी की खेती के बारे में कहा जाता है कि यह कभी भी जंगली रूप में नहीं पाया गया। वैज्ञानिकों के मतानुसार इसका विकास इलुसिन इंडिका नामक धास से हुआ है जोकि दक्षिण एशिया में पाई जाती है। विश्व में मँडुआ उगाये जाने वाले देशों में अमेरिका, यूरोप के कुछ देश, भारत, चीन, अरब, फ्रांस एवं मिश्र आदि प्रमुख हैं। रागी एक वार्षिक फसल है जिसकी अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए नर्म एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है। रागी की फसल पहाड़ों पर 2100 मीटर की ऊँचाई पर भी उगाई जा सकती है। रागी की खेती काली मिट्टी से लेकर बलुई मिट्टी में की जा सकती है। असिंचित क्षेत्रों में रागी की फसल ज्वार, बाजरा, दलहनी तथा तिलहनी फसलों के साथ अन्तः मिश्रित फसल विधि के रूप में उगाई जाती है। इसके भंडारण हेतु कोई विशेष रख रखाव की जरूरत नहीं पड़ती क्यूंकि इस पर किसी प्रकार के कीट या फफूंद का हमला नहीं करते हैं। झारखण्ड के पारंपरिक त्योहारों जितिया और जन्माष्टमी में रागी के व्यंजन बनाने का प्रचलन है। बच्चे इसके डंठल के मीठे रस का भी आनंद लेते हैं। इन्हीं गुणों के चलते ही यह गरीब किसानों के लिए अच्छा विकल्प माना जाता है।



रागी की पकी बालियाँ

## पोषक लाभकारी तत्व

इस अनाज में अमीनो अम्ल मेथिओनिन पाया जाता है, जोकि स्टार्च की प्रधानता वाले भोज्य पदार्थों में नहीं पाया जाता है। रागी के प्रति 100 ग्राम पोषक तत्वों की मात्रा इस प्रकार होती है; प्रोटीन 7.3 ग्रा., बसा 1.3 ग्रा., कार्बोहाइड्रेट 72 ग्रा., खनिज 2.7 ग्रा., कैल्सियम 3.44 ग्रा., रेशा 3.6 ग्रा., यह ऊर्जा 328 किलो कैलोरी देता है। रागी का आटा स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा माना जाता है। यह दक्षिण भारत के रसोईघरों में नियमित रूप से इस्तेमाल किया जाता रहा है। वास्तव में यह दक्षिण भारत के कई गावों का प्रमुख भोजन है। इस अनाज में बसा की मात्रा कम होती है और यह असंतृप्त बसा होती है। रागी को सबसे अधिक पोषण वाले अनाजों में से एक माना गया है। रागी के अति सेवन से शरीर में ओक्सलिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है, इसिलिये वृक्क में पथरी वाले मरीजों को इसके सेवन न करने की सलाह दी जाती है।



रागी में पोषक तत्वों की मात्रा

## आर्थिक महत्व

मोटे अनाजों का पोषक मान अन्य फसलों की तुलना में कहीं अधिक होता है। इनमें न केवल प्रचुर मात्रा में पाया जाता है बल्कि आवश्यक खनिज पदार्थ भी प्रर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इन सबके अलावा फाइटोकेमिकल जैसे कैरोटिनोइड, फ्लावनोइड, केप्सेसिन आदि भी पाये जाते हैं जो चिरकाली रोगों से लड़ने में शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करते हैं।

रागी की खेती मुख्यतः दाना प्राप्त करने के लिए की जाती है साथ ही साथ इससे जानवरों के लिए चारा भी प्राप्त होता है। रागी का भूसा अच्छे चारे के रूप में उपयोग में लाया जाता है क्योंकि इसमें 61% कुल पाच्य पोषक तत्व पाये जाते हैं।

इस तरह से यह एक अच्छा जीवकोपार्जन का माध्यम भी है। आजकल इसके दाने का इस्तेमाल औद्योगिक रूप में भी किया जाता है। ब्रिटानिया जैसी बड़ी कंपनियों रागी से बने उत्पादों को बेचकर अच्छा मुनाफा कमा रही है जैसे रागी बिसकुट। इसके आटे की रोटी साथ ही साथ इसके दाने को उबालकर भी भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। रागी के दानों से उत्तम किस्म की शराब भी बनाई जाती है। रागी का खनिजों तथा आवश्यक अमीनो अम्ल के रूप में पोषक मान



रागी से बने व्यावसायिक उत्पाद

मक्का की तुलना में अधिक होता है जो इसे सुबह के नाश्ते के आदर्श भोजन बनाता है। भारत में इससे केक, पूडिंग तथा मिठाइयाँ आदि निर्मित की जाती हैं। यह मधुमेह से पीड़ित व्यक्तियों के लिए अति उत्तम आहार है। इसके अंकुरित बीजों से माल्ट बनाकर शिशुओं के लिए भोजन तैयार किया जाता है। पोषक गुणों के साथ इसका औषधीय महत्व भी है। यह मीजल्स, एनीमिया मधुमेह जैसे रोगों में लाभदायक है।

### स्वास्थ्य के लिये रागी

रागी में एक अमीनो अम्ल ट्रिप्टोफैन होता है जिसके कारण भूख कम लगती है और भर को भी नियंत्रित करत है। इसके साथ ही यह धीमी देर से पचता है इसीलिए यह अतिरिक्त भोजन की खपत को नियंत्रित करता है। इस प्रकार यह मोटापे को कम करता है। रागी में कैल्सियम होने के कारण यह बच्चों और वृद्ध लोगों में हड्डियों को मजबूत करने में मदद करता है। मधुमेह में यह रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करता है। इनमें उपरिथित लेसिथिन और मेथीयोनीन अमीनो अम्ल यकृत से अतिरिक्त बसा हटाकर कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करते हैं। इसमें मौजूद लौह तत्व खून की कमी को दूर करता है। रागी के सेवन से शरीर प्राकृतिक रूप से शांत रहता है जिससे अवसाद, उद्रिग्नता तथा अनिन्द्रा की समस्या दूर रहती है। यह माइग्रेन में भी लाभदायक है। रागी शरीर के उपचरीय सिस्टम को ठीक रखता है। इसके अलावा यह उच्च रक्त चाप, यकृत रोगों, अस्थमा से ग्रस्त लोगों तथा स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए सर्वोपरि आहार है।



## सामाजिक व राष्ट्रीय विकास में सूचना की भूमिका

श्रीमती अनुराधा भाटी  
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

सूचना राष्ट्रीय संसाधनों व मूलाधारों में से एक है जो कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय विकास व उन्नति के लिए सूचना एक अति आवश्यक संसाधन है। जो सूचनाएँ विधिवत् संगठित, संग्रहित व व्यवस्थित इस प्रकार की जाती है कि उन्हें सरलता से पुनः निकाली जा सके, देश के संसाधनों को विकसित करने में मदद करती हैं और ऐसे ये संसाधन आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास में योगदान प्रदान करते हैं।

किसी देश का सामाजिक, आर्थिक विकास सरकार की नीतियों व फैसलों पर निर्भर है और यह सभी सरकार के पास उपलब्ध विभिन्न स्त्रातों से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित होता है। विकास के कार्यक्रम को फलीभूत किया जा सकता है जब तत्काल संक्षिप्त व सही सूचना जब जरूरत हो तब उपलब्ध हो।

### सूचना की धारणा :

सूचना एक महत्वपूर्ण धारणा है जो बहुत कुछ हद तक अनिश्चित हटाती है। सूचना की मात्रा व गुणवत्ता जो उपलब्ध है और उसका उपयोग किसी समाज के विकास को निर्धारित करने में मदद करती है। ग्रंथालय सूचना के संग्रह, उन्हें संगठित करने, प्रस्तुत करने व सूचना को सभी पाठकों तक वितरित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अतः यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में सूचना है क्या।

### जे. एच. शेरा के अनुसार :

सूचना एक सिंगल पृथक् तथ्य हो सकता है और यह बहुत से तथ्यों की एक इकाई हो सकती है। लेकिन आयाम (Dimensions) कुछ भी हो सकते हैं। यह एक विद्वता की वह इकाई है जो हम प्राप्त करते हैं, जिससे ज्ञान का भण्डार बनाते हैं।

### जी. बेनजो के अनुसार :

सूचना की आवश्यकता व महत्व बहुआयामी है। यह एक अद्भूत संसाधन है जिसकी विशिष्ट विशेषताएँ हैं। यह हमारे अस्तित्व के लिए आवश्यक है और उसका स्वयं का जीवन है। सूचना का महत्व शोध व विकास, व्यापार व उद्योगों, योजना व

नीति निर्धारण व प्रबंधन आदि आदि में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सूचना उत्पादन करने वाले से सूचना को प्राप्त करने वालों के पास संचारित होती है।

### राष्ट्रीय विकास में सूचना का योगदान :

राष्ट्रीय विकास में सूचना का महत्वपूर्ण योगदान है। यह विकास की योजनाओं और नीतियों में जान (Lifeblood) डालती है। केन्द्रीय, राजकीय अथवा स्थानीय सरकारों हमेशा विकास की योजना व नीतियों निर्धारण करती है। अतः सूचना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि कोई भी समाज प्रचुर अथवा कम से कम पर्याप्त मात्रा में भौतिक संसाधनों के बिना विकसित नहीं हो सकता है, यदि उसका आधारभूत ढंग्या (infrastructure) कमज़ोर है।

किसी समाज का विकास इस पर निर्भर करता है कि उसने किस प्रकार कुशलतापूर्वक व प्रभावशाली तरीके से सूचना को अपने काम के लिए प्रयुक्त किया है जिसमें सभी संसाधन, सरकारी संस्थाएँ, शिक्षाविद, विद्यार्थी और यहाँ तक कि एक सामान्य मनुष्य भी सम्मिलित है।

### राष्ट्रीय विकास के विभिन्न अंग

आर्थिक विकास  
कृषि विकास,  
औद्योगिक विकास व  
अन्य विकास

सामाजिक विकास  
शैक्षणिक विकास,  
व्यक्तिगत विकास व  
सांस्कृतिक विकास

### सामाजिक विकास में सूचना का योगदान

किसी देश का सामाजिक विकास सूचना पद्धति पर निर्भर करता है क्योंकि ज्ञान की प्रेरणा, ज्ञान को पैदा करना और ज्ञान पर आधारित सूचना पद्धति प्रत्येक समाज के वांछित लक्ष्य होते हैं।

### सामाजिक विकास

शैक्षणिक विकास सांस्कृतिक विकास व्यक्तिगत विकास



## सामाजिक विकास में सूचना का योगदान:

किसी देश का सामाजिक विकास सूचना पद्धति पर निर्भर करता है क्योंकि ज्ञान की प्रेरणा, ज्ञान को पैदा करना और ज्ञान पर आधारित सूचना पद्धति प्रत्येक समाज के बांधित लक्ष्य होते हैं।

## सूचना का सामाजिक योगदान निम्न प्रकार है :

1. सूचना एक सामाजिक संसाधन है और यह एक सामाजिक अधिकार है। यह व्यक्तियों के विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता देता है।
2. यह सामाजिक जागरूकता के उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करता है, व्यक्तियों को उद्देश्यों के लिए प्रोत्साहित करता है और व्यक्तियों और उनके समूहों को आपस में जोड़ने का कार्य करता है।
3. समाज उच्च तकनीक के साथ ही बढ़ सकता है यदि प्रभावशाली सूचना सेवाओं का सहयोग उसे मिल जाए।

समाज के विकास के लिए निम्न प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता रहती है :

1. सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों, गतिविधियों और योजनाओं की सूचना।
2. सामाजिक आदेश, कानून व सामाजिक न्याय के बारे में सूचना।
3. सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं के बारे में सूचना।
4. जनसंख्या के बढ़ने की प्रवृत्ति राजनैतिक व आर्थिक स्थिति के बारे में सूचना।
5. सामाजिक समस्याओं के बारे में सूचना।
6. पूंजी व आर्थिक प्रतिभूति के विषय की सूचना और
7. राष्ट्रीय सुरक्षा पद्धति, राष्ट्रीय विकास योजनाओं, शैक्षणिक पद्धति, सांस्कृतिक विरासत और मनुष्य शरीर रचना शास्त्र, सार्वजनिक प्रशासन इत्यादि के बारे में सूचना।

उपरोक्त सभी सूचनाएँ व समाज से सम्बन्धित अन्य सूचनाओं को कुशलतापूर्वक, प्रभावशाली ढंग से और शीघ्रतापूर्वक सूचना सेवाएँ पुरस्कालयों, सूचना केन्द्रों, व प्रलेखन केन्द्रों से प्रदान की जा सकती हैं। सूचना का योगदान मुख्य सामाजिक क्षेत्रों में क्या हो रहा है उसकी एक झलक सामाजिक विकास में सूचना के योगदान को दर्शाता है। मुख्य सामाजिक कारक जो कुल मिलाकर सामाजिक विकास में उत्तरदायी हैं उसमें निम्न सम्मिलित हैं :

### 1. शैक्षणिक विकास

2. सांस्कृतिक विकास और
3. मानव विकास

शैक्षणिक, सांस्कृतिक और मानव के विकास के लिए सूचना का क्या योगदान है वह सामाजिक विकास में स्पष्टतया दिखाई देता है।

### 1. शैक्षणिक विकास में सूचना का योगदान :

शैक्षणिक पद्धति का विकास सर्वसज्जित ग्रन्थालय पद्धति से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। आज, शैक्षणिक सिस्टम सूचना पर आधारित है और ग्रन्थालय से सम्बन्धित है। विधार्थियों, अध्यापकों, शोधकर्ताओं व वैज्ञानिकों के लिए शीघ्रता व समय पर सूचना तक पहुँचना शैक्षणिक पद्धति व ग्रन्थालय पद्धति की सूचना सेवाओं का बहुत आवश्यक भाग है। ग्रन्थालय की सूचना सेवाएं शैक्षणिक स्तर को ऊँचा उठाता है और परिणायत राष्ट्रीय विकास में मदद करती है।

शिक्षा को सूचना की आवश्यकता में निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित किए जा सकते हैं :

1. ग्रन्थालय व शोध की सुविधाओं की सूचना।
2. अध्ययन के विभिन्न पाठ्यक्रमों के बारे में सूचना।
3. विभिन्न स्कॉलरशिप व फैलोशिप के बारे में सूचना।
4. किसी कक्षा में प्रवेश हेतु न्यूनतम योग्यता की सूचना।
5. महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों व विद्यालयोंकी सूची की सूचना।
6. दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम, निरन्तर शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, शारीरिक शिक्षा व व्यवसायिक शिक्षा इत्यादि के विषय में सूचना।
7. भाषा व साहित्य के बारे में सूचना; व
8. विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सूचना।

उपरोक्त सभी सूचनाएँ शैक्षणिक पद्धति से सम्बन्धित हैं और कुशल सूचना सेवाओं के द्वारा प्रदान की जा सकती है। ऐसी सूचना सेवाएँ अध्यापकों व विधार्थियों को अपने स्वयं को विकसित करने में मदद करती है, जो आगे चलकर शैक्षणिक पद्धति को विकसित करते हुए सामाजिक विकास की ओर बढ़ती है।

### 2. सांस्कृति विकास में सूचना का योगदान :

सूचना इतिहास और राष्ट्र के सांस्कृतिक विरासत तक पहुँचने में मदद करती है। सूचना सेवाएँ सांस्कृतिक विरासत के संग्रहण, संरक्षण व चबूँ और वितरण के लिए प्रभावशाली स्त्रोत हैं।



सांस्कृतिक विरासत के एक भाग के रूप में ग्रंथालय निम्नलिखित बातों की सूचना प्रदान करता है :

- समाज में सामाजिक परम्परागत धारणाएँ;
- कला-भवन निर्माण कला, मूर्तिकला, प्राचीन मन्दिर और चित्रकला;
- सामाजिक आचार-विचार;
- धार्मिक रीति-नीति व त्यौहार;
- देवी देवताओं के बारे में सूचना;
- देश के विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में पहनावा और पोशाकों के बारे में सूचना;
- प्राचीन काल के संगीत के वाद्य यन्त्रों व हथियारों के बारे में सूचना;
- मानव विचारों अभिप्रायों और क्रियात्मक कल्पनाओं का कथन से सम्बन्धित सूचना।
- धार्मिक स्थानों, ऐतिहासिक स्थानों और घटनाओं के बारे में सूचना और
- अजायबघर, आर्ट गैलरीज, पुरातत्व के सामान और स्थान आदि-आदि की सूचना।

सूचना जो पुस्तकों के स्वरूप में अथवा किसी अन्य स्वरूप में उपलब्ध है वह एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी को पहुंचाने में सहायक होती है। संस्कृति गत बातों का संरक्षण है और गत बातों का संरक्षण तभी संभव है जब गत बातों का लिखित में रिकार्ड हो और इस प्रकार लिखित रिकार्ड संस्कृति के बारे में सूचना का एक स्त्रोत हो जाता है और जो दूसरे के साथ भी संचारित किया जा सकता है। इस प्रकार, रिकार्डेड सूचना इसके लिए आगे जाकर विकास का एक स्त्रोत बन जाता है।

बी.सी. विकरी (B. C. Vickery) के शब्दों में पुस्तकालयों व सूचना सेवाओं का सांस्कृतिक विकास के लिए निम्न योगदान हैं :

1. सांस्कृतिक धरोहर की जागरूकता को प्रोत्साहित करना;
2. बाजा बजाने वाली सभी कलाओं की सांस्कृतिक भावनाओं तक पहुंचाने की सुविधा प्रदान करना।
3. अन्तः सांस्कृतिक डायलॉग को प्रोत्साहित करना और सांस्कृतिक विभिन्नता को बढ़ावा देना।

#### 4. मौखिक परम्परागत सूचनाओं को सहयोग प्रदान करना।

अतः सूचना सेवाएं सांस्कृतिक विकास में सहयोग सांस्कृतिक फैलाव के एक उपकरण के रूप में करती है। समाज व्यक्तियों का एक समूह होता है। और इस प्रकार एक व्यक्तिगत विकास के फलस्वरूप समाज का भी विकास होता है। पुस्तकालय व सूचना सेवा का उद्देश्य न केवल व्यक्ति के विकास के लिए है वरन् समाज के विकास के लिए भी है स्त्रीयों की सूचना की आवश्यकताएँ उनके विकास के लिए जरूरी है वे बच्चों की देखरेख, पालन-पोषण, स्त्रीयों के विकास की पद्धतियाँ, परिवार नियोजन के तरीकों, गर्भधारण, बैंकिंग के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, आंतरिक सजावट, कशीदें का कार्य और सभी विभिन्न कलाएँ और शिल्पकलाओं से सम्बन्धित होती है। जबकि मनुष्य को अपने विकास के लिए जो सूचनाओं की आवश्यकता होती है वे सार्वजनिक स्थानों पर शिष्टाचार व व्यवहार, बच्चों के विकास, परिवार का प्रबंध, नवीन व्यावसायिक उधम प्रारम्भ करना, शारीरिक कसरत व अच्छे स्वास्थ्य में रहना, खेलकूद, राष्ट्रीय विकास की योजनाओं और व्यक्तिगत विकास के प्रशिक्षण कार्यक्रमों, व्यापार, उद्योगों आदि-आदि से सम्बन्धित होती है।

यदि आवश्यक सूचना सही समय पर जनता को मिलती है, तब वह सूचना उनके विकास में सहायक होगी। सूचनाएँ पुस्तकालयों में पढ़ने के उद्देश्य हेतु संग्रहित होती है। मानव विकास में पढ़ने की आदत सबसे अग्रणी तत्व है।

#### उपसंहार :

सूचना का साधारण विचार वर्तमान युग में बढ़ता जा रहा है। सूचना तकनीकी के आगमन से सूचना के संचार के विभिन्न मार्ग खोल दिए हैं। सूचना का बहाव इतना तीव्र है कि संसार का काई भी ऐसा कोना अछूता नहीं रहा है जहाँ सूचना पहुंच नहीं पाती। सूचना प्रत्येक क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और देश के चहुँ और विकास में अधिक योगदान देती है। सूचना विज्ञान व तकनीकी के विकास में भी सहयोग देती है। संसार का कोई भी विषय क्षेत्र नहीं है जो "सही समय पर सही सूचना" के बिना पूर्ण रूप से विकसित हो सकता है। अतः सूचना को प्रत्येक क्षेत्र के विकास में उपयोग में लाना चाहिए और तब ही सूचना देश में व्यक्तियों के जीवन स्तर को विकसित करने के लिए, कुल मिलाकर सम्पूर्ण देश के विकास का एक स्तम्भ बन सकती है।



## फंफूद से बनता है - जैव-विष

डॉ. नवीन कुमार बोहरा, डॉ. डी.के. मिश्रा एवं श्री के.एस. परमार  
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

आज एक ओर फंफूद की उपयोगिता एवं विशेषता को बढ़ा चढ़ाकर प्रचारित, प्रसारित किया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर इनसे होने वाले तमाम खतरनाक दुष्प्रभावों एवं जानलेवा रोगों के बारे में भी जानकारी होना जरुरी है। फंफूद से दूषित खाद्य पदार्थ स्वास्थ्य के लिए गम्भीर खतरा पैदा कर रहे हैं। इससे बनने वाले टॉकिसन अर्थात् जैव विष अनेक रागों को पैदा करने में सक्षम होते हैं। इनकी क्षमता अत्यधिक होने के कारण से आधुनिक युग में शक्तिशाली जैव हथियारों के रूप में इस्तेमाल किये जा सकते हैं। विभिन्न कवक प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होने वाला माइक्रोटॉकिसन नामक विषैला पदार्थ पशुओं एवं मनुष्यों में कई भयानक एवं संक्रामक बीमारियां उत्पन्न कर सकता है। ये माइक्रोटॉकिसन पादप बीजों में अंकुरण को रोककर पौधों की वृद्धि दर को भी प्रभावित करते हैं। पर्याप्त आद्रता एवं मध्यम तापमान की परिस्थितियों में फंफूद का विकास तेज गति से होता है। इसी कारण वर्षा ऋतु में डबलरोटी एवं अन्य खाद्य पदार्थों पर फंफूद जल्दी लगती है। भारत में खाद्यान्नों एवं तिलहनों पर कुछ इसी प्रकार का फंफूद संक्रमण पाया जाता है। ये फंफूद इन पर उगकर जैव विष पैदा करती है। माइक्रोटॉकिसन उत्पन्न है — एसपरजिलस फ्लेवस, एसपरजिलस बरसीकोलर, एसपरजिलस फयूमिगेटरा, फयूजेरियम सोलेनाई व ग्रेमीनीएरम पोनिसोलियम सिट्रिनम आदि। इनके बीज वायु में मुक्त रूप से बिखरे रहते हैं तथा अनुकूल परिस्थितियों होते ही ये अंकुरित होकर खाद्य पदार्थों पर लग जाते हैं। इन पदार्थों पर ये कवक धीरे—धीरे विकास करते हुए विभिन्न जैविक क्रियाओं द्वारा जहरीले पदार्थ (माइक्रोटॉकिसन्स) उत्पन्न करते हैं। जब कोई पशु या मनुष्य इन दूषित पदार्थों को खाता है तो लीवर, किडनी तथा अन्य कई अंगों में भयानक बीमारियाँ हो जाती हैं। विशेष परिस्थितियों में मृत्यु भी हो सकती है। इन बीमारियों को "माइक्रोटॉकिसकोसिस" कहा जाता है।

### इतिहास :

सर्वप्रथम वर्ष 1930 में सोवियत संघ के लोगों ने मनुष्य में फंफूद विषाक्तता की जानकारी प्राप्त की थी। उन्होंने फंफूद ग्रस्त खाद्य से होने वाले चार रोगों का पता लगाया इसके तुरन्त बाद जापान में धान की पीली फंफूद में जैव विष होने की

खबर मिली। शोध द्वारा कुछ खास प्रकार के जैव विषों जैसे साइकोसिन और सेनेसियां एल्केलाइडो की खाद्यों में उपस्थिति और उनके जिगर के रोगों के बीच सीधा सम्बन्ध पाया गया। 1960 में जब ब्रिटेन में "टर्की एक्स रोग" से लाखों टर्की मर गई। इसके बाद इस भयकर बीमारी ने केन्या, युगाड़ा एवं कई अन्य देशों को अपनी चपेट में ले लिया। वैज्ञानिक अध्ययनों से इसका कारण फंफूद संक्रमित खाद्य होने का पता चला। इसमे मुख्यतः "एसपरजिलस फ्लैक्स" नामक फंफूद प्रजाति का पता चला जो "एफलाटोकित्स" नामक कवक विष उत्पन्न करता है। इसी से विज्ञान की एक नई शाखा "माइक्रोटॉकिसकोसिस" का उदय हुआ। फंफूद से होने वाले रोगों का पता 430 बी.सी. में मिश्र में 1951 में फ्रांस में 1979 में अफ्रीका में तथा भारत में 1976 में चला।

### अर्गट विषाक्तता :

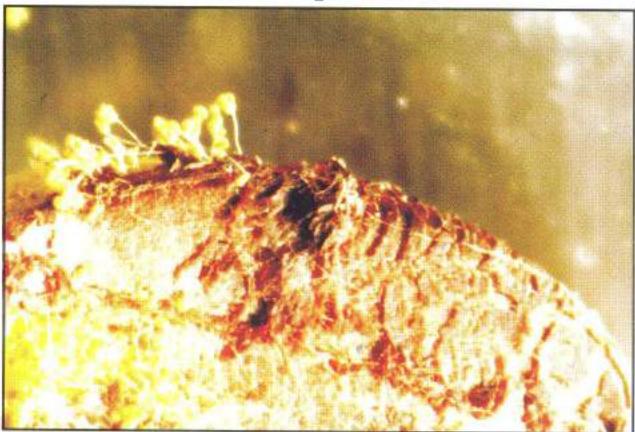
बाजरे पर अर्गट संदूषण एक प्रमुख समस्या है। राई, सोरघम और गेंहूँ के पौधे फूल आने के समय से "क्लेवीसेप्स



एसपरजिलस प्रजाति



खेजरी के अंकुर पर संक्रमण



बीजों पर फफूंद

'परपुरिया' नामक फफूंद के अर्गट से दूषित हो जाते हैं। फफूंद से बनने वाली काली लम्बी काया, अर्गट कहलाती है। संदूषित खाद्यान्नों के सेवन से मनुष्य एवं पशु दोनों में ही "अरगेटिज्म" पैदा हो जाता है। इसके होने से बेहोशी, उल्टी आना, सुस्ती, डायरिया हाथ—पैरों में ऐंठन—जकड़न, अंगुलियों में गैंगीरन, डिप्रेशन आदि लक्षण प्रकट होते हैं। अमेरीका में 1875 में, सोवियत रूस में 1726–27 में व इंग्लैण्ड में 1928 में अर्गटता होने की जानकारी है। भारत में महाराष्ट्र, गुजरात व राजस्थान में बाजरा के उपयोग से जहर आंत्रीय परेशानियां देखी गई हैं।

अर्गट की जैव विषाक्तता इसके रोगाणुओं का जीवन लम्बा होने के कारण गंभीरतम होती है। यह भूमि से पैदा होता हो तथा अनेक माध्यम इसे पोषण उपलब्ध कराते हैं। इसके नियंत्रण हेतु सर्वाधिक प्रभावी रसायनों की भी कमी है। अर्गट ग्रसित राई, गेहूं या बाजरा से निकाले गए एल्केलॉइड खाने से मुर्गियों में कुछ ही समय में उदासीनता, सांस फूलना, पंख गिरना, टांगों की गंभीर कमजोरी, उल्टी होना जैसे लक्षण पैदा हो जाते हैं। अर्गट बाजरा, राई और गेहूं के प्रति 100 ग्राम पदार्थ में क्रमशः 32 मि.ग्रा., 70 मि. ग्रा. और 92 मि. ग्रा.

एल्केलॉइड की सुरक्षित सीमा 100 ग्राम में 0.5 मि. ग्रा. मानी गई है।

महाराष्ट्र में अर्गटी अन्न के अलग करने के लिए बाजरे को 20 प्रतिशत सामान्य नमक के घोल में डुबोया जाता है परन्तु इससे सभी प्रभावित दाने अलग नहीं होते हैं।

**प्रायः जैव विष या माइक्रोकिसन** सभी खाद्य पदार्थों में मौजूद रहते हैं किन्तु इनकी मात्रा नगण्य से लेकर हानिकारक स्थिति तक हो सकती है। खाद्यों के जैव विषों में ऐफलाटॉकिसन वर्ग के तेज विष हैं। इसमें ऐफलाटॉकिसन बी1 व जी1 पशुओं के लिए अत्यधिक विषैले हैं। जैव विष प्रायः खाद्य वस्तुओं विशेषकर मूँगफली, बिनौला, चावल, गेहूं मक्का, ज्वार, कसावा, शकरकंद आदि पर हो सकता है। ये पौधों के बीजों का अंकुरण कम करते हैं, कार्बोहाइड्रेट्स व प्रोटीन की मात्रा को घटाते हैं एवं राइबोन्यूक्लिक अम्ल तथा डी-ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल संश्लेषण भी कम हो जाता है। जैव विष क्रोमोसोम्स की संख्या अनियंत्रित कर अनेक विकृतियां पैदा कर देते हैं।

### विभिन्न प्रकार के जैव-विष और प्रभाव

ऐफलाटॉकिसन कवक विष से जिगर में घातक कैंसर हो जाता है और इसकी अधिक मात्रा से कोशिकाओं की मौत हो जाती है। जैव विष लाल रक्त कणिकाओं को भी बदल देते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया, जापान एवं दक्षिण भारत में ऐफलाटॉकिसन से जिगर कैंसर की कई घटनाएँ हुई हैं। बिनौला में ऐफलाटॉकिसन व गॉसीपोल दोनों हानिकारक होते हैं।

इनके अतिरिक्त जैव विष रेट्रिग्रामेटोसिस्टन जो "एसपराजिलस वर्सीकल्वर" द्वारा उत्पन्न होता है। लूटेसकिरीन व साइक्लोक्लोरोटीन पेनिसिलियम इसलैडिकम से एवं रुग्गुलोरीन, पेनिसीलियम रुग्गुलोसम से उत्पादित होता है। ये जैव विष आंतों में कैंसर पैदा करते हैं और फफूंदग्रस्त मॉल्ट और संदूषित मक्का में पाये जाते हैं। पेनिसीलियम ग्रिसोफलैविन से पैदा होने वाला ग्रिसोफलैविन पैदा होता है जो प्रभावकारी एन्टीबायोटिक है परन्तु यह जिगर विषाक्तता व कैंसर पैदा करते हैं। ट्राइकोथिसेन्स, फयूजेरियम द्वारा पैदा होते हैं परन्तु अकैसरकारी वर्ग के जैव विष हैं।

आज दुनिया भर के लोग जैव विष की समस्या से निजात पाने हेतु प्रयासरत हैं। वास्तव में इन जैव विषों की संदूता उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जो इन्हें पैदा करने वाले फफूंद की बढ़वार के लिए अनुकूल होती है। यदि इन कवक विषों की मात्रा लगातार शरीर में पहुंचती रहे तो आदमी की मृत्यु हो सकती है। ये कवक विष एक बार बन जाने पर उबालने पर भी नष्ट नहीं होते तथा एक पीढ़ी तक भी आनुवंशिक रूप से जा सकते हैं। इससे बचाव ही इससे सुरक्षा है।



## भारतीय संविधान में वन एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रावधान

श्री नीलेश यादव  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वर्तमान में हमारे देश में न जाने कितने कानून हमारे पर्यावरण एवं संरक्षण हेतु लागू हैं किन्तु हमें यह पूर्ण रूप से कभी ज्ञात ही नहीं हो पता कि हमारे संविधान ने इस हेतु क्या—क्या प्रावधान किये हुए हैं? भारत में पर्यावरण कानून काफी समृद्ध और विकसित है। भारतीय संविधान विश्व के उन गिने—चुने संविधानों में से एक है, जिनमें पर्यावरण संरक्षण के प्रावधान भी दिए गए हैं। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के जरिये संविधान में जोड़ी गई धाराओं 48—क और 51—क खण्ड (छ) के अन्तर्गत पर्यावरण संरक्षण का दायित्व राज्य और उसके नागरिकों पर डाला गया है। परंतु भारतीय पर्यावरण कानून का विकास कई भागों में हुआ है और यह अन्य कुछ घटनाक्रमों के फलस्वरूप प्रवर्तित हुआ है। पर्यावरण के महत्व को समझते हुए इसके संरक्षण को सांविधानिक दर्जा दिया गया है। राज्य के नीति निर्देशिक सिद्धांतों में यह कहा गया है कि यह राज्य का कर्तव्य है कि "वह पर्यावरण को सुधारे और देश के वनों एवं वन्य जीवन का संरक्षण करे। प्रत्येक नागरिक का भी यह मूल कर्तव्य है कि वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवन सहित प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार करे।

भारतीय संविधान की उद्देशिका में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है तथापि जिस समाजवादी राज्य की परिकल्पना की गई है वह तभी सम्भव है जब सभी का जीवन स्तर ऊँचा हो। यह सत्य है कि सभी का जीवन स्तर केवल स्वच्छ पर्यावरण अर्थात् प्रदूषण रहित पर्यावरण में ही सम्भव है। मूलाधिकारों में प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के बारे में कोई प्रावधान नहीं है लेकिन कुछ मूलाधिकारों में पर्यावरण को अप्रत्यक्ष रूप से समाहित किया गया है। 42वें संविधान संशोधन के पूर्व भारतीय संविधान में अनुच्छेद 47 एक मात्र ऐसा अनुच्छेद था, जो पर्यावरण के बारे में प्रविधान करता था।

अनुच्छेद 47 के अनुसार "राज्य अपने स्तर को पोषाहार और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य विशिष्टता, मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकर औषधियों के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपयोग का प्रतिबंध करने का प्रयास करेगा। पर्यावरण संरक्षण तथा सुधार के लिए भारतीय

संविधान में 1976में 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 48—क से जोड़ा गया जो निम्न उपबंध करता है:

"राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा उसमें संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा के लिए प्रयास करेगा।"

42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में एक नया भाग 4—क भी जोड़ा गया। इस भाग के अनुच्छेद 51—क में नागरिकों के 10 मूल कर्तव्यों को समाविष्ट किया गया है। अनुच्छेद 51—क खण्ड (छ) स्पष्ट रूप से पर्यावरण संरक्षण का उपबन्ध करता है। इसके अनुसार —

"भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा और उसका संवर्धन करें तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखे।"

भारतीय पर्यावरण कानून के विकास के पीछे तीन घटनाओं की प्रमुख भूमिका रही है। स्टॉकहोम में 1972 में हुए संयुक्त राष्ट्र मानवीय पर्यावरण सम्मेलन ने पर्यावरण के क्षेत्र में अनेक कानूनों के निर्माण को दिशा प्रदान की। जल अधिनियम, वायु अधिनियम, वन संरक्षण अधिनियम और पर्यावरण से संबंधित प्रावधानों को संविधान में सम्मिलित करना, इसके कुछ ज्वलंत उदाहरण है। भोपाल में 1984 में घटित गैस त्रासदी से भारतीय वैधानिक प्रणाली की अनेक खामियां सामने आई। इस त्रासदी से पीड़ित लोग अमरीका और भारत की अदालतों में जो लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं, वे इसी बात को साबित करती हैं। त्रासदी के फलस्वरूप अनेक कानून बनाए गए, जिनमें 1988 का पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। रियो सम्मेलन, जो वर्ष 1993 में हुआ, उससे भी भारत के पर्यावरण परिदृश्य में कुछ वैधानिक हरकत होती दिखाई दी। जैव विविधता अधिनियम, 2002 सम्मेलन में अपनाए गए जैव विविधता अभिसमय (कन्चेशन) को क्रियान्वित करने के लिए बनाया गया था।

संवैधानिक कानून चाहे हम कितने ही व्यों न बना लें किन्तु आजसमय की मांग है कि विश्व के प्रति ऐसा दृष्टिकोण अपनाया जाए, जो मानव जाति की एकता, समाज और प्रकृति में समन्वय के सिद्धान्त पर आधारित हो। विश्व के प्रति नया दृष्टिकोण विश्व—स्तर पर मानव के 'अधिकार' को भी प्रभावित



करेगा। मानव जाति की संपत्ति होने के कारण 'पृथ्वी' पर किसी का भी अधिकार नहीं होना चाहिए, यहां तक कि राज्य का भी नहीं। 'पृथ्वी' को हमें एकदम नए दृष्टिकोण से देखना होगा। पृथ्वी 'अपनी संपत्ति' नहीं है अपितु मानव जाति की संपत्ति है। इसी तरह प्रकृति भी किसी की संपत्ति नहीं है, वरन् समूची मानव जाति की संपत्ति है। जब तक हम प्रकृति को 'अपनी संपत्ति' मानते रहेंगे, प्रकृति को लूटते रहेंगे, उसका ध्वंस करते रहेंगे।

उल्लेखनीय है कि भारतीय कानून प्राकृतिक संसाधनों को संपत्ति के अधिकार के दायरे में रखता है। आज दुनिया में 200 से ज्यादा अंतर्राष्ट्रीय कानून हैं। 600 से ज्यादा द्विपक्षीय समझौते हो चुके हैं। 150 से ज्यादा क्षेत्रीय कानून हैं। ये ज्यादातर यूरोपीय देशों में हैं। भारत ने समस्त अंतर्राष्ट्रीय कानूनों पर दस्तखत किए हैं और उनकी संगति में प्रकृति और पर्यावरण संबंधी कानूनों को बदला है। भारत ने सबसे पहले

1933 के लंदन कन्वेंशन को 1939 में स्वीकार किया। बाद में 1951 के रोम के वृक्ष संरक्षण कन्वेंशन को 1952 में स्वीकृति दी। अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिहाज से संविधान के 253 अनुच्छेद में प्रावधान है। बाद में 1972 की स्टोकहोम कॉफ्रेंस की सिफारिशों को संसद ने 42वें संविधान संशोधन के जरिए लागू किया। अभी तक संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रकृति और पर्यावरण संबंधी जितने भी कानून बनाए हैं उनकी संगति में भारत में कानून बन चुके हैं।

अंततः आवश्यकता इस बात कि है हम सभी को इस बात का सच्चा प्रयास करना होगा कि आज जो भी, जैसा भी प्राकृतिक पर्यावरण शेष है वह हमारी आने वाली पीढ़ियों हेतु सुरक्षित बचा रहे। संवैधानिक प्रावधान एवं कानून तो मात्र हमें एक चेतावनी देने का कार्य ही कर सकते हैं। सच्चा प्रयास तो हमें अपने अंतः करण से ही करना होगा।



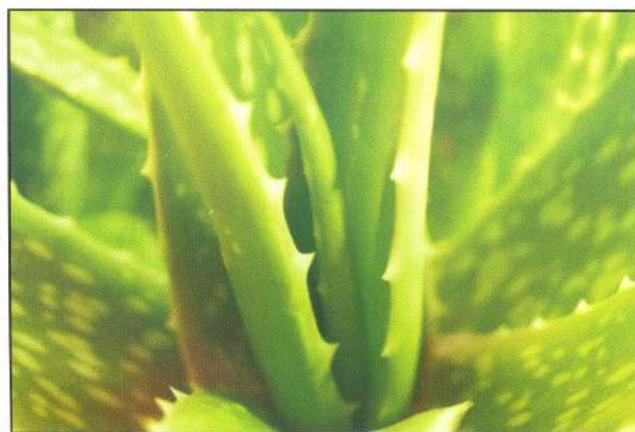
# एलोवेरा (घृत कुमारी) - घर-घर का एक पौधा

श्री आशुतोष कुमार पाण्डेय  
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

एलोवेरा को घृत कुमारी, क्वारगंदल या ग्वारपाठा के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रजाति के कुछ पौधे उत्तरी अफ्रीका में पाये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि एलोवेरा पौधे की उत्पत्ति उत्तरी अफ्रीका में हुई है। इसके औषधीय गुणों के कारण इसे एक औषधीय पौधे के रूप में जाना जाता है। इसके औषधीय गुणों का उल्लेख आयुर्वेद में भी किया गया है। इस पौधे का उपयोग औषधी एवं सौंदर्य-प्रसाधनों में किया जाता है। एलोवेरा के सेवन से कई रोगों को दूर किया जा सकता है जैसे : मधुमेह, एड्स, रक्त शुद्धि, पेट-विकार, कब्ज, अल्सर इत्यादि। एलोवेरा जूस पीने से पेट की कई बिमारियाँ दूर हो जाती हैं। इसके रोजाना उपयोग से कब्ज जैसी समस्या भी दूर रहती है। पेट में पैदा होने वाले अल्सर को भी यह ठीक करता है। घृत कुमारी के अर्क का प्रयोग बड़े स्तर पर सौंदर्य प्रसाधन और वैकल्पिक औषधि उद्योग, त्वचा को युवा रखने वाली क्रीम, आरोग्यी या सुखदायक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

## एलोवेरा के बारे में :

यह बिना तने का एक गूदेदार पौधा होता है जो साधारण तौर पर 60 से 100 सेंटीमीटर लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ नुकीली और मांसल होती हैं जिनका रंग हरा होता है। पत्तों के किनारों पर छोटे-छोटे ढाँतों सदृश एक पंक्ति होती है। इस पौधे का फूल पिला होता है जो गर्मी के मौसम में उत्पन्न होते हैं।



एलोवेरा का पौधा

## एलोवेरा मूलत :

उत्तरी अफ्रीका का पौधा है। इसे अल्जीरिया, मोरक्को, द्यूनीशिया के साथ और माडियरा द्वीपों के साथ-साथ अब इसे पूरे विश्व में उगाया जाता है। पूरे विश्व में संभवतः इसकी 275 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इस प्रजाति को शीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में जैसे ऑस्ट्रेलिया, बारबाडोस, बेलीज, नाइजीरिया, संयुक्त राज्य अमेरीका और पैराग्वे में भी उगाया जाता है।

## एलोवेरा की खेती :

यह पाया जाता है कि एलोवेरा की खेती एक सजावटी पौधे के रूप में बड़े पैमाने पर की जा रही है। एलोवेरा को एक सजावटी पौधे एवं इसके औषधीय गुणों के कारण उगाया जा रहा है। यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जीवित रहने में सक्षम है। सरस रहने के कारण यह पठारी और शुष्क क्षेत्रों में खूब ऊगायी जाती है। घरों में इसे गमले में जिसमें पानी का निकास अच्छा हो एवं उसमें बालुई मिट्टी रखकर तेज खिली धूप की स्थिति में रखकर इसे उगाया जाता है। सौंदर्य प्रसाधन उद्योग के लिये जैल की आपूर्ति के लिये एलोवेरा का बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन अनेक देशों में किया जाता है।

## एलोवेरा के उपयोग :

एलोवेरा का स्वाद बहुत ही कड़वा होता है लेकिन इसके जैल का प्रयोग व्यावसायिक रूप में उपलब्ध दर्ही, पेय पदार्थों और कुछ मिठाइयों में एक घटक के रूप में किया जाता है। माना जाता है कि घृत कुमारी के बीजों से जैव ईंधन प्राप्त किया जा सकता है। ताजा भोजन के संरक्षक के रूप में, और छोटे खेतों में जल संरक्षण के उपयोग में भी आता है। एलोवेरा के अर्क का प्रयोग बवासीर, मधुमेह, पेट की खराबी, जोड़ों का दर्द, त्वचा की खराबी, मुंहासे, रुखी त्वचा, सन-बर्न, झुर्रियों, दाग-धब्बों इत्यादि को ठीक करने के लिये किया जाता है।

## एलोवेरा का चिकित्सा में उपयोग :

कई देशों में एलोवेरा का प्रयोग पारंपरिक चिकित्सा में किया जाता है। ध्यान रहे कि अगर इसको ज्यादा मात्रा में निगला जाये तो यह हानिकारक हो सकता है। एलोवेरा धावों



को भरने में भी प्रभावी इलाज है। जलने और घाव पर लगाने के अलावा एलोवेरा के सेवन से मधुमेह रोगियों की रक्त शर्करा के स्तर में सुधार होता है।

### एलोवेरा जूस के उपयोग :

1. 3 से 4 चम्मच रस सुबह खाली पेट में लेने से दिन—भर शरीर में चुर्स्ती व स्फूर्ति बनी रहती है। इसका रस ब्लड को साफ़ करता है तथा हीमोग्लोबिन का स्तर ठीक रखता है।
2. एलोवेरा का रस शरीर में रोग—प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाती है। इसका एंटी बैक्टेरियल और एंटी फंगल गुणों के कारण इसके उपयोग से घाव जल्द भर जाते हैं।
3. इसका रस पाचन क्रिया को सही करता है। इसके रोजाना प्रयोग से कब्ज से छुटकारा मिलता है। इसके रस के सेवन से मोटापा भी कंट्रोल होता है।

4. इसके रस को त्वचा पर लगाने से प्रभावशाली असर दिखता है। यह एक प्राकृतिक रिक्न क्लींजर है।
5. इसको लगाने से पिपल एवं एक्ने से राहत मिलती है। एक टुकड़ा एलोवेरा ले कर उसे पानी में उबाल लें और इसके बाद उसे मिक्सरी में पीस कर उसमें शहद मिला कर चेहरे पर लगाने के 10 मिनट बाद ठंडे पानी से धो लें। रोजाना प्रयोग से त्वचा में निखार के साथ—साथ परेशानी से भी राहत मिलेगी।

एलोवेरा के बहुल प्रयोग ने इसे एक लोकप्रिय पौधा बना दिया है। इसके सौंदर्य एवं औषधीय गुणों के कारण यह घर—घर उगाया जाने वाला पौधा बन गया है। ऐसी स्थिति में क्यों न हम भी इसे घर के गमले में लगायें एवं इसके बहुत उपयोग का लाभ उठायें।

# चिकित्सा शक्तियों के साथ दस रसोई मसाले

श्री रविन्द्र राज लाल एवं श्री बसंत कुमार  
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

## हींग :

दांतों में कीड़ा लग जाने पर रात्रि को दांत में हींग दबाकर सोने से कीड़े खुद-ब-खुद निकल जाते हैं। यदि शरीर के किसी हिस्से में कांटा चुभ गया हो तो उस स्थान पर हींग का घोल भर देने से कुछ समय में कांटा स्वतः निकल आएगा। हींग में रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है। दाद, खाज, खुजली व अन्य चर्मरोगों में इसको पानी में धिसकर उन स्थानों पर लगाने से लाभ होता है। कब्जियत की शिकायत होने पर हींग के चूर्ण में थोड़ा सा मीठा सोडा मिलाकर रात्रि को फांका लेने से सवेरे शौच साफ होगा। पेट के दर्द, अफारे, ऐंठन आदि में अजवाइन और नमक के साथ हींग का सेवन करने से लाभ होगा। प्रतिदिन के भोजन में दाल, कढ़ी व कुछ सब्जियों में हींग का उपयोग करने से भोजन को पचाने में सहायक होती है। मासिक धर्म के दौरान होने वाली परेशानियां जैसे पेट में दर्द और मरोड़या अनियमित मासिक धर्म में हींग का सेवन करने से फायदे होते हैं। यह औषधि कैंडिडा संक्रमण और ल्यूकोरहोइया से भी छुटकारा दिलाने में मददगार साबित होता है। सूखी खांसी, अस्थमा, काली खांसी के लिए हींग और अदरक में शहद मिलाकर लेने से काफी आराम मिलता है।

## अजवाईन :

मसाले के रूप में मौजूद अजवायन रूपी अनमोल औषधीय पौधा शरीर में उत्पन्न होने वाले कब्ज कफ, पेट दर्द, वायुगोला, सूखी खांसी, हैजा, अस्थमा तथा पथरी आदि अधिकांश रोगोपचार में अपनी अहम भूमिका निभाता है। अजवाईन का पौधा गमले में आसानी से लगाया जा सकता है, यह गैस तथा कब्ज से मुक्ति दिलाता है व व्यंजनों का स्वाद बढ़ाता है। बारीक काट के अजवायन के पते बेसन के पकौड़े में डालकर, कढ़ी में, दाल में, चटनी आदि में उपयोग किया जा सकता है। माउथ फ्रेशनर के रूप में पत्ती धोकर चबाक खाने से, मुंह खूशबूदार हो जाता है।

## हल्दी :

भारतीय मसालों का सदियों से ही अभिन्न अंग रही हल्दी का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में प्राचीन काल से ही

किया जाता रहा है। हल्दी को बहुत अच्छा रोगाणुनाशक माना गया है, इसीलिए चोट लगने पर हल्दी की पुलिस बांधने तथा हल्दी को दूध के साथ पीने को बहुत फायदेमंद माना जाता है। हल्दी और दूध, सेहत के लिहाज से इनके कई फायदे विभिन्न शोधों में माने गए हैं



हल्दी

लेकिन गर्म दूध के साथ हल्दी का सेवन भी सेहत के लिए कम फायदेमंद नहीं है। हल्दी एंटी माइक्रोबियल है इसलिए इसे गर्म दूध के साथ लेने से दमा, ब्रोकाइटिस, फेफड़ों में कफ और साइनस जैसी समस्याओं में आराम होता है। यह बैक्टीरिया और वायरल संक्रमणों से लड़ने में मददगार है। गर्म दूध के साथ हल्दी के सेवन से शरीर में जमा फैट्स घटता है। इसमें मौजूद कैल्शियम और मिनिरल्स सेहतमंद तरीके से वेट लॉस में मददगार हैं। हल्दी में अमीनो एसिड है इसलिए दूध के साथ इसके सेवन के बाद नींद गहरी आती है। अनिद्रा की दिक्कत हो तो सोने से आधे घंटे पहले गर्म दूध के साथ हल्दी का सेवन करना चाहिए। हल्दी वाले दूध के सेवन से गठिया से लेकर कान दर्द जैसी कई समस्याओं में आराम मिलता है। इससे शरीर का रक्त संचार बढ़ जाता है जिससे दर्द में तेजी से आराम होता है। आयुर्वेद में हल्दी वाले दूध का इस्तेमाल शोधन किया में किया जाता है। यह खून से टॉक्सिन्स दूर करता है और लिवर को साफ करता है। पेट से जुड़ी समस्याओं में आराम के लिए इसका सेवन फायदेमंद है। दूध में कैल्शियम अच्छी मात्रा में होता है और हल्दी में एंटीऑक्सीडेंट्स भरपूर होते हैं इसलिए इनका सेवन हड्डियों को मजबूत करता है और शरीर की प्रतिरोधी क्षमता घटाता है।

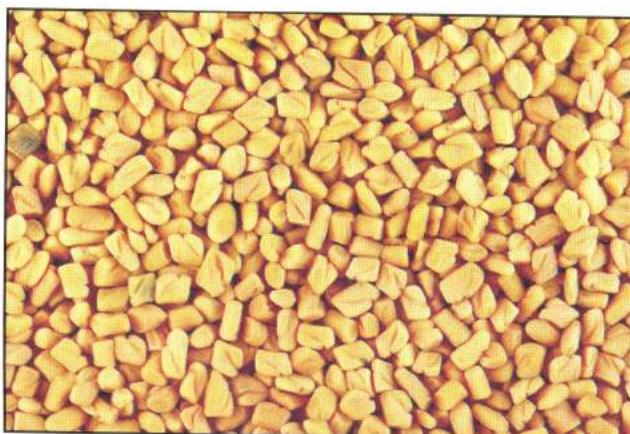


### मेथी :

यह मुख्य रूप से एक हरी पत्तेदार सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है और बीज मसाला तैयार करने के लिए उपयोग किया जाता है। इसके भी कई औषधीय उपयोग हैं। मेथी के बीज और पत्ते स्तनपान कराने वाली महिलाओं में दूध बढ़ाने के लिए अच्छे हैं। यह मधुमेह के इलाज और रक्त में शर्करा की मात्रा को कम करने में मदद करता है। मधुमेह से बचने के लिए रोज सुबह एक चम्मच मेथी दाना पाउडर पानी के साथ लेना फायदेमंद है। पत्ते की सब्जी के रूप में कोलेस्ट्रॉल कम करने के लिए उपयोगी है। एक टी स्पून मेथी दाने एक कप पानी में रात भर भिगो कर सुबह उसका पानी पीने से काफी आराम मिलता है। अपच या बदहजमी होने पर आधा चम्मच मेथी दाना पानी के साथ निगलना चाहिए। सुबह शाम पानी के साथ निगलने से कब्ज दूर होता है। रोज सुबह-शाम एक से तीन ग्राम मेथी दाने पानी में भिगोकर चबाकर खाने से शरीर के जोड़ों में दर्द नहीं होता, जोड़ मजबूत होते हैं। इससे गठिया और मांसपेशियों के दर्द में भी आराम आता है। वृद्धावस्था में अपानवायु के कारण होने वाले रोगों में आराम मिलता है। मेथी दानों का लेप बालों में लगाने से बाल मजबूत होते हैं, डेंगफ खत्म होती है और बाल झड़ने की समस्या से छुटकारा मिलता है। मेथी दानों को रात भर नारियल के गरम तेल में भिगो कर फिर सुबह इस तेल से सिर पर मसाज करना चाहिए।

### लौंग :

लौंग सबसे अधिक खुशबूदार मसालों में से एक है। लौंग एंटीसेप्टिक और औषधीय गुणों से भी भरपूर है। लौंग का प्रयोग विभिन्न बीमारियों में उपचार हेतु होता है। उलटियां होने पर एक चम्मच शहद में एक चुटकी लौंग पाउडर मिलाकर लेने से लाभ होता है। उल्टी में एक गिलास पानी में दो-तीन लौंग पीस कर उबाले। जब पानी थोड़ा ठंडा हो जाए तो छान कर रोगी को दिन में दो बार पिलाने से लाभ मिलता



मेथी

है। बुखार होने पर रोगी 2 कप पानी में 3 पिसी लौंग, 2 इलायची, 2 छोटे चम्मच सौंफ, 6-7 तुलसी के पत्ते, दालचीनी का छोटा टुकड़ा मिलाकर उबालें और कुनकुना होने पर छान कर काढ़ा रोगी को पिलाएं। दांत दर्द में एक चम्मच जैतून के तेल में 2-3 बूंदे लौंग के तेल मिलाकर रुई का फाहे से दर्द वाले दांत के पास रखने से आराम मिलता है एवं 5 लौंग पीसकर उसमें एक नींबू का रस मिलाकर दर्द वाले दांत के आस पास मालिश करने से भी दर्द में आराम होता है। गले में खराश होने पर दिन भर में 2-3 लौंग चबाने से फायदा होता है। जुकाम, खांसी, कफ होने पर तवे पर 2-3 लौंग गर्म करके चूसने से बलगम का जमाव नहीं होता और कफ निकलता रहता है। जुकाम होने पर रात्रि में अक्सर नाक बंद हो जाता है। उबलते पानी में कुछ बूंदे लौंग के तेल की मिलाकर और उस पानी की भाप से लाभ होता है। दमे में भी लौंग काफी उपयोगी होता है। दमे से पीड़ित व्यक्ति को लौंग की पांच कलियों को 30 मिलीलीटर पानी में उबाल कर काढ़ा बना कर शहद के साथ दिन में तीन बार पिलाने से काफी लाभ होता है। एंटीसेप्टिक गुणों के कारण लौंग चोट, खुजली और संक्रमण में काफी उपयोगी होती है। इसका उपयोग कीटों के काटने या डंक मारने पर भी किया जाता है। इसे किसी पत्थर आदि पर पानी के साथ पीस कर काटे गए या डंक वाले स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

### दालचीनी :

एक खुशबूदार महक छाल, दालचीनी व्यापक रूप से सब रसोई में प्रयोग किया जाता है। यह मुख्यतः एक स्वादिष्ट बनाने का मसाला सामग्री के रूप में रसोई में कार्यरत है। प्राचीन चीनी संदर्भ के में 2700 ई.पू. में मतली, बुखार, दस्त और मासिक धर्म समस्याओं से राहत के लिए एक दवा के रूप में दालचीनी का उपयोग के बारे में उल्लेख है। दालचीनी एक उपयोगी सुगंधित औषधि है। यह गरम मसाला तो है ही, यह पाचन, वातहर, स्तंभण, गर्भाशय उत्तेजक, गर्भाशय संकोचक एवं शरीर उत्तेजक है। यह पेट के रोग, इंफ्लुएंजा, टाइफाइड, टीबी और कैंसर जैसे रोगों में उपयोगी पाई गई हैं। दालचीनी का उपयोग, साबुन, दांतों के मंजन, पेरस्ट, चाकलेट एवं सुगंध बनाने के काम में भी आता है। चाय, काफी में दालचीनी डालकर पीने से स्वाद बढ़ जाता है तथा जुकाम भी ठीक हो जाता है। दालचीनी का तेल दर्द, घावों और सूजन को नष्ट करता है। दालचीनी को तिल के तेल, पानी, शहद में मिलाकर उपयोग करना चाहिए। दर्द वाली जगह पर मालिश करने के बाद इसे रातभर रहने देना चाहिए। ठंडी हवा से होने वाले सिरदर्द से राहत पाने के लिए भी दालचीनी के पाउडर को



पानी में मिलाकर पैस्ट बनाकर माथे पर लगाने से राहत मिलती है। दालचीनी पाउडर में नींबू का रस मिलाकर लगाने से मुँहासे व ब्लैकफैड्स दूर होते हैं। दालचीनी, डायरिया व जी मिचलाने में भी औषधी के रूप में काम में लाई जाती है। दालचीनी में एंटीएजिंग तत्त्व उपस्थित होते हैं। इसलिए दालचीनी का सतत प्रयोग उपयोगी है।

### काली मिर्च :

कालीमिर्च का उपयोग कई बीमारियों के उपचार के लिए किया जाता है। काली मिर्च पाचन क्रिया में सहायक होती है। इससे चयापचय भी बेहतर होता है। काली मिर्च खाने पर शरीर से पर्सीना निकलता है, जिससे शरीर को ठंडक मिलती है और बुखार के लक्षणों में राहत मिलती है। इससे रक्त संचार सुधरता है। यह दिमाग के लिए फायदेमंद है। काली मिर्च की चाय पीने से सर्दी, खांसी और वायरल इफेक्शन में राहत मिलती है। गैस के कारण पेट फूलने पर काली मिर्च असरदार है। इससे गैस दूर होती है। यह एक बढ़िया एंटीऑक्सीडेंट है। काली मिर्च एंटीबैक्टीरियल की तरह भी काम करती है। यह मैंगनीज और आयरन जैसे पोषक तत्त्वों का बढ़िया स्रोत है, जो शरीर के सुवारु रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक है। कालीमिर्च से गले की खराश दूर होती है। खाने के साथ काली मिर्च खाने पर शरीर इसमें मौजूद पोषक तत्त्वों को आसानी से अवशोषित कर लेता है। इससे शरीर की थकावट दूर होती है। काली मिर्च से भूख बढ़ती है। ईटिंग डिसऑर्डर से पीड़ित लोगों के लिए यह फायदेमंद होती है। काली मिर्च और पुदीने से बनी चाय पीने से फेफड़ों और श्वास नलिकाओं का संक्रमण दूर होता है। इससे कफ में भी राहत मिलती है। एक चम्मच शहद में 2–3 बारीक कुटी हुई कालीमिर्च और एक चुटकी हल्दी पाउडर मिलाकर लेने से कफ में राहत मिलती है।



काली मिर्च

### इलायची :

इलायची का सेवन आमतौर पर मुखशुद्धि के लिए अथवा मसाले के रूप में किया जाता है। यह दो प्रकार की आती है



इलायची

हरी या छोटी इलायची तथा बड़ी इलायची। व्यंजनों को लजीज बनाने के लिए एक मसाले के रूप में प्रयुक्त होती है, वहीं हरी इलायची मिटाइयों की खुशबू बढ़ाती है। मेहमानों की आवभगत में भी इलायची का इस्तेमाल होता है। लेकिन इसकी महत्ता केवल यहीं तक सीमित नहीं है। यह औषधीय गुणों की खान है। यदि आवाज बैठी हुई है या गले में खराश है, तो सुबह उठते समय और रात को सोते समय छोटी इलायची चबा-चबा कर खाएँ तथा गुनगुने पानी पियें। यदि गले में सूजन आ गई हो, तो मूली के पानी में छोटी इलायची पीसकर सेवन करने से लाभ होता है। सर्दी खांसी होने और छींक आने पर एक छोटी इलायची, एक टुकड़ा अदरक, लौंग तथा पाँच तुलसी के पत्ते एक साथ पान के पत्ते में रखकर खाना चाहिए।

### जीरा :

सब्जी में तड़का लगाना हो या मसाले का स्वाद बदलना हो, भारतीय खाने में जीरा का इस्तेमाल जरूर किया जाता है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि जीरा सिर्फ खाने का स्वाद ही नहीं बढ़ाता बल्कि इसका अगर सही तरीके से उपयोग किया जाए तो यह कई हेल्थ प्रॉब्लम्स की छुट्टी कर सकता है। जीरा, काली मिर्च, सोंठ और करी पावडर को बराबर मात्रा में लेकर पीस लें और मिश्रण तैयार कर लें। इसमें स्वादानुसार नमक डालकर धी में मिलाएं और चावल के साथ खाएं। पेट साफ रहेगा और कब्जियत में राहत मिलेगी। मधुमेह को कट्टोल करने के लिए आधा छोटा चम्मच पिसा जीरा दिन में दो बार पानी के साथ पीएं। डायबिटीज रोगियों को यह काफी फायदा पहुंचाता है। अगर आपको भूख नहीं लगती या खाना



जीरा

नहीं पचता तो एक चौथाई चम्मच जीरा पाउडर और काली मिर्च पाउडर को एक गिलास दूध में डालकर पीएं। उल्टी हो तो आधा नींबू का रस, एक गिलास पानी, थोड़ा जीरा, दो छोटी इलायची पीसकर मिलाकर दो—दो घंटे पर पिलाएँ। लू लग जाने पर नारियल के पानी के साथ काला जीरा पीसकर शरीर पर लेप करने से शांति मिलती है। दाँत में कीड़ा लगने के कारण दर्द हो, तो पीपल, सेंधा नमक, जीरा, सेमल का गोंद तथा हरड़ का बक्कल सम भाग लेकर पीसकर बारीक चूर्ण बनाकर दाँतों पर मलने से पर्याप्त लाभ मिलता है। थायरॉइड (गले की गाँठ) में एक प्याला पालक के रस के साथ एक चम्मच शहद और चौथाई चम्मच जीरे का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। सौंफ और जीरे के साथ सेवन करने से पेट की जलन में लाभ होता है।

#### अदरक :

यह पाचक है। पेट में कब्ज, गैस बनना, वमन, खाँसी, कफ, जुखाम आदि में इसे काम में लाया जाता है। अदरक का रस और शहद मिलाकर चाटते रहने से दमे में आराम मिलता है, साथ ही भूख भी बढ़ती है। यह पाचन ठीक करता है। नींबू—नमक से बना सूखा अदरक आप यात्रा में साथ रख सकते हैं। यदि किसी कारण से शरीर में कहीं भी सूजन आ जाए तो अदरक का पेरस्ट बना लें और दर्द या सूजन वाले हिस्से पर लेप लगाएं। ऐसा करने से दर्द से राहत मिलेगी, वहीं चुटकियों में सूजन भी उतर जाएगी। मोच आने पर अदरक का

लेप लगाएं। इसके सूख जाने पर सरसों का तेल गर्म करें और उससे हल्के हाथों से मसाज करें। दिन में ऐसा तीन—चार बार किया जाए, तो मांसपेशियां सक्रिय हो जाएंगी और मोच के कारण अपने स्थान से हटे अंग व्यवस्थित हो जाएंगे। ताजी और कच्ची अदरक के छोटे—छोटे टुकड़ों को धीरे—धीरे चबाएं, हो सकता है इसके कर्सैले स्वाद के कारण आपको थोड़ा असहज लगे, लेकिन हर दो घंटे के अंतराल में ऐसा करने से दस्त रुक जाएंगे। यदि पतले दस्त से परेशान हैं तो चिंता की कोई बात नहीं, अदरक है ना। आप दो चम्मच कच्ची सौंफ और 5 ग्राम अदरक एक गिलास पानी में डालकर उसे इतना उबालें कि एक चौथाई पानी बच जाए। इस रस को दिन में 3—4 बार लेने से आपको तुरंत आराम मिल जाएगा।

आज पूरी दुनिया में तेजी से मोटापा फेल रहा है। मोटे लोगों की भीड़ में बहुत से लोग ऐसे भी हैं, जो जरूरत से ज्यादा पतले हैं और उन्हें उपहास का पात्र बनना पड़ता है। ऐसे में वजन बढ़ाने या मोटे होने के लिए भोजन करने से 15 मिनट पहले ताजी अदरक का छोटा टुकड़ा चबा—चबा कर खाना चाहिए। ऐसा करने से आपको भूख भी अच्छी लगेगी और भोजन भी आसनी से पच जाएगा। फारस्ट लाइफ स्टाइल के कारण आज हर तीसरे व्यक्ति को भोजन के बाद पेट फूलने, गैस बनने और कब्ज की शिकायत होने लगी है। ऐसे में अदरक के बारीक टुकड़ों को नींबू के रस में डालकर और काला नमक छिड़क कर खाने से काफी आराम मिलता है। गठिया—बाय के रोग में अदरक रामबाण औषधि है। पुराने से पुराने गठिया रोग में यदि 5 ग्राम अदरक और आधा चम्मच अरंडी के तेल को दो कप पानी में डाल कर उबाला जाए और जब यह पानी आधा रह जाए तो इसके नियमित सेवन से गठिया की बीमारी से आराम मिलना शुरू हो जाता है। ऐसा लगातार तीन माह तक किया जाए तो पुराने से पुराना जोड़ों का दर्द भी छूमंतर हो जाता है। दांतों में दर्द होते समय अदरक के छोटे टुकड़े दांतों के बीच में दबाकर रखने से काफी राहत मिलती है और थाड़ी देर में दर्द खत्म हो जाता है। यदि आपके पास ताजी अदरक नहीं है तो आप सूखी अदरक या सौंठ के चूर्ण में थोड़ा सा लौंग का तेल मिलाकर दांतों पर लगाया जाए तो दर्द छूमंतर हो जाता है।



## पर्यावरण का परिचायक

श्री दिनेश धीमान

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

समस्त जीवधारी पर्यावरण के साथ बहुत निकटता से परस्पर क्रिया करते हैं। परन्तु इन सब में केवल मानव ही ऐसा जीव है जिसमें पर्यावरण को बदल सकने की क्षमता है और जैसा कि देखा गया है कि अधिकतर में परिवर्तन स्वयं उस के लिए तथा अन्य जीव—जन्तुओं के लिए हानिकारक पाए जा रहे हैं। अतः पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाना और उसकी चिन्ता पैदा करना आवश्यक है। हमें उन गंभीर परिणामों से अवगत होना बहुत जरूरी है, जो पर्यावरण संरक्षण एवं संसाधन पुनरुद्भवन की ओर यथोचित ध्यान न दिए जाने पर इस ग्रह पर विद्यामान जीव सृष्टि पर निश्चित आने वाले हैं।

सन् 1970 के दशक के आरम्भिक वर्षों में पहली बार पर्यावरण सुरक्षा एक प्रमुख सामाजिक चिंतन बना क्योंकि यह वह समय था जब पर्यावरण प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों के निम्नीकरण के दुष्प्रभाव मानव के सामने स्पष्ट आने लगे थे। तब यह महसूस किया गया कि हम पर्यावरण को सदैव ऐसा ही चिर—सम्पन्न रहने वाला नहीं मान सकते और हमें उसके भीतर सीमाबद्ध रूप में परिचालन करना सिखना होगा। आज विकसित और विकासशील दोनों ही प्रकार के देश पर्यावरण एवं संसाधनों को विविध रूप में अविवेकशील उपयोग के दुष्परिणाम भुगत रहे हैं। समस्त विश्व के अधिकतर देशों ने जो विकास मार्ग अपनाया है उससे पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हुई हैं जो एक ओर वनस्पतियों एवं जन्तुओं के विनाश से लेकर दूसरी ओर वायु, जल एवं मिट्टी के प्रदूषण तक फैली हुई हैं। पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न प्रभाव प्रायः किसी देश—विशेष अथवा क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहते, उदाहरण के लिए वायुमण्डल में कार्बन—डाईऑक्साइड के बढ़ते जा रहे स्तर अथवा ऑजोन परत का हास समस्त वैश्विक समस्याएं हैं। अब सारा विश्व मानने लगा है कि कोई भी विकास प्रतिरूप हो उसे साथ—साथ निर्वाहशील विकास सुनिश्चित करना होगा। जिसका अर्थ इस ग्रह पर रह रही समस्त जीव—सृष्टि के लिए बेहतर जीवन का होना है। यह भी महसूस किया जा रहा है कि पर्यावरण के संरक्षण एवं इसकी सुरक्षा के लिए जो भी प्रयास किए जाएं उनमें मानव समुदाय एवं व्यक्तिगत पहलशक्ति दोनों का अधिक से अधिक सहयोग होना आवश्यक है।

### पर्यावरण सम्बन्धी :

पर्यावरण के प्राकृतिक कारणों से तथा मानव जनित क्रिया—कलापों से निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं और इन परिवर्तनों से पृथ्वी पर विद्यामान जीवन के प्रभावित होने का खतरा है। इनमें से कुछ प्रभाव तो स्थाई और अनुत्क्रमणीय भी हो सकते हैं। इसलिए हम सभी को इस बात की चिन्ता होनी चाहिए कि हम अपने पर्यावरण का प्रबन्धन इस प्रकार करें कि इन परिवर्तनों से सम्बन्धित जोखिम और क्षतियां कम हो जाएं और साथ ही साथ हमारा पर्यावरण आगे की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित बना रहे। हमें अपने—अपने औद्योगिक, कृषि और सामाजिक उप—तन्त्रों को इस प्रकार दुबारा से ढालना पड़ेगा ताकि आने वाले वर्षों में पर्यावरण रहने योग्य बना रहे।

### पर्यावरण स्थिति का मूल्यांकन :

पर्यावरण के संरक्षण और प्रबन्धन में सबसे पहला और सबसे प्रमुख चरण है उससे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना और विभिन्न क्षेत्रों में पर्यावरण के अवक्रमण की विभिन्न प्रकार की किस्मों एवं कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त करना। पर्यावरण अवक्रमण के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित आंकड़ों की उपलब्धता से विभिन्न देशों की सरकारों को नीति मार्गदर्शन तैयार करने में कार्य योजना बनाने में और तकनीकों को आरम्भ करने में मदद मिलेगी ताकि निर्वाहशील विकास के ध्येय को प्राप्त किया जा सके जिससे कि पर्यावरण को पुनर्जीवित किया जा सके।

### पर्यावरण के संरक्षण और प्रबन्धन में आने वाली चुनौतियां :

संयुक्त राष्ट्र ने पर्यावरण के निर्वाहशील विकास और संरक्षण के लिए दुनिया भर के समुदायों के लिए आगामी शताब्दी में पाँच महत्वपूर्ण चुनौतियां बताई हैं जैसे कि जीव—विविधता की हानि, जलवायु परिवर्तन, जल—प्रदूषण, ऑजोन परत का कम होना और भूमि का अवक्रमण।

### चुनौतियों का समाधान करने के लिए विभिन्न उपाय :

समस्त संसार के देशों में भूमि निम्नीकरण को कम करने के प्रयत्न किए हैं क्योंकि इसका सम्बन्ध जैव—विविधता,



जलवायु परिवर्तन और अन्तर्राष्ट्रीय जल संधियों के साथ है, और वे इसे रोकने के लिए अनेक प्रकार के प्रयास कर रहे हैं। इन प्रयासों में उन्नत कृषि पद्धतियां, वन रोपण, पुनर्वनरोपण और वन प्रबन्धन बेहतर जल प्रबन्धन और भूमि के प्रयोग के लिए बेहतर नीतियों को ओर बेहतर बनाना शामिल है।

जैवविविधता संरक्षण के लिए किए गए प्रयासों की सफलता इस बात पर निर्भर करता है कि समग्र समस्या का प्रबन्धन कितनी अच्छी तरह किया गया है। केवल संरक्षण इलाकों का प्रयोग करके किसी एक क्षेत्र में प्रजातियों का संरक्षण संभव नहीं है।

विभिन्न देशों के उद्देश्य इस प्रकार के होने चाहिए ताकि वातावरण में ग्रीन-हाऊस गैस की सान्द्रता उस स्तर तक स्थिर बनी रहे जो जलवायु तन्त्र के साथ खतरनाक मानव-जनिक हस्तक्षेप को रोक सके। इस स्तर को इतने समय के भीतर प्राप्त करना होगा कि पारितंत्र प्राकृतिक जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन कर सकें, यह निश्चित कर सकें कि खाद्य-पदार्थों का उत्पादन कम न हो और आर्थिक विकास निर्वाहशील प्रकार से चलता रहे। विश्व के पर्यावरण परक लाभ इस सीमा तक प्राप्त किया जा सकेंगे कि सभी देशों के उपरोक्त उद्देश्य प्राप्त हो जायें।

विश्व के पर्यावरण लाभों को उसी स्थिति में प्राप्त किया जा सकता है, यदि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं प्राथमिक रूप से एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करें ताकि अन्तर्राष्ट्रीय जलाशयों और उनके विकास में प्रबन्धन में अधिक व्यापक परितन्त्र पर आधारित तरीके से काम किया जा सके। यह आवश्यकता है

कि विभिन्न देश अपने अन्तर्राष्ट्रीय जल तन्त्रों की क्रिया विधि को बेहतर रूप से समझें, इस बात को समझें कि उनके क्रियाकलाप किस प्रकार जल पर्यावरण को प्रभावित करते हैं और उनके उपायों का पता लगाएं जिनसे पड़ोसी देशों के साथ मिलजुल कर कारगार समाधानों को प्राप्त किया जा सके। अतः प्राथमिक रूप से विभिन्न देश अपनी-अपनी क्रियाविधियों में इस प्रकार परिवर्तन करें ताकि मानव क्रियाकलाप विभिन्न क्षेत्रों में चालू किया जा सके और प्राथमिक रूप से पर्यावरण हस्तक्षेप किए जा सके।

पर्यावरण के संरक्षण और सुरक्षा करने के साथ-साथ निर्वाहशील विकास के ध्येय को प्राप्त करने में विभिन्न नीति मार्गदर्शन कार्ययोजनाएं और प्रबन्ध तकनीकें जरूरी हैं। हमें अपनी सभी प्राथमिकताओं और क्रिया-कलापों में पर्यावरण परक मानों को शामिल करना चाहिए। इसमें हमारी अर्थव्यवस्थाओं का प्रतिस्थापन शामिल है। इसमें यह जरूरी नहीं है कि हम अपने उत्पादन को कम करें, बल्कि निश्चय ही उत्पादन और खपत को कुछ भिन्न तरीकों से करना शामिल है।

पर्यावरण और विकास के प्रति हमारी सोच के बीच समाकलन तथा उनके बारे में अपेक्षाकृत अधिक ध्यान के फलस्वरूप मूलभूत आवश्यकताओं, सभी के जीवन-स्तर में बढ़ोत्तरी, बेहतर रूप से सुरक्षित और प्रतिबन्धित पारितन्त्र और एक सुरक्षित एवं अधिक खुशहाल भविष्य की पूर्ति हो सकेगी। कोई भी देश इसे अकेले प्राप्त नहीं कर सकता, लेकिन हाँ एक विश्वव्यापी साझेदारी में मिलजुल कर हम इसे प्राप्त कर सकते हैं।

## शैक : एक असाधारण सहजीवन

श्री संदीप यादव एवं श्री हंस राज शर्मा  
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

यह दोनों सच्चे मित्र हैं, जो एक दूसरे की पूरी मदद करते हैं और साथ मिलकर एक लंबी जिन्दगी जीते हैं। कवक (Fungi) और शैवाल (Algae) की यह मित्रता वैज्ञानिक भाषा में शैक (Lichen) कहलाती है।

### शैक : एक परिचय

शैक एक अकेले जीव नहीं है (जिन अर्थों में अन्य सभी जीव होते हैं), बल्कि यह एक संयुक्त जीव है, जो एक कवक तथा एक या एक से अधिक हरित शैवाल या साइनोबैक्टीरिया (Cyanobacteria) के सहजीवन (Symbiosis) से अस्तित्व में आते हैं। कवक सहजीवी शैक की लगभग 90 प्रतिशत संरचना बनाता है और शैवाल को बाहरी वातावरण से सुरक्षा तथा खनिज व नमी प्रदान करता है। शैवाल प्रकाश संश्लेषण की मदद से भोजन बनाता है और इसी कवक को भी देता है।



शैक थैलस का लंब अनुभाग

कवक और शैवाल का यह अद्भुत सहजीवन शैक को अभूतपूर्व दक्षता देता है और यही कारण है कि शैक उन कठिन वातावरणों में भी स्थापित हो पाते हैं जहाँ पृथक रूप में कवक और शैवाल नहीं मिलते।

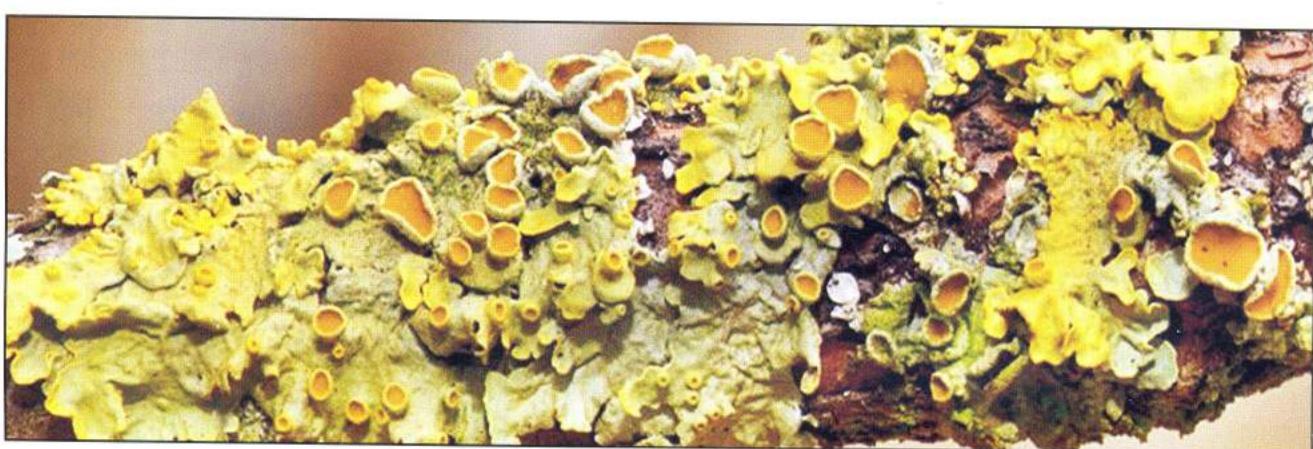
### शैक के विभिन्न वृद्धि-रूप

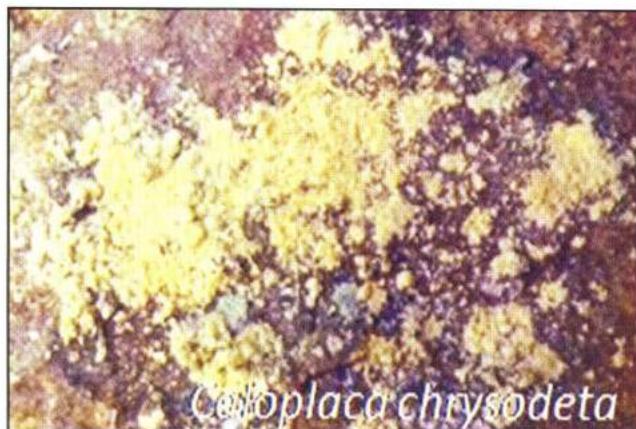
शैक को प्रायः निम्न वृद्धि-रूपों में वर्गीकृत किया जाता है।

- लेप्रोस (Leprose): यह सतह पर बिखरी हुई धूल के जैसे दिखते हैं, उदाहरण – केलोप्लाका क्रायसोडदेटा।
- क्रस्टोस (Crustose): यह सतह से मजबूती से जुड़े होते हैं और उन्हे आसानी से अलग नहीं किया जा सकता, उदाहरण – लेसीडेला इलोक्रोमा।
- स्कुआमूलोस (Squamulose): इनमें शाल्क जैसी पलियाँ होती हैं, उदाहरण – सोरा क्रीनेटा।
- फोलिओस (Foliose): यह पत्ती-जैसे दिखते हैं तथा सतह से ढीले रूप से जुड़े होते हैं, उदाहरण – परमेलिया परलेटम।
- फ्रूटिकोस (Fruticose): यह छोटी झाड़ियों की तरह ऊपर उठते हुए या फिर नीचे की ओर झूलते हुए होते हैं, उदाहरण – असनिआ बारबरेटा।

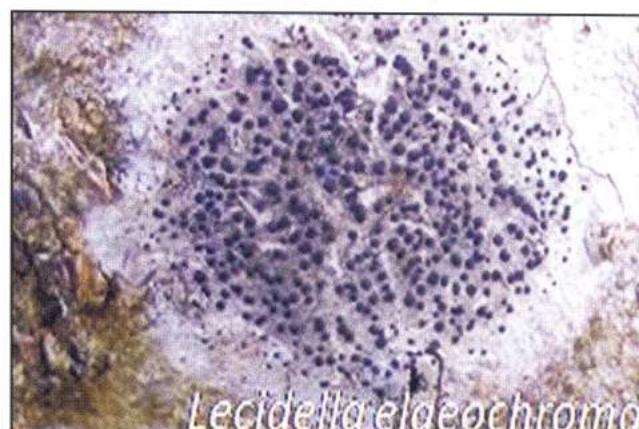
### भारत में शैक विविधता

विश्व में शैक की कुल 20,000 प्रजातियाँ मिलती हैं, जिनमें से लगभग 2300 भारत में पायी जाती हैं। भारत में

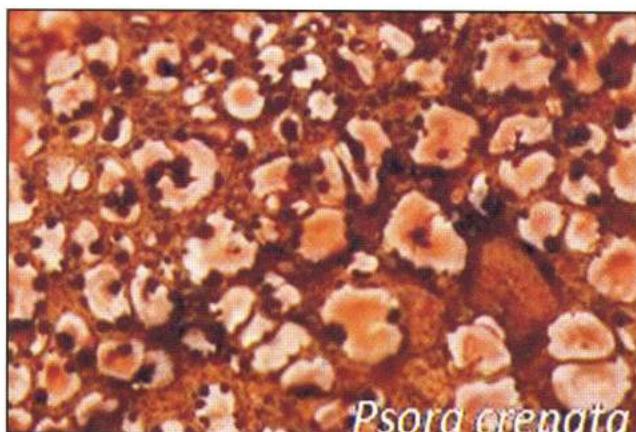




*Colopeltia chrysodeta*



*Lecidella elaeochroma*



*Psora crenata*



*Usnea barbata*



*Parmotrema perlatum*

पारमेलीएसी (Parmeliaceae), गेफिडेर्सी (Graphidaceae), फिसीयेर्सी (Physiaceae), आरथोनिएसी (Arthoniaceae), वलेकानोरेर्सी (Lecanoraceae) परिवार की प्रजातियाँ प्रचुरता में मिलती हैं।

### शैक : वायु प्रदूषण व जलवायु परिवर्तन का सूचक।

शैक समुदाय मानवजनित कारकों से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव की अत्यंत सटीक सूचना देते हैं। शैक अध्ययन से यह पता लगाया जा सकता है कि वनों में, वायु की गुणवत्ता में, और जलवायु में समय के साथ क्या बदलाव आ रहा है। विश्व के बहुत से विकसित देशों में शैक की मदद से पर्यावरण पर निरंतर नजर रखी जाती है। परन्तु भारत में वन प्रबंधकों का शैक की इस उपयोगिता के प्रति उदासीन व अवैज्ञानिक रवैया हैं।

शैक एक सफल सहजीवन का उदाहरण होने के साथ भारतीय वनों के महत्वपूर्ण सदस्य भी हैं। इनकी मदद से वन, वायु, तथा जलवायु की स्थिति का निरंतर मूल्यांकन किया जा सकता है। इसलिए पर्यावरण-सम्बंधी शैक अध्ययन की आवश्यकता है।

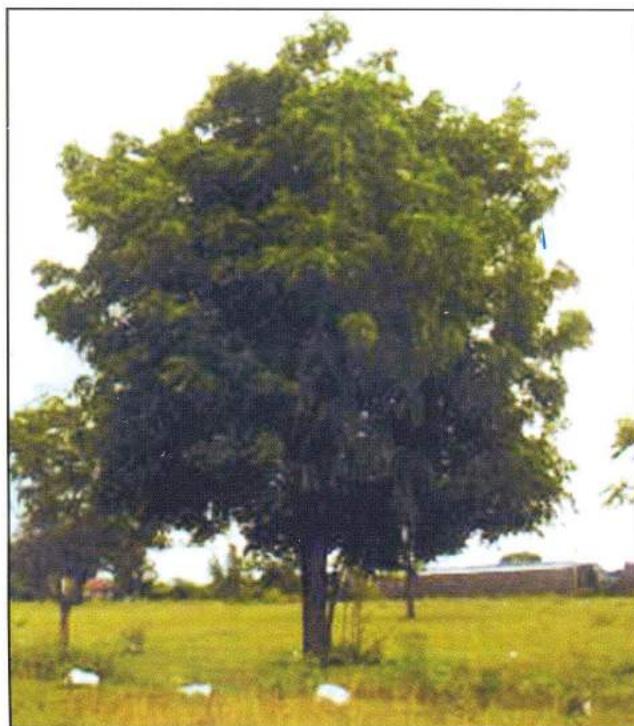
## नीम - सर्व रोग निवारक वृक्ष

श्रीमती मंजु दास  
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

भारतीय संस्कृति में वृक्षों को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। सदियों से वृक्षों का उपयोग मानव द्वारा किया जाता है। कई वृक्षों की भारतीय संस्कृति में पूजा की जाती है, ऐसे धार्मिक तथा बहुपयोगी वृक्षों में मुख्यतः नीम, पीपल, बरगद आदि प्रमुख हैं। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी इन पेड़ों का उल्लेख किया जाता है।

पाठकों आज मैं कुछ जानकारी उपलब्ध कराना चाहती हूँ। नीम को अंग्रेजी में एजडारिकटा इण्डिका (*Azadirachta indica*) कहा जाता है। इस वृक्ष की पहचान भारत से हुई है। आयुर्वेद में नीम को अरिस्ता कहा जाता है जिसका अर्थ शुद्धपूर्ण औषधि है। इसको ग्रामीण औषाधालय भी कहते हैं।

**नीम के लाभ** — नीम को प्राचीन काल से सर्व रोग निवारणी वृक्ष के नाम से जाना जाता है। नीम तेल—नीम का तेल इसके बीजों से निकाला जाता है जो सौन्दर्य प्रसाधनों में उपयोग में लिया जाता है। नीम तेल में भरपूर मात्रा में औषधि बनाने के तत्व उपलब्ध रहते हैं। इसके उपयोग से गाँठों के दर्द, फौंडे, कील मुंहासों से राहत मिलती है।



**नीम पत्तियाँ** — नीम की पत्तियाँ बहुपयोगी होती हैं। इसको उबाल कर पीने से तथा नहाने से विषेले जीवाणु मरते हैं। इसकी पत्तियों के लेप से चिकन पॉक्स, कुष्ठ तथा त्वचासंबंधी रोगों का निदान होता है। इससे मधुमेह रोग को नियंत्रित करने में तथा रक्त संचार, पाचन क्रिया, अल्सर आदि में सहायता करता है। **नीम शाखा** — नीम शाखा का उपयोग हड्डियों तथा दंत मंजन के रूप में किया जाता है। इसको पीसकर खाने से कैंसर रोग से मुक्ति मिलती है। पालतु पशु, पक्षी और जहरेले कीट-पतंग के काटने पर इसका लेप लगाने से राहत मिलती है। दातों को सुन्दर बनाने में सहायता प्रदान करता है। इसके अलावा नीम शाखा अथवा पत्तियों के लेप व खाने से मलेरिया, बुखार, त्वचा तथा एग्जिमा से मुक्ति मिलती है।



**नीम बीज फल** — इसके बीज को निमबोली कहते हैं। इसका स्वाद पकने में मीठा होता है। ग्रामीण बच्चे इसको शौंक से खाते हैं। इसके बीज पशु भी बड़े चाव से खाते हैं। इसके बीज व फल जमीन में गिरकर मिट्टी को उपजाऊ तथा क्षारीय बनाते हैं।

नीम की पत्ती कड़वी होने के कारण इसका उपयोग किसी भी तरह के अनाज, फल, सब्जी को संग्रहित करने में भी किया जाता है। आधुनिक युग में नीम उत्पादक सौन्दर्य-वस्तुयें जैसे— साबुन, दन्तमंजन, क्रीम तथा पाउडर बाजार में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

पाठकों, नीम वृक्ष हमारे जीवन तथा पर्यावरण के लिये अत्यंत आवश्यक है। अगर एक नीम आप अपने घर, गांव तथा शहर में लगाये तो वातावरण ताजा तथा शुद्ध रहेगा, जीवाणु, कीट-पतंग, मच्छरों तथा अन्य रोगों से मुक्त रहेंगे।



## मसाले एवं इसके औषधीय गुण

डॉ. एस.सी. विश्वास, श्री अरबिन्द डेका एवं सुश्री प्रणामी बरुवा  
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

भारत देश प्राचीन काल से ही मसालों के लिए प्रसिद्ध है। देश के विभिन्न भागों में अलग अलग मौसम के साथ ही मसालों की खेती की जाती है। खाद्य से पोषक तत्वों को निकालने और भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए खाद्य में मिश्रण किया जाता है। इन मसालों में उपस्थित रसायनिक पदार्थ में औषधीय गुण पाये जाते हैं और इससे प्राचीन समय से विशिष्ट बीमारियों के इलाज किया जा रहा है। मसालें हमारे दैनिक आहार में अपरिहार्य सामग्री बन गए हैं। इस निवंध में हमारें खाद्य में कुछ मसालों के प्रयोग और इसकी उपयोगिता के बारे में चर्चा करेंगे।

### अदरक (जिन्जीबार आफ़सिनेल), परिवार: जिन्जीबारेसी :

अदरक को सर्दियों में सेहत का सबसे बड़ा खजाना माना जाता है। चीनी विकित्सा पद्धति, आयुर्वेद और पश्चिमी न्यूट्रिशियनिस्ट सभी के अनुसार ठंड के मौसम में अदरक खाना सेहत के लिए बहुत लाभकारी होता है। अदरक में जिंजरॉन, शीगाओल्स और जिंजरॉल्स नाम के तत्व पाए जाते हैं। जिंजरॉल्स से सर्दियों में पाचन तंत्र सही रहता है। यह कैंसर से लड़ने की ताकत भी देता है। चाय में मिलाकर, सुखाकर दूध के साथ या सूप में मिलाकर खाया जा सकता है।

अदरक की जड़ सबसे पहले भारत में पाई गई थी। पांचवीं शताब्दी में हिन्द महासागर और चीन के बीच इसके व्यापार के प्रमाण भी मिलते हैं।



अदरक

### हल्दी (कुरकमा लौंग), परिवार—जिजाबिरेसी :

हल्दी को रोजाना के भोजन में इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन खासकर सर्दियों में इसका सेवन स्वास्थ्यवर्धक होता है। शोधों में हल्दी को कैंसर से लड़ने में कारगर बताया गया है।

हल्दी में कुर्कमिनाइड्स तत्व पाए जाते हैं, इन्हीं से हल्दी को पीला रंग मिलता है। इनसे लिवर डिटॉक्सीफाई होता है। ये कोलेस्ट्रॉल भी कम करते हैं। पहले इसका उपयोग बालों को रंगने में किया जाता था। हजारों साल पहले भारत में इसका इस्तेमाल विकित्सकीय कार्यों के लिए किए जाने के प्रमाण मिलते हैं।

### लौंग (साइजियम एरोमैटिकम), परिवार—मिरठेसी :

इसे सेहत के लिए बहुत लाभकारी माना गया है। यह श्वास संबंधी बीमारियों से बचाती है। इसकी चार ग्राम मात्रा फाइबर की रोजाना की पांच फीसदी जरूरत को पूरा कर सकती है।

लौंग में इयूगेनाल नामक तत्व पाया जाता है। इसी से इसको तीखी खुशबू मिलती है। इससे शरीर में रक्त संचार सुचारू होता है। लौंग में कैपेस्ट्राल की मौजूदगी से ब्लॉड कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित किया जा सकता है।

चाय बनाते वक्त एक या दो लौंग को तोड़कर डाले। इससे तैयार पाउडर का सेवन शहद में मिलाकर भी कर सकते हैं।

### दालचीनी (सिनामोमम वेरम), परिवार—लॉउरेसी :

आयुर्वेद में बहुत—सी दवाएं बनाने में इसका इस्तेमाल किया जाता रहा है। शोधों में यह साबित हो चुका है कि सर्दी के दौरान होने वाली जुकाम की समस्या से निपटने के लिए दालचीनी बहुत अच्छी औषधि है।

दालचीनी में एल्डेहाइड नामक तत्व पाया जाता है, जो इसके रंग के लिए जिम्मेदार होता है। इससे टाइप II डायबिटीज से मुकाबला किया जा सकता है। इससे कफ की समस्या भी कम होती है।



दालचीनी

मीठे और नमकीन खाने में खुशबू बढ़ाने के लिए इसका इसका इस्तेमाल किया जाता है। इसे ब्लैक टी के साथ भी ले सकते हैं।

दालचीनी सबसे पहले 2000 ईसापूर्व में चीन से मिश्र लाई गई थी। चीन में इसे कासिया कहा जाता था।

### लहसुन (एलियम सेटाइवम), परिवार—एमरलेडियेसी :

खाने में शानदार टेस्ट देने के साथ ही लहसुन सेहत के लिए बहुत लाभकारी होता है। ठंड के मौसम में आने वाली सुस्ती को दूर करने के लिए इसका इस्तेमाल किया जा सकता है।

लहसुन में पेटोथेनिक नामक एसिड पाया जाता है। यह शरीर में खराब वैकटीरिया की वृद्धि को कम करता है। इससे ब्लड कोलेस्ट्रॉल से लड़ने की क्षमता बढ़ती है और यह डायबिटीज को भी नियंत्रित करने में मददगार होता है।

### कालीमिर्च (पाइपर नाइग्रम), परिवार—पाइपरेसी :

इसके सेहत से जुड़े फायदों की लिस्ट बहुत लंबी है। लेकिन सर्दियों में छाती में होने वाली जकड़न को कम करने में काली मिर्च बहुत कारगर साबित होती है।

काली मिर्च में पिपरीन नामक तत्व पाया जाता है। इसमें चार से नौ फीसदी तक यह तत्व मौजूद रहता है। इससे छाती में कफ के कारण होने वाली घड़—घड़ाहट कम होती है।

पास्ता, ऑमलेट पर छिड़ककर इसकी बहुत थोड़ी मात्रा ब्लैक टी या कॉफी के साथ भी ली जा सकती है।

सबसे पहले दक्षिण और दक्षिण—पूर्व एशिया में पाई गई। भारत में उपयोग दो ईसा पूर्व के आसपास किया गया।

### तेजपत्ता (सिनामोमाम तमाला) परिवार—लॉउरेसी :

तेजपत्ता भारत, नेपाल, और भूटान के व्यंजनों में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है। यह भारतीय खाना पकाने में और इत्र तैयार करने के लिए प्रयोग किया जाता है। स्वाद और खुशबू दालचीनी की छाल के समान है लेकिन थोड़ा हल्का है। पत्तियों (पूरे पत्ते और पाउडर के रूप दोनों) सूखे



तेजपत्ता

या ताजा उपयोग किया जाता है। तेज पत्ता तेल से लकवा (पेरालाइसिस), मांसपेशियों की दर्द, गठिया (आरथाइटीस) और फ्लू का इलाज किया जाता है। यह विशेष रूप से मुगलाई शैली में बिरयानी और कुर्मा पकाने का एक महत्वपूर्ण मसाला है। काशमीरी व्यंजनों में बड़े पैमाने पर तेजपत्ता का उपयोग किया जाता है। यह नेपाल और भूटान में Tsheringma हर्बल चाय के व्यंजनों का एक अभिन्न हिस्सा है। दोनों ताजा और सूखे पत्ते खाना पकाने में इस्तेमाल किया जाता हैं और एक विशिष्ट स्वाद और सुगंध प्रदान करते हैं। भुना हुआ और जमीन पत्तियां हल्के ढंग से विशेष भारतीय मसाला मिश्रण—गरम मसाला करने के लिए जोड़ते हैं। जमीन पत्ते (ground leaves) पूरी झाई पत्ती से अधिक खुशबूदार हैं।

तेजपत्तों में जीवाणुरोधी, विरोधी कवक, विरोधी भड़काऊ, वातहर, स्वेदजनक, मूत्रवर्धक और कस्तैले गुण हैं। यह विटामिन सी से भरपूर है और तांबा (कोपार), पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीज, लौह, सेलेनियम, जिंक और मैग्नीशियम जैसे खनिज शामिल हैं। यह मधुमेह के उपचार, माइग्रेन, गैस्ट्रिक अल्सर, पेट दर्द, बैकटीरियल और फंगल संक्रमण और उच्च रक्तचाप की इलाज में मदद करता है। यह रक्त की शर्करा का स्तर, नाड़ी गति और रक्तचाप को बनाए रखता है। यह शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली में सुधार करता है। यह जहर के लिए एक इलाज के रूप में काम करता है।

### इलायची (एलेत्तेरिया/एमोमाम कार्दामोमाम) परिवार—जिंजाबिरेसी :

इलायची (या इलायची) अदरक परिवार जिंजाबिरेसी में है। एलेत्तेरिया और एमोमाम दोनों प्रजातियां भारत, पाकिस्तान, नेपाल और भूटान के मूल निवासी हैं। वे उनके छोटे बीज एक पतली, काग़जी, बाहरी कवच, छोटे काले बीज,



त्रिकोणीय पार—अनुभाग और धुरी आकार में से पहचाना जाता है। ग्वाटेमाला भारत के बाद दुनिया में इलायची का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है।

इलायची के दोनों रूप खाद्य और पेय दोनों में स्वाद के रूप में एवं दवा के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इलायची (हरी इलायची) एक मसाला है, इसे चबाने और दवा के रूप में प्रयोग किया जाता है। इलायची एक बेहद खुशबूदार और अद्वितीय स्वाद से भरपूर है। काली इलायची जो कि कड़वी नहीं होती है ठंडक के रूप में कोई कोई इसका उपयोग करते हैं। हरी इलायची वजन के हिसाब से सबसे महंगे मसालों में से एक है, लेकिन स्वाद के लिए थोड़ा ही काफी है। हरी इलायची अक्सर पारंपरिक भारतीय मिठाइयों में और मसाला चाय (मसालेदार चाय) में प्रयोग किया जाता है। काली इलायची कभी कभी करी के लिए गरम मसाला में प्रयोग की जाती है।

हरी इलायची को मोटे तौर पर दक्षिण एशिया में दांतों और मसूड़ों में संक्रमण का इलाज करने के लिए, गले की परेशानियों को रोकने और इलाज करने के लिए, फेफड़े और फेफड़े के क्षयरोग, पलकों की सूजन और पाचन विकार को ठीक करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसे गुर्दे की पथरी और पित्त पथरों को तोड़ने के लिए प्रयोग किया जाता है, सॉप और बिच्छू के जहर दोनों के लिए एक दवा के रूप में इस्तेमाल

किया जाता है। एमोमम एक मसाला के रूप में और भारत के आयुर्वेद में तथा चीनी पारंपरिक चिकित्सा में एक घटक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

### **जीरा (किउमिनाम सिमिनाम) परिवार—एपीयेसी :**

जीरा जड़ी बूटी जीरक के सूखे बीज है। जीरा का मुख्य उत्पादक और उपभोक्ता भारत है। जीरा अपने विशिष्ट स्वाद और सुगंध के लिए एक मसाले के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह विश्व स्तर पर लोकप्रिय है और कई व्यंजनों में एक अनिवार्य मसाला है। जीरा पीस कर या पूरे बीज के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह कुछ अचार और पेस्ट्री में एक घटक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

सूखा जीरा आयुर्वेदिक दवा प्रणाली में औषधीय प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है। जीरा का अर्थ है कि “जो पाचन में मदद करता है”। यह भूख, स्वाद अनुभूति, पाचन, दृष्टि, ताकत, और स्तनपान को बढ़ाने के लिए जाना जाता है। यह बुखार, भूख, दस्त, उल्टी, सूजन और प्रसूतीय विकारों का उपचार करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह हृदय रोग, सूजन, नीरसता, उल्टी, कमज़ोर पाचन शक्ति और लगातार बुखार के लिए फायदेमंद है। इसमें मधुमेह रोधी गुण है। केरल और तमिलनाडु जैसे दक्षिण भारत में जीरा पानी एक लोकप्रिय पेय है।



# प्राकृतिक प्रतिऑक्सीकारक : प्रकृति का वरदान

सुश्री हिमानी पाण्डे, श्री लुत्फुलहक खान एवं श्री वी.के. वार्ष्णेय  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्रतिओक्सीकारक (एन्टीऑक्सीडेन्ट्स) या प्रतिउपचायक वे यौगिक हैं, जिनको अल्प मात्रा में दूसरे पदार्थों में मिला देने से वायुमण्डल के ऑक्सीजन के साथ उनकी अभिक्रिया निरोधित हो जाती है। इन यौगिकों को ऑक्सीकारक निरोधक (ऑक्सीडेशन इनहिबिटर) अथवा स्थायीकारक (स्टेबलाइजर) भी कहते हैं। ये स्वयं ऑक्सीकृत होकर इन दूसरे पदार्थों को ऑक्सीकृत होने से बचाते हैं। प्रतिओक्सीकारकों का प्रयोग वर्तमान समय में उद्योग जगत में बहुलता से किया जाता है। बहुलक उत्पादों (पॉलीमर्स) को विघटन से बचाने, रबर, प्लास्टिक आदि का ऑक्सीकरण रोकने, गैसोलीन का स्वतः ऑक्सीकरण रोकने, कृत्रिम एवं प्राकृतिक वर्णकों को विरंजन/रंगक्षण से बचाने तथा सौंदर्य प्रसाधनों, भोज्यपदार्थों (प्रमुखतः वसायुक्त भोज्यपदार्थों, तेल वनस्पति धी आदि), शीतल पेयों तथा बैंकरी उत्पादों आदि में योजक के रूप में प्रतिओक्सीकारकों का अल्प अथवा अधिक मात्रा में प्रयोग प्रयोग किया जाता है।

वर्तमान समय में औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही प्रतिओक्सीकारकों का प्रयोग चिकित्सा उपचार के लिए भी किया जा रहा है क्योंकि मानव रोगों के उत्कर्ष में ऑक्सीकरण (ऑक्सीडेशन) एक प्रमुख कारक के रूप में उद्घाटित हुआ है। सामान्यतः किसी भी जैविक तन्त्र में प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (रिएविट ऑक्सीजन स्पीसीज़ / आर.ओ.एस.) तथा प्रतिक्रियाशील नाइट्रोजन प्रजातियों (रिएविट नाइट्रोजन स्पीसीज़ / आर.एन.एस.) के निर्माण तथा विघटन के मध्य संतुलन होना चाहिए। ये प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन प्रजातियां जैसे सुपरऑक्साइड ( $O_2$ ), हाइड्रोजन पर ऑक्साइड, हाइड्रोजन मूलक ( $OH^-$ ), नाइट्रोजन ऑक्साइड ( $NO^+$ ), पर ऑक्सीनाइट्राइट ( $ONO^-$ ) तथा हाइपोक्लोरस अम्ल ( $HOCI$ ) आदि शरीर में सामान्यतः होने वाली उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरूप नियन्त्रित मात्रा में बनती हैं, पर कुछ स्थितियों में जब इनका निर्माण अधिकता से होता है तब शरीर के लिए ये हानिकारक हो जाते हैं। इनकी अत्यधिक मात्रा हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, कैंसर, यकृत रोग, ऐलजाइमर, पारकिन्सन रोग, उम्र बढ़ने की बीमारी, गठिया रोग, सूजन, मधुमेह, आर्टियोस्कलेरोसिस तथा एड्स आदि धातक बीमारियों का

कारण हो सकती है। अतः शरीर में होने वाली इन्हीं ऑक्सीकरण अपचयन अभिक्रियाओं को संतुलित रखने हेतु शरीर स्वयं को इन प्रतिक्रियाशील आर.ओ.एस. एवं आर.एन.एस. प्रजातियों से अनेक प्रकार के आंतरिक तथा वाह्य प्रतिओक्सीकारकों को प्रयोग करके बचाता है।

**आर.ओ.एस./आर.एन.एस. के आंतरिक स्रोत—  
माइट्रोकान्ड्रिया, परऑक्सीसोम, इन्प्लामेन्ट्री  
कोशिकाएं**

**आर.ओ.एस./आर.एन.एस. के वाह्य स्रोत—रेडियेशन,  
ओजोन, जीनोबायोटिक्स**

**रक्षा तंत्र—एंजाइमिक (आंतरिक प्रतिओक्सीकारक सुपर ऑक्साइड डिस्यूटेज, कैटालेट, ग्लूटाथायोनिक पर ऑक्साइड)**

**एंजाइम रहित (बाह्य प्रतिओक्सीकारक विटामिन ई, विटामिन सी, ग्लूटाथायोन फ्लेवोनाइड्स)**

ये प्रतिओक्सीकारक प्राकृतिक एवं कृत्रिम दो श्रेणियों में विभाजित हैं। जैसा कि नाम से विदित है प्राकृतिक प्रतिओक्सीकारक वे हैं जो कि प्राकृतिक रूप से हमारे भोज्य पदार्थों में उपस्थित होते हैं, या जिनका निर्माण स्वतः ही हमारे शरीर में होता है तथा कृत्रिम प्रतिओक्सीकारक कृत्रिम रूप से संश्लेषित किए जाते हैं।

इन कृत्रिम प्रतिओक्सीकारकों (सिंथेटिक एन्टीऑक्सीडेन्ट्स) का उपयोग अक्सर भोजन को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखने हेतु डिब्बाबंद उत्पादों में किया जाता है। इनका प्रमुख उदाहरण हैं ब्यूटाइलेट हाइड्रॉक्सी टालूईन (बी.एच.टी.) एवं ब्यूटाइलेट हाइड्रॉक्सी ऐनीसॉल (बी.एच.ए.), किन्तु कैन्सरकारक होने के कारण इनके स्थान पर आजकल प्राकृतिक प्रतिओक्सीकारकों का प्रचलन बढ़ा है। ये प्रमुख्यतः चाय, काफी, चाकलेट, शहद, रेड वाइन, बेरीफलों, फलों, सब्जियों तथा अनाज के फाइबर युक्त भागों में मिलते हैं। ये प्रतिओक्सीकारक अधिकांश कार्बनिक यौगिक जैसे फिनॉलिक पदार्थ होते हैं जो सरलता से हाइड्रोजन परमाणु देकर मुक्त मूलक में परिणित हो सकें और शृंखलित क्रिया (चेन रिएक्शन) का प्रसारण कर सकें। प्रतिओक्सीकारक अपना कार्य करते



समय स्वतः नष्ट हो जाते हैं या स्वतः ऑक्सीकृत होने वाले पदार्थ इनको क्रमशः नष्ट कर देते हैं।

### कुछ प्रतिऑक्सीकारक युक्त भोज्य पदार्थों का विवरण निम्न प्रकार है :

1. **बेरी फल** : रसबेरी, स्ट्रॉबेरी, ब्लू बेरी, ब्लैक बेरी प्रतिओक्सीकारकों का प्रमुख स्रोत है। इनमें प्रोएंथोसाइनिडिन बहुलता से उपस्थित होते हैं, जो कैंसर व हृदय रोगों से रक्षा करते हैं।
2. **गाजर** : ताजी गाजर में अत्यधिक मात्रा में बीटा कैरोटिन उपस्थित होता है जो कि रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है।
3. **हरि सब्जियाँ** : पालक, मेथी, ब्रोकली, ऐस्पैरेगस आदि प्रतिओक्सीकारकों के प्रमुख स्रोत हैं। ब्रोकली में संतरे से भी अधिक विटामिन सी तथा एक ग्लास दूध से भी अधिक कैल्सियम होता है। ब्रोकली अनेक फाइटोन्यूट्रिएन्ट्स सल्फोरॉफेन आदि रोग प्रतिरोधकों से युक्त है जो पोषण से भरपूर हैं। अतः इसका सलाद या भोजन में प्रयोग अत्यन्त लाभकारी है।
4. **टमाटर** : टमाटर में लाइकोपीन नामक प्रमुख ऐंटीऑक्सीडेंट उपस्थित होता है। एक शोध से पता चला है कि लाइकोपीन, विटामिन ई व बीटा कैरोटीन से भी अधिक रोग प्रतिरोधक क्षमता युक्त होता है।
5. **अनाज** : यद्यपि हरी सब्जियाँ अधिक प्रति ऑक्सीकारकों से युक्त हैं किन्तु अनाज भी शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। जौ, जई, गेहूँ, बाजरा तथा मिश्रित अनाज प्रजिओक्सीकारकों के अच्छे स्रोत हैं।
6. **लहसुन** :: लहसुन को प्रमुखतः स्वादक के रूप से प्रयोग किया जाता है, किन्तु यह एक प्रमुख ऐंटीबायोटिक व ऐंटीऑक्सीडेंट भी है। यह उच्च रक्तचाप, कोलेस्ट्राल नियंत्रक, कैंसररोधी तथा ऐंटीफंगल एवं ऐंटीवाइरल के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। लहसुन की एक कली में विटामिन ए, बी, सी, सेलिनियम, आयोडीन, पोटेशियम, आयरन, कैल्सियम, जिंक तथा मैग्नीशियम आदि तत्व उपस्थित होते हैं।
7. **फलियाँ** : जो भोजन सामान्यतः विटामिन ई युक्त होते हैं वे प्रतिओक्सीकारक होते हैं। मसूर, सोयाबीन, मटर दाल, राजमा आदि में उचित मात्रा में विटामिन ई होता है।
8. **ग्रीन टी** : ग्रीन टी में उच्च मात्रा में कैटाचिन पॉलीफिनॉल उपस्थित होते हैं। जो इसकी प्रतिओक्सीकारक क्षमता का प्रमुख कारण है। ये शरीर में अन्य तत्वों के साथ मिलकर वसा के ऑक्सीकरण को बढ़ाते हैं। औसतन एक दिन में तीन कप ग्रीन टी का सेवन बढ़ाते वजन को कम करने में सहायक है। ग्रीन टी का सेवन कैंसर, हृदय रोग तथा उच्च कोलेस्ट्राल स्तर को नियंत्रित करने में भी सहायक होता है।

प्रकृति के ये अनमोल रत्न प्रतिओक्सीकारकों का भण्डार हैं। इसके अतिरिक्त भी कई भोज्य पदार्थ हैं जिनका नियमित व संतुलित उपयोग हमें आरोग्य का वरदान दे सकता है। प्रतिओक्सीकारक अनेक जटिल रोगों के उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः हमें चाहिए कि हम इनका प्रचुर मात्रा में उपयोग करके एक स्वस्थ तथा उत्तम जीवनशैली की ओर कदम बढ़ायें जो दवाओं के बोझ तथा फास्टफूड से कोसों दूर हो।

# सूक्ष्म जीव एवं नियंत्रण

डॉ. के.पी. सिंह  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सूक्ष्म जीव अति लघु, कोषीय, जीवित जीव होते हैं। इन्हें बिना सूक्ष्मदर्शी की सहायता के नहीं देखा जा सकता तथापि, फफूंद के बड़े समूह को बिना सूक्ष्मदर्शी के देखा जा सकता है। भण्डारित अनाज को प्रभावित करने वाले सूक्ष्म जीवों को उनके महत्व के क्रम में निम्नानुसार विभाजित किया जा सकता है।

1. फफूंद
2. जीवाणु
3. खमीर
4. ऐकिटनोमाइसिटीज
5. प्रोटोजोआ (अच्छे खाद्यान्नों में नहीं मिलते हैं)

फफूंद, खमीर और ऐकिटनोमाइसिटीज को पौध साम्राज्य के थैलोफाइटा के अधीन वर्गीकृत किया जाता है। इसके सामान्य विकास के लिए अति महत्वपूर्ण घटक निम्नानुसार हैं :

## खाद्य का स्वरूप, नमी, ऑक्सीजन एंव तापमान

फफूंद द्वारा क्षति का स्वरूप—सूक्ष्म जीवों में सें फफूंद, भंडारों में खाद्यान्नों/बीजों की अधिकतम क्षति के लिए जिम्मेदार होती है। फफूंद से उष्णता, बदबू पैदा होती है, स्वाद में खराबी आ जाती है और जीवन क्षमता को क्षति पहुंचती है। फफूंद कभी—कभी विशाक्त तत्व भी पैदा करती है जिन्हें माइक्रोटाइसन्स नाम से जाना जाता है, जोकि मानव, पशुओं, मुर्गियों आदि के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं।

**फफूंद की विशेषताएं :** फफूंद वलोरोफिल रहित, लम्बी, शाखियाँ, धागे की तरह बारीक तथा आपस में जुड़ी हुई होती हैं और माइसीलिया बनाती है। कवकतंतुओं (हाइफा) के सिरे पर जीव द्रव्य गतिविधि अत्यधिक होती है जहाँ पर आगे लम्बाई बढ़ने के रूप में वृद्धि होती है। इसके पीछे आड़ी दीवारें और प्रजनन ढांचे होते हैं। फफूंद का प्रजनन या तो लैंगिक अथवा अलैंगिक स्वरूप से, बीजाणुओं के माध्यम से होता है। दो कोशिकाओं के सामुज्य के बाद लैंगिक बीजाणु बनते हैं और कोशिकाओं के सामुज्य के बिना ही अलैंगिक बीजाणु बनते हैं। बीजाणु एकाकोशी अथवा अनेक आकारों के बहुकोशी हो सकते हैं।

बीजाणुओं की जीवन क्षमता की अवधि भिन्न-भिन्न होती है। बीजाणुओं के विकास के लिए अनुकूल वातावरण से संबंधित संघटक निम्नानुसार हैं :

1. 12 प्रतिशत से अधिक नमी
2. 30–32° से. तापमान
3. भंडारण से पूर्व अथवा उसके बाद फफूंद/कीटों द्वारा अनाज को प्रभावित की गयी मात्रा का परिमाण।
4. विजातीय तत्वों (धूल, गर्दा, भूसी, तिनके, मिट्टी और अन्य जैव पदार्थ) की मात्रा।
5. आक्सीजन की मात्रा।
6. अनाज की हालत, आदि

सूक्ष्म बीजाणु अंकुरित होकर एक अथवा अधिक कवक तन्तु पैदा करते हैं, जो अनाज और अनाज के पदार्थों में प्रवेश करते हैं। विषाक्त पदार्थ, अन्य जीवाणु, यांत्रिक बाधाएं आदि उनके फैलाव को रोकते हैं।

खाद्यान्नों को प्रभावित करने वाली फफूंद को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

1. खेत की फफूंद
    - (क) आल्टरनेरिया प्रजाति
    - (ख) क्लैडोस्पोरियम प्रजाति
    - (ग) हैलिम्नथोस्पोरियम प्रजाति
    - (घ) फ्यूसेरियम प्रजाति
  2. भंडारण की फफूंद
    - (क) एस्परजिलस प्रजाति
    - (ख) पेनीसीलियम प्रजाति
    - (ग) रायजोपस प्रजाति
- फफूंद की वृद्धि के लिए अपेक्षाकृत अधिक आर्द्धता और अधिक तापमान अनुकूल होता है। अनाज के बाहर पायी जाने वाली फफूंद का निम्नलिखित विधियों से पता लगाया जा सकता है :
1. जब नम स्टॉक का भंडारण किया जाता है, तब अनाज की सतह पर फफूंद की वृद्धि की जांच द्वारा।
  2. क्षतिग्रस्त बीजांकुरों की जांच द्वारा।
  3. माइक्रोस्कोप से अनाज के ऊतकों की जांच करके।
  4. बदरंग क्षतिग्रस्त सिकुड़ा भ्रूण/अनाज की जांच करके।
  5. अनाज को जल से धोकर।



6. धोवन आदि के संवर्धन द्वारा।
7. वसा अम्लता के मूल्यांकन द्वारा।
8. अनाज में तापमान की वृद्धि ( $55^{\circ}$  सें. तक) के द्वारा।

### 3. जीवाणु

जीवाणु भी खाद्यान्नों के लिए हानिकारक होते हैं। खाद्यान्नों में पायी जाने वाली कुछ प्रमुख हानिकारक जीवाणु प्रजातियां निम्न हैं :

सूजोमोनास प्रजाति एंव साल्मोनेल्ला प्रजाति

### 4. खमीर

खाद्यान्नों के हानिकारक खमीर की कुछ प्रजातियां नीचे दी गई हैं :

- |                       |                    |
|-----------------------|--------------------|
| 1. मोनीलिया प्रजाति   | 2. कॉंडिजा प्रजाति |
| 3. फ्यूजीडियम प्रजाति | 4. टोरुला प्रजाति  |

### 5. एकटीनोमाइसीटीज

खाद्यान्नों में सामान्यतया पाए जाने वाले हानिकारक ऐकटीनोमाइसीटीज नीचे दिए गए हैं :

एकअटीनोमाइसीज प्रजाति तथा स्ट्रेप्टोमाइसीज प्रजाति

### नियंत्रण :

**फफूंद** : नमी ही एक ऐसा प्रमुख तत्व है, जिसके कारण फफूंद पैदा होती है। यदि अनाज में मौजूद नमी की मात्रा को सुरक्षित स्तर पर ला दिया जाए तो फफूंद की उत्पत्ति के अवसरों को

न्यूनतम किया जा सकता है। गेहूं और चावल के लिए नमी का सुरक्षित स्तर क्रमशः 12% और 13% है। खाद्यान्नों को धूप में सुखा कर या खाद्यान्न झायरों की मदद से उन्हें सुखाकर नमी को कम किया जा सकता है। सीमित वातन भी फफूंद के विकास को रोकता है।  $23^{\circ}$  सें  $30^{\circ}$  सें. तक तापमान को कम कर देने से भी फफूंद की कई जातियों की वृद्धिदर में कमी होती है।

**जीवाणु, खमीर और ऐकटीनोमाइसीटीज** : जीवाणु, खमीर और ऐकटीनोमाइसीटीज द्वारा एक जैसी क्षति होती है, लेकिन वह फफूंद की तुलना में काफी कम होती है। वे जो क्षति पहुंचाते हैं उसका स्वरूप भी एक-समान होता है और नियंत्रण उपाय भी एक जैसे होते हैं। संक्षेप में, खाद्यान्नों के भण्डारण के दौरान सूक्ष्म जीवों द्वारा क्षति को रोकने के लिए उत्तम तरीका है कि :

- क. भण्डारण से पहले खाद्यान्नों को साफ कर लिया जाए।
- ख. भण्डारण से पूर्व खाद्यान्नों को सुखा लिया जाए और ठंडा कर लिए जाएं।
- ग. खाद्यान्नों का भण्डारण ऐसे पात्रों में किया जाए जहां वर्षा के मौसम में नमी की न्यूनतम वृद्धि होती हो। यदि ऐसा करना संभव न हो तो साफ मौसम में गोदामों का वातन किया जाए।
- घ. ठंडे किए गए अनाज का लंबी अवधि तक अच्छा भण्डारण हो पाता है।

# जस्तिसिया अधाटोडा एल. अधाटोडा वेसिका नीज़

श्री महेन्द्र सिंह  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

कुल नाम : एकेन्थेसी

अन्य भाषाओं में नाम : हिन्दी—वासा, अडूसा, विसौटा, अरुष | अंग्रेजी — मलबर नट | बंगाली — वासक, कन्ड — अडुसोगे, गु.— अलडुसो, तेलगु — अडासारमु, मराठी — अडुल्सा, मलयालम— अतालोताकम्, संस्कृत—बासक, लैटिन — जस्तिसिया अधाटोडा |

वासको वासिका वासा शिंष्डमाता च सिंहिका। सिहांस्यो वाजिदन्तः स्पादाटरुषक, इत्यादि अटरुपो

शनामा सिंह पर्णश्च स स्मृतः | ब्रासको वातकृत्स्वर्यः कफपित्त स्तनाशनः ॥ 84”

तिक्वरस्तुवफो हृद्यो लघुः शीततस्तृडर्तिहत | श्वासकासज्वरच्छदिर्मह कुष्ठक्षया पह ॥ 85”

नाम : वासक, वासिका, वासा, शिषड्माता, सिंहिका, सिंहास्य, वाजिदन्त, आठ रूप, अटरुप, वृष, ताम्र, सिंहपर्ण ये अडूसे के संस्कृत नाम हैं।

यह भारतीय मूल का पौधा है तथा भारत के अलावा श्रीलंका, म्यांमार, चीन और मलेशिया में पाया जाता है। समस्त भारत वर्ष के जंगलों में नैसर्गिक स्वरूप में कम मात्रा में मिलने वाली यह वनस्पति धीरे—धीरे कम होती जा रही है। बीज पकने से पूर्व की गई अप्राकृतिक कटाई जंगल के कटने के साथ इस पौधे की मात्रा भी घटती जा रही है। आयुर्वेद के साथ—साथ इसका उपयोग ऐलोपेथी चिकित्सा में भी तेजी से बढ़ रही है।

यह झाड़ीनुमा 150—200 से.मी. ऊँचा पौधा है। इस पर अनेक शाखाएं — उपशाखाओं का भरपूर होना और प्रत्येक शाखा पर लगी हुई अनेक हरी पत्तियों के कारण यह हमेशा हरा—भरा दिखाई देता है। पत्तियां 10—15 से.मी. लम्बी 2—3 से.मी. चौड़ी अग्रभाग नुकीला, लम्बे वृत्त वाली एवं रोम युक्त रहती हैं। इसके तने पर पीले रंग की छाल होती है। फूल सफेद रंग के गुच्छे में मंजरी के समान 5—8 से.मी. लम्बाई के रहते हैं। फली गोल, 2—3 से.मी. लम्बी चार बीजों वाली रोमावृत्त रहती है। इसमें सात से आठ माह के पौधों पर फूल आते हैं।

गुण : यह लघु, रुक्ष, कसैला, शीतवार्य, रक्तविकार, कड़वा, हृदय को हितकारी, स्वर के लिए उत्तम, खांसी, श्वास, क्षय,

कफ—पित्त विकार, प्रमेह, कोड़, क्षत, कास नाशक है। श्वेत और ताम्र भेद से अडूसा दो प्रकार का होता है। श्वेत पुष्प का वासक क्षुद्र अर्बुक्षकृति चिन्हों से युक्त होता है। पत्र रहित शाखाओं में पत्तों के स्थितिज्ञापक चिन्ह मौजूद रहते हैं। शाखा ग्रंथियां उठी हुई होती हैं। पत्र दीर्घ कुछ चौड़े वृत्त हस्य, पत्राग्र, सूक्ष्म, पत्तप्रान्त, अखंडित, पत्रोदर व पत्रपृष्ठ भसृण होते हैं। अतः इसे सिंहास्य कहा जाता गया है। अधरोष्ठानुकारि दलाग्र भाग में बैंगनी रंग के चिन्ह रहते हैं।

ताम्रवाक्षक भी इसी के समान होता है। केवल इसके पत्तगाढ हरिद्वर्ण के व रथूल व शाखा विशेषतः शाखा ग्रंथियां स्थान—स्थान पर सिन्दूराभ होती हैं। यह श्वेत की अपेक्षा अधिक तिक्त होता है। किन्तु यह कम पाया जाता है। इसके फूलों में से शहद अधिक निकलता है। इसकी जड़ तना व पत्तियां एवं फूल औषधीय प्रयुक्त होता है।

रासायनिक घटक : हरी पत्तियों से प्राप्त तेल में वेसिन नामक अल्कोलाइड मौजूद रहता है। इस अल्कोलाइड से वसीसिन, वसीसिनोन, डिआक्सार्वर्सिन, वसीसिनोल तथा



जस्तिसिया अधाटोडा एल.



मैनोटोन आदि घटक द्रव्य पाये जाते हैं। पत्तियों में राल, शर्करा, रंजक पदार्थ, अमोनिया, तीक्षण क्षार, वासकाअम्ल, गोंद आदि पाया जाता है। फूलों में विटा सिटो – स्टेरॉल ग्लुकोसाइड, कैफेरॉल तथा क्यूरसेटिन होता है।

**प्रयोग :** वासक – कफनि, स्मारक, आक्षेप निवारक व रसायन है। इसके पुष्ट व मूल, शूंठी व सिताव के साथ कम्पज्चर, वात, क्षय, कासजीर्णकास, श्वास एवं अन्यान्स उरोगत श्लेष्म रोगों से सेव्य है। वासक मूल "सैनेगा" की उत्तम प्रतिनिधि है। श्वांसरोगों में शुष्क अदूसे के पत्ते विलम में रख कर धूम्रपान किया जाता है (आर.एन.क्षोरी 564 पृ.)।

फार्माकोपिया इंडिया के रचयिता वर्ग कर्तक डॉ. जैक्सन व डॉ. दत्त के यहां से वासक के अन्दर की रोगहारिणी शक्ति का दृढ़ प्रमाण मिला है। उपयुक्त डॉक्टर क्षय, कास, श्वास, एवं अन्यान्य उरोगत श्लेष्मरोगों में वासक के प्रयोग का उचित फल प्राप्त किए हैं। श्लेष्मरोग, कास एवं यक्षमा के लिए वासा की उपकारिता को जानने के लिए "इंडियन एनलस ऑफ मेडिकल सोसाइटी" 1865 ईसवी के दशम खण्ड 156 पृ. डॉक्टर उदय चन्द्र कर्न्तूक एक रोगी का विवरण अवश्य जान लेना चाहिए। अदूसे के पत्तों का धूमकास श्वास कष्ट को दूर करता है, डॉ. वाट ने इस विषय में बहुत से प्रमाण संग्रह किये हैं। इनके विचारानुसार पंजाब क्षेत्र सतलज के किनारे के कृषक धान के खेतों में वासा के पत्तों को चारों तरफ डाल देते हैं, जो खाद का काम करता है तथा खर पतवार को नहीं जमने देता। प्रमाण द्वारा जाना गया कि वासा पत्र व्याथ, मेंढक, जोंक इत्यादि

जलरिथ्त एवं क्षुद्र जीवों के लिए विषवत है। परन्तु उच्च श्रेणी के जन्तुओं के लिए विष नहीं है।

अदूस के पत्ते, जड़, फूल तथा छाल औषधीय उपयोग में लाई जाती है। पत्तियां तथा जड़ें कफ-पित नाशक होने से सर्दी जुकाम, खांसी, श्वास, अरथमा, कफ, दमा, गले के रोग (श्वासनतंत्र), प्रमेह, गंडमाला, बदहजमी आदि में उपयोगी हैं। इसके अलावा मूत्र रोगों, स्त्रियों को मासिक धर्म नियमन, गर्भपात रोकना, श्वेत प्रदर, अम्लपित, कोढ़ क्षय, वलवर्धन तथा हृदय के लिए हितकारी, पीलिया और ज्वर रोधन हेतु उपयोग में लाई जाती हैं इसके प्रयोग से फेफड़े में जमा कफ निकालने में, पेचिस, सिर दर्द आदि दूर होते हैं। जड़ तथा तने की छाल खांसी, स्पलीन, पेटकृमि, नेत्र विकार तथा जख्म पर मलहम के रूप में उपयोगी होती है। फूल रक्त संचारण, रक्त साफ करने, हृदय रोग तथा अंख की बीमारियों में उपयुक्त होते हैं।

डॉ. आर. एन. दत्त का कथन है रक्त और श्वेत भेद से वासा दो प्रकार का होता है। रक्त वासक अधिक लाभदायक है। इसके पत्ते का धूम कास श्वास कष्ट दूर करता है। छाल चूर्ण 10–20 ग्राम मात्रा जीर्णकास एवं खांस के लिए उत्कृष्ट कफनिस्सारक है। मूल चूर्ण मलेरिया ज्वर में दिया जाता है। पत्रस्वरस उदर रोग व रक्तातिसार में प्रयुक्त होता है। इसके पुष्ट में कासधनीशक्ति है।

प्रस्तुत लेख में वनस्पति विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य, जानकारियों एवं भारतीय ग्रंथों का संकलन हिन्दी भाषा में ज्ञान कराने हेतु लेखक का आशय जनहित को जागृत करने का है।



## केदारनाथ आपदा जून, 2013 : एक आकलन

डॉ. लक्ष्मी रावत  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

उत्तराखण्ड में 16 तथा 17 जून 2013 को हुई जल प्रलय को भले ही सरकार दैवीय आपदा मान रही हो लेकिन अधिकतर पर्यावरणविद्, वैज्ञानिक, योजनाकार अपने लेखों, नियमित स्तम्भों, चर्चाओं में इस त्रासदी के लिये अकेले प्रकृति को जिम्मेदार नहीं मानते क्योंकि यह आपदा प्रकृति से कहीं अधिक मानव जनित आपदा है। घटते वन क्षेत्र, पहाड़ों पर अनियोजित, अत्यधिक निर्माण, पर्यटन को आकर्षित करने हेतु कुकुरमुत्तों की तरह होटलों का निर्माण, अवैध व अवैज्ञानिक खनन, नदियों के बहाव क्षेत्रों पर अतिक्रमण आदि के संयुक्त दुष्परिणाम के रूप में यह विभीषिका उत्तराखण्ड के समस्त पर्वतीय भागों ने इस वर्ष जून माह में कई स्थानों पर बादल फटने की घटनाओं के रूप में झोली।

हिमालयी क्षेत्रों में बादल फटने की घटनायें पिछले कुछ वर्षों में अपवाद न रह कर प्रतिवर्ष घटने वाली सामान्य घटनायें होने लगी हैं। वैशिक जलवायु परिवर्तन जनित गलोबल वार्मिंग के कारण मानसून चक्र का अनियमित होना, तथा प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि सामान्य बात होने लगी है। बादल फटने की घटनाएं आकस्मिक होती हैं, जिसमें एक सीमित क्षेत्र में बहुत तेज वर्षा (जिसकी तीव्रता 100 मिमी प्रति घंटा) होती है। बादल फटने की घटनाओं की पुनरावृत्ति को वैशिक जलवायु परिवर्तन से भी जोड़ा जा रहा है। तापमान में वृद्धि से वाष्णन में वृद्धि के फलस्वरूप बादलों में जल की मात्रा बढ़ जाती है तथा यह भारी बादल संघटित होकर अत्यधिक वर्षा एक ही स्थान पर कर देते हैं। अत्यधिक पानी से भरे बादल हिमालयी घाटियों में काफी नीचे आ जाते हैं तथा हवा का प्रवाह थमने से भारी वर्षा करते हैं।

### हिमालयी क्षेत्रों में वनावरण की स्थिति :

यद्यपि 16–17 जून 2013 को केदारनाथ क्षेत्र में जो कुछ हुआ उसका घटते वनावरण से कोई सीधा संबंध नहीं दिखता वह तो 4000 मीटर से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित एक ताल के फटने से हुआ। फिर भी हिमालयी आपदा को वनों के अन्धाधुन्ध विनाश से भी जोड़कर देखा जा रहा है। भारतीय वन सर्वेक्षण की रिपोर्टों के आंकड़े बताते हैं कि पश्चिमी हिमालयी राज्यों में वन क्षेत्रों में पिछले दशक में कमी नहीं हुई, अपितु उनमें वृद्धि ही अंकित की गयी है। जम्मू एवं कश्मीर,

हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड के वर्ष 2001 तथा 2011 के वनावरण के क्षेत्रफल निम्न हैं:

हिमालयी राज्य	वर्ष 2001 (वर्ग किमी)	वर्ष 2011 (वर्ग किमी)
हिमाचल प्रदेश	14752	38,300
जम्मू एवं कश्मीर	23452	27,800
उत्तराखण्ड	24386	21,410

यद्यपि उपरोक्त तालिका वन क्षेत्र में वृद्धि दर्शा रही है, परन्तु इन प्रदेशों के सघन वनों में सम्भवतः कमी हो रही है। आधिकारिक तौर पर हिमालयी क्षेत्रों में वन के कटान पर प्रतिबंध है, तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार ने तो चिपको आन्दोलन के चलते 1981 से ही हिमालयी क्षेत्र में 1000 मीटर से ऊँचाई वाले स्थानों पर वन पातन पर रोक लगा दी थी, फिर वनाग्नि, प्राकृतिक आपदायें, व अवैध पातन से कुछ वन क्षेत्रों का ढास हो सकता है और हो रहा है।

### हिमालयी क्षेत्रों में अनियोजित विकास :

विशेषज्ञ, पर्यावरणविद्, भूगर्भवेत्ता बार–बार यह आग्रह करते रहे हैं कि हिमालयी पर्वत शृंखलाएं अपेक्षाकृत कच्ची उम्र की हैं, इनके पहाड़ कच्चे हैं, यहां का पारिस्थितिकी तंत्र अति संवेदनशील एवं भंगुर है, इसके बावजूद इन पर्वतों की भार वहन क्षमता का सही आंकलन नहीं किया गया तथा नियोजित एवं अनियोजित दोनों तरह से हिमालयी क्षेत्रों में तेजी से विकास हो रहा है। नियोजित विकास के रूप में हिमालय से निकलने वाली प्रमुख नदियों पर बड़े-बड़े बांध तथा अनियोजित विकास के रूप में प्रमुख नदियों के किनारे बरसे शहरों में बेतहाशा वृद्धि, इस तथाकथित हिमालयी 'सूनामी' के लिए जिम्मेदार हैं। इस आपदा में यदि सम्पत्ति का सर्वाधिक नुकसान हुआ है तो वह नदियों के किनारे अनियोजित रूप से बने भवनों का हुआ है, जो पिछले 20–30 वर्षों में नदियों के किनारे बनाये गये थे। उत्तराखण्ड हिमालय से निकलने वाली कई प्रमुख नदियां अलकनन्दा, नन्दाकिनी, विष्णुगंगा, मन्दाकिनी, पिंडर, गंगोत्री से भागीरथी, सब मिलकर देवप्रयाग से 'गंगा' का रूप लेती है। यमुनोत्री से यमुना तथा इसकी सहायक नदी टोंस है, जिसकी दो सहायक नदियां रुपिन एवं सूपिन हैं। उत्तराखण्ड में चार धाम यात्रा मार्ग पर बसे लगभग



सभी प्रमुख शहर इन नदियों के किनारे बसे हैं तथा इन्होंने ही सबसे अधिक तबाही इस 'सूनामी' से झेली।

### नदी फैलाव क्षेत्र (रीवर फलड प्लेन) अतिक्रमण :

किसी भी नदी का फैलाव क्षेत्र (फलड प्लेन) प्राकृतिक फैलाव क्षेत्र है, किसी भी विकास गतिविधि से पहले नदी के प्राकृतिक फैलाव क्षेत्र के अधिकार को महत्व दिया जाना चहिए। केन्द्रीय जल आयोग लगातार राज्य सरकारों को यह आग्रह करता आ रहा है कि नदियों के फैलाव क्षेत्र की अवधारणा को क्रियान्वयन हेतु कार्यवाही की जाय। केन्द्र सरकार द्वारा सभी राज्यों को 'रीवर फलड प्लेन जोन' विधेयक का मसौदा बिल 1975 में भेजा गया था किन्तु राज्य सरकारों ने फलड प्लेन प्रबंधन तथा प्रस्तावित विधेयक को कोई महत्व नहीं दिया, केवल मणिपुर एवं राजस्थान ने इस पर विधेयक पारित किया। गोविंद घाट, हेमकुण्ड साहिब, रुद्रप्रयाग, उत्तरकाशी तथा केदार घाटी में मन्दाकिनी के तट पर बसे कर्खों की क्षति नदियों के फलड प्लेन जोन का आंकलन, मैंपिंग तथा उचित प्रबंधन न होने का ही दुष्परिणाम है।

### मौसम सूचना तन्त्र का अभाव :

बादल फटने की घटनाएं सीमित इलाके में होती हैं, अतः इस दिशा में त्वरित जानकारी के आधार पर लोगों को समय रहते चेतावनी दी जाने की आवश्यकता है। इस कार्य हेतु 'डोप्लर मौसम राडार' उपयुक्त यंत्र है, जो कि समय पर सम्भावित बादल फटने की घटना की चेतावनी दे सकते हैं। भारत सरकार के जलवायु विज्ञान विभाग द्वारा पूरे देश में इस तरह के 14 राडार स्थापित किये गये किन्तु खेद की बात है कि उत्तराखण्ड में जहां पिछले कई वर्षों से लगातार बादल फटने की घटनाएं हो रही हैं एक भी राडार स्थापित नहीं किया गया।

### लगभग यही हाल उच्च हिमालयी क्षेत्रों में स्थित मौसम :

प्रेक्षणालयों का भी है। भारत मौसम विज्ञान का पूरे देश में प्रेक्षणालयों का नेटवर्क है, यहां मौसम के दैनिक आंकड़े एकत्र होते हैं तथा इन्हीं के आधार पर देश की जलवायु का दीर्घकालिक आंकलन होता है। भारत मौसम विज्ञान विभाग द्वारा 2010 में प्रकाशित 1861–1990 तक की अवधि के जलवायवीय सामान्य मानों के लिये विभाग के विस्तृत नेटवर्क के अंतर्गत 435 प्रेक्षणालय उपलब्ध हैं। हिमालयी तथा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में इन प्रेक्षणालयों की स्थिति नगण्य है। अधिकतर प्रेक्षणालय समुद्र तल से 500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हैं। निम्न तालिका में इनकी भौगोलिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है:

समुद्र तल से ऊँचाई	प्रेक्षणालयों की संख्या
0–500	342
501–1000	57
1001–1500	15
1501–2000	13
2001–2500	7
2501–3000	1
> 3001	शून्य

3000 मीटर से अधिक ऊँचाई पर विभाग का एक भी प्रेक्षणालय नहीं है। 2501–3000 मी की ऊँचाई पर केवल 1 प्रेक्षणालय है। यह सम्भव है कि उच्च हिमालयी क्षेत्रों में स्थित कुछ स्थानीय अनुसंधान संस्थान यह आंकड़े एकत्र करते हों परंतु उनका सूचना तत्र मौसम विज्ञान विभाग से जुड़ा नहीं लगता।

हिमालयी क्षेत्रों में मौसम विज्ञान प्रेक्षणालय का समुचित नेटवर्क भी किसी आपदा के पूर्वानुमान में सहायक हो सकता था। भारत सरकार के विज्ञान और टेक्नोलॉजी विभाग द्वारा वर्ष 2003 में PROBE कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था, जिसके अंतर्गत 10,000 विद्यालयों में मौसम सम्बन्धी आंकड़ों को एकत्र करना था, योजना के पाइलट के रूप में प्रथम चरण में उत्तराखण्ड सरकार के शिक्षा विभाग के समन्वय से यह कार्यक्रम उत्तराखण्ड के 100 स्कूलों में कार्यान्वित होना था, दुर्भाग्यवश कुछ समय बाद, यह कार्यक्रम आगे न चल सका। इन विद्यालयों से एकत्रित आंकड़े मौसम सम्बन्धी जानकारी तथा उनके विश्लेषण में मील का पत्थर साबित हो सकते थे। इस योजना का उद्देश्य ही विद्यार्थी, वैज्ञानिक तथा स्थानीय कर्मियों का नेटवर्क स्थापित कर पर्वतीय विकास हेतु सूचनाओं का आदान–प्रदान करना था।

देश के हिमालयी राज्यों का दुर्भाग्य ही है कि मौसम विज्ञान से संबंधित दीर्घकालिक सूचनाओं का अभाव है तथा त्वरित सूचना तंत्र भी विकसित नहीं है। इन क्षेत्रों में मौसम प्रेक्षणालय लगभग नगण्य हैं वहां मौसम प्रेक्षणालयों के नेटवर्क की आवश्यकता है, ताकि इस तरह की आपदा का पूरा अनुमान हो सके व आगे की कार्य योजनाओं को स्वरूप देने में मदद मिल सके।

उल्लेखनीय है कि उड़ीसा में 1999 में भीषण चक्रवाती तूफान में लगभग 10,000 लोगों की जान गयी। तटीय क्षेत्रों में आ रहे चक्रवाती तूफानों के पूर्वानुमान तथा सटीक जानकारी के लिए मौसम विभाग द्वारा अत्यधिक प्रणालियां स्थापित की गयी फलस्वरूप 2013 में उड़ीसा में आया चक्रवाती तूफान,



1999 के तूफान से भी अधिक शक्तिशाली होने के बावजूद केवल 20 लोगों की जान गयी। इसी प्रकार उच्च हिमालयी क्षेत्रों में जहां पिछले कई वर्षों से बादल फटने की घटनाओं में वृद्धि हो रही है, डालर मौसम राडार तथा स्वचलित मौसम प्रैक्षणालय के तंत्र से इस अतिवृष्टि की समय पर जानकारी मिल सकती थी।

रामबाड़ा में 16 जून, 2013 की शाम को बादल फटा, केदारनाथ में 16 जून की शाम को तथा 17 जून, 2013 की सुबह प्रलयकारी बाढ़ आई, त्वरित सूचना तंत्र के अभाव में समय रहते घाटी के निचले स्थानों को चेतावनी नहीं भेजी जा सकी तथा समय पर बचाव व राहत कार्य भी नहीं किये जा सके, अन्यथा जान व माल की हानि को कम किया जा सकता था।

### हिमालयी वन व उनकी पर्यावरणी सेवायें :

प्रचुर वन संसाधन इन हिमालयी क्षेत्रों के जीवन के मुख्य आधार हैं, विकास के नाम पर इन वनों के कटान के फलस्वरूप भूस्खलन व बादल फटने की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए सरकार ने 1980 के दशक में वन संरक्षण कानून बनाया। सुप्रीम कोर्ट ने हिमालयी क्षेत्रों में जंगल पर आधारित उद्योगों को हटाने और उन्हें नियंत्रित करने के निर्देश दिये। पिछले दशकों में वनों की स्थिति में आई गिरावट के कारण अधिक वन क्षेत्र वाले राज्यों की आमदनी घटी है। इन वनों की जैव विविधता घटी है व मृदा क्षरण की गति बढ़ी है। उत्तराखण्ड के वन विशेष रूप से इन नियोजित व अनियोजित विकास कार्यों से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। यह सर्वविदित है कि ये वन भारत के सर्वाधिक उपजाऊ कृषि क्षेत्र (गंगा का मैदानी क्षेत्र) के लिए कितने उपयोगी हैं, इस दृष्टि से भी इनका संरक्षण, संवर्धन अत्यन्त महत्वपूर्ण व समय की मांग है।

देश में वनों की पारिस्थितिकीय सेवाओं के मूल्यांकन के लिए कुछ विशेषज्ञों ने कार्य किये हैं, इस पर और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। एक अध्ययन के अनुसार उत्तराखण्ड के वनों का कार्बन प्रथकरण का आंकलन 3.5 अरब रुपये प्रति वर्ष आंका गया है। एक अन्य अध्ययन के अनुसार वनों को संरक्षित करने से ₹. 4.8 करोड़ रुपये मूल्य के बाबर का कार्बन 1991–2001 के बीच उत्तराखण्ड में जमा हो गया था। दुनिया के पारिस्थितिकीय सेवाओं के आंकलन के हिसाब से हिमालय के वन 1000 अरब रुपये प्रति वर्ष के हिसाब से कार्बन सेवाएं देते हैं।

उत्तराखण्ड के वन जो मैदानी क्षेत्रों को उपजाऊ मृदा, पानी व अन्य पारिस्थितिकीय सेवाएं दे रहे हैं उनको

संरक्षित करने के लिए उत्तराखण्ड को प्रतिपूर्ति या अनुदान राशि या प्रोत्साहन राशि उपलब्ध कराने की अत्यन्त आवश्यकता है। कुछ विकासशील देश जैसे मैक्रिस्को, कोस्टारिका, इक्वाडोर और चीन ने भी वनों की पारिस्थितिकी सेवाओं के लिए प्रतिपूर्ति या अनुदान/प्रोत्साहन राशि का प्रावधान रखा हुआ है, जो इन वनों को संरक्षित/सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 13वें वित्त आयोग ने 'ग्रीन बोनस' के रूप में हिमालयी राज्यों को कुछ धन राशि दी है, जिसकी निरन्तरता सुनिश्चित करनी होगी व उत्तराखण्ड सहित अन्य हिमालयी राज्यों को पूरी ईमानदारी से इस 'राशि' को वन क्षेत्रों की देखरेख, उनके संरक्षण, संवर्धन में लगानी होगी, तभी हिमालयवासी व निचले मैदानी क्षेत्रों के लोग इन वनों की पर्यावरणीय सेवाओं का लाभ ले सकेंगे।

हिमालय में लगातार होने वाली इन आपदाओं से बचाने के लिये आवश्यक है कि एक मजबूत मौसम सूचना तंत्र स्थापित किया जाय ताकि अत्याधुनिक उपकरणों से युक्त सुदूर क्षेत्रों में होने वाली अप्रत्येकित मौसमी घटनाओं की समय पर जानकारी मिल सके। पूरा हिमालय देश की प्रमुख नदियों का उदगम स्थल है। प्रत्येक नदी के "फ्लड प्लेन ज़ोन" का निर्धारण हो तथा उस क्षेत्र में किसी प्रकार का कोई पक्का निर्माण कार्य न हो। हिमालय में ऊर्जा हेतु कई नदी घाटी परियोजनायें चल रही हैं, कुछ प्रस्तावित हैं। प्रत्येक परियोजना की स्वीकृति से पूर्व उसका पर्यावरण प्रतिघात आंकलन होता है। इस रिपोर्ट की स्वीकृति के समय उसकी पर्यावरण प्रबंधन योजना का सख्ती से अनुपालन होना; चाहिये तथा एक संस्था द्वारा इसका मूल्यांकन होना चाहिये। हिमालयी क्षेत्रों के वनों द्वारा दी जा रही पर्यावरणीय सेवाओं को केन्द्र सरकार/योजना आयोग ने भी स्वीकारा है तथा हिमालयी राज्यों को ग्रीन बोनस के रूप में कुछ विशेष धनराशि भी दी जा रही है। इस राशि का उपयोग हिमालयी क्षेत्रों में पर्यावरण एवं वन प्रबंधन में स्थानीय निवासियों की सहभागिता से प्रयोग हो।

उत्तराखण्ड में पर्यटन प्रबंधन अपने आप में बड़ा गम्भीर विषय है। दूररथ हिमालयी क्षेत्रों में तथा चार धाम यात्रा मार्गों पर पारिस्थितिकी अनुकूल पर्यटन को प्रोत्साहन देना होगा, स्थानीय लोगों एवं मार्गों में पड़ने वाले गावों की सहभागिता पर आधारित नयी पर्यटन नीति पर विचार महत्वपूर्ण होगा। उपरोक्त विषयों पर एक बार पुनः चर्चा हिमालय वासियों की सहभागिता से हो अन्यथा आने वाले समय में हमें हिमालय तथा उससे होने वाले पारिस्थितिकीय लाभों से वंचित होना पड़ सकता है।



## नवप्रवर्तनशील प्रौद्योगिकियों की दुनिया

सुश्री अंशु गग

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

आज का युग सूचना और प्रौद्योगिकी का युग है। विश्वभर में विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकियां विकसित की जाती हैं। इन प्रौद्योगिकियों को कई विख्यात वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकीविदों या बड़े-बड़े संस्थानों द्वारा विकसित किया जाता है जिसमें काफी लागत लगती है तथा इन प्रौद्योगिकियों को समाज का सम्पन्न वर्ग ही प्रयोग में ला सकता है। इसी क्रम में भारत के भी कई वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकीविदों ने विभिन्न प्रौद्योगिकियां विकसित की। लेकिन कहते हैं कि आवश्यकता से ही आविष्कार होते हैं। इस तथ्य को सही सिद्ध किया है भारत के छोटे-छोटे और दुर्गम स्थानों में रहने वाले ग्रामीण किसानों, कारीगरों इत्यादि ने जिन्होंने यह साबित किया है कि भारत के ग्रामवासी भी अनेक बाधाओं के बावजूद अपने श्रम, दृढ़ इच्छा शक्ति से नई नई प्रौद्योगिकियां विकसित कर सकते हैं जिनसे उनको काम करने में सहायता मिलती है और वो उनकी आय का साधन भी बनती है। ऐसी ही नवप्रवर्तनशील प्रौद्योगिकियों को विकसित करने वाले लोगों को हम 'प्रवर्तक' कहते हैं। पिछले कुछ वर्षों से इन प्रवर्तकों द्वारा काफी रोचक प्रौद्योगिकियां विकसित की गई जैसे Washing-cum-exercise machine, Floating toilet soap, paddy thresher इत्यादि। यहीं नहीं संकर (Hybrid) सज्जियों की भी नई—नई प्रजातियां तैयार की गईं। यह सब प्रौद्योगिकियां न केवल उनकी आमदनी का साधन बनीं अपितु इससे उनका एवं उनके गांव, प्रदेश, राज्य का नाम का भी रोशन हुआ।

इन प्रवर्तकों की कला को, इनके द्वारा विकसित की गई प्रौद्योगिकियों के महत्व, को समझा, राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान, भारत, ने। इसी प्रतिष्ठान द्वारा वर्ष 2010 से जनसाधारण प्रवर्तकों द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों की प्रदर्शनी का आयोजन किया जाता है। यह प्रदर्शनी राष्ट्रपति भवन में आयोजित की जाती है जिसका उद्देश्य सिर्फ यह होता है कि जनसाधारण प्रवर्तकों द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों को ऐसा मंच मिले जिससे वह लोग अपनी अद्भुत एवं नवप्रवर्तनशील प्रौद्योगिकियों को दुनिया के सामने ला सकें। इसी प्रतिष्ठान द्वारा साधारण किसानों, कारीगरों, ग्रामीणों इत्यादि द्वारा विकसित नवप्रवर्तनशील प्रौद्योगिकियों के लिए राष्ट्रीय स्तरीय प्रतियोगिता का आयोजन भी किया जाता है ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग इनके द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों के बारे में जाने और उनका लाभ उठा सकें।

ऐसी ही कुछ प्रौद्योगिकियों का विवरण इस प्रकार है :

### 1. पैडी थ्रेशर (Paddy thresher)

यह उपकरण मोहम्मद फैजलूल हाक द्वारा बनाया गया है। वे असम के रहने वाले हैं। उन्होंने यह देखा कि धान की खेती करना कितना मुश्किल होता है। धान की खेती में धान



की फलियों में से धान को अलग करने की प्रक्रिया में बहुत समय और श्रम लगता है। उनके इस उपकरण से धान को फलियों से आसानी से अलग किया जा सकता है। उनके द्वारा विकसित इस थ्रेशर की मदद से बरसात के समय भी आसानी से धान को फलियों से अलग किया जा सकता है। यह थ्रेशर को 5 एच.पी. की इलेक्ट्रोनिक मोटर की मदद से चलाया जा सकता है, इसकी लागत भी कम है और इस थ्रेशर को चलाने के लिए केवल 2 व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

### 2. पानी में तैरने वाला साबुन (Floating soap)

इस अद्भुत साबुन का निर्माण श्री सी.ए. वेंकट द्वारा किया गया जो केरल में रहते हैं। उन्होंने यह देखा कि गांव में लोग नदियों, तलाबों में स्नान करते हैं और कभी कभी हाथ से साबुन फिसल जाने के कारण वह पानी में डूब जाता है। इस परेशानी से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने अनोखे तरीखे से पानी में तैरने वाला साबुन बनाया। साबुन की कमदेपजल को पानी की कमदेपजल से कम करने के लिए अलग—अलग नए तरीके का इस्तेमाल किया गया जिससे यह साबुन पानी में तैर सके।



## 6. टमाटर की हाईब्रिड प्रजाति

बांगाखाला की रहने वाली श्रीमती गीता मौर्या द्वारा टमाटरों की हिमशिखर और अविनाश जैसी प्रजातियां विकसित की गई हैं। वे खुद टमाटरों के बीज से हिमशिखर, अविनाश की दो और 3 प्रजाति के टमाटर की पौध तैयार करती हैं। किर उन्हें पॉलीहाउस में उगाती हैं। इससे उनकी लगभग 30,000.00 प्रति महीना तक की आमदनी होती है।

## 7. टिण्डे की पारम्परिक प्रजाति



जयपुर, राजस्थान का किर समुदाय पिछले 35 वर्षों से पारम्परिक तरीके से टिण्डे की प्रजाति को उगाती है और उसका संरक्षण भी करती है। इस प्रजाति का टिण्डा बहुत मुलायम, ज्यादा स्वादिष्ट और गोल आकृति का एवं हल्के हरे रंग का होता है। इसका वजन कटाई के समय 100 से 200 ग्रा. होता है। इसकी उपजाऊ बेल 40 से 50 इंच लम्बी होती है। जयपुर और उसके आसपास के इलाकों में इस प्रजाति का टिण्डा 'शाहपुर टिण्डा' के नाम से प्रसिद्ध है।

## 8. इलायची की उच्च प्रजाति

केरल के एक छोटे से किसान ने 'wonder cardamom' के रूप में एक बड़ा अजूबा किया है। यह किसान श्री साबू

वार्धस है। उन्होने इलायची की ऐसी प्रजाति विकसित की है जो सूखा प्रतिरोधक है और जो रबर की खेती के साथ भी हो सकती है। उन्होने इस प्रजाति को ऐसी जगह उत्पन्न किया है जो "non-cardamom" के नाम से प्रसिद्ध है।

## 9. फूलगोभी की नई प्रजाति

यह प्रजाति श्री प्रतीक द्वारा विकसित की गई जो राजस्थान के रहने वाले हैं। इस प्रजाति की फूलगोभी का वजन 15 कि.ग्रा. तक होता है। यह बीमारी प्रतिरोधक प्रजाति है और इस प्रजाति पर कीटों का प्रभाव कम पड़ता है। इसके पौधे की ऊँचाई 3 से 4 फीट तक होती है। इसके तने की मोटाई 1.5 से 2.5 इंच का होती है और इसकी पत्तियों का आकार 1.5 से 2 फीट चौड़ा और गोलाकार होता है। यह वर्ष में तीन बार पैदा होती है।

## 10. मिर्च की सुधारित प्रजाति

यह सुधारित मिर्च प्रजाति श्री बलवान सिंह द्वारा विकसित की गई जो हरियाणा के रहने वाले हैं। इस मिर्च प्रजाति की विशेषता यह है कि इस मिर्च का आकार बड़ा है और इस मिर्च में गर्मी और आर्द्रता को सहने की क्षमता है। यह मिर्च अपने चटकीले रंग की वजह से सबको अपनी ओर आकर्षित करती है।





# थार प्रदेश का दुर्लभ जीव पीवणा सांप (*Bungarus flaviceps*)

डॉ. एस.आर. बालोच एवं डॉ. अशोक गाड़ी  
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

भारत का उत्तरी पश्चिमी मरुस्थलीय भाग एवं पाकिस्तान के सिंध एवं पंजाब मरुस्थलीय भाग मिलकर ग्रेट इण्डियन डेजर्ट का निर्माण करते हैं जिसे थार मरु-थार प्रदेश कहते हैं। राजस्थान में इस भाग को थली के नाम से जाना जाता है, इस भाग में वर्षा की वार्षिक विषमता पायी जाती है अर्थात् वर्षा अनियमित या न्यून मात्रा में होती है। जिसके कारण यहाँ की भूमि पठरीली, बंजर एवं रेतीले धोरों से आच्छादित है। कृषि योग्य भूमि दानेदार कंकर वाली (ग्रेवल) तथा खुली चट्ठानों से युक्त सूखे गारे तथा मुल्तानी मिट्टी वाली होने के कारण अन्न उत्पादन अल्प मात्रा में होता है।

वार्षिक तापमान – 2 डिग्री से. से 49 डिग्री तक चला जाता है, हवा की गति तीव्र होती है। गर्मी के दिनों में धूलभरी आधिया चलती है जिसे स्थानीय भाषा में 'लू' कहते हैं। रेत के टीलों का विस्तार एक स्थान से दूसरे स्थान पर इसी कारण होता है।

मरुस्थल की इस विकट परिस्थितियों में भी प्रकृति ने विविधता लिये हुए सुंदर थार-जन्तुओं से सजाया है। थार मरुस्थल के जीव मुख्यतः पैलियार्टिक एवं ओरीयेन्टल शाखाओं से विकसित होकर यहाँ के वातावरण के अनुसार अनुकूलित हो गए हैं। इन जीवों में श्रवण शक्ति, भोजन के लिए शिकार करने की शक्ति, शत्रुओं से रक्षा की शक्ति, विषम वातावरण के अनुरूप ढल गए हैं।

थार मरुस्थल में सभी प्रकार की सर्प जातियां नागराज, धामिन, गेहूंअन पायी जाती हैं। इनके अतिरिक्त बहुचर्चित और विचित्र विशेषताओं वाला 'पीवणा सांप' पाया जाता है। इन सभी सांपों का भोजन जर्बिल तथा चूहे होते हैं।



बुंगरस फ्लाविसेप्स

पीवणा सांप को लाल सूची की श्रेणी में रखा गया है।

## वर्गीकरण

- |                        |                      |
|------------------------|----------------------|
| फाईलम                  | — कोर्डेटा           |
| सब फाईलम               | — रू वर्टिब्राटा     |
| श्रेणी                 | — रेप्टेलिया         |
| फेमेली                 | — ईलापिएडी           |
| वंश                    | — बुंगरस             |
| प्रजाति                | — फ्लाविसेप्स        |
| अंग्रेजी नाम           | — (Red-headed Krait) |
| स्थानीय नाम (लोकल नाम) | — पीवणा सांप         |

बुंगरस फ्लाविसेप्स मुख्यतः दक्षिण-पूर्व एशिया, मलेशिया, भारत, बांग्लादेश, सुमात्रा और बोर्नियों में पाया जाता है।

पीवणा शब्द शुद्ध मारवाड़ी राजस्थानी भाषा का है जिसका अर्थ होता है पीने वाला। पीवणा राजस्थान की मरुभूमि में पाया जाने वाला एक विशेष प्रकार का सांप है, जो करीब 4–5 फुट आकार का मटमैला रंग प्रायः बालू रेत सा रंग का तथा इस पर काली बड़ी धारियां सी बनी होती हैं। इसका पेट सफेद तथा फन लाल स्पॉट सिकुड़ा हुआ तथा पूँछ लाल रंग की होती है, चमड़ी रबड़ की तरह होती है जिसमें यह रेतीली भूमि में सरक कर भाग जाता है। यह सांप वजन में हल्का होता है तथा काटता नहीं है। नींद में सोये हुए व्यक्ति की छाती पर बैठकर उसकी नाक व मुँह में अपनी जहरीली सांस छोड़ता है। गमन करते समय मनुष्य परं अपनी पूँछ का प्रहार कर जाता है, जिससे मनुष्य जाग जाता है। वह पींवणा सांप को देखकर चिल्ला उठता है कि उसे पीवणा पी गया ऐसी घारणा है। इस डर (मानसिकता) के कारण व्यक्ति मर जाता है। प्राणि शास्त्री सचिन राय के अनुसार पींवणा सांप जहरीला नहीं होता है। पींवणा सांप प्याज की दुर्गन्ध को सहन नहीं कर पाता है अतः इससे बचने के लिए स्थानीय लोग प्याज का सेवन करते हैं।

स्थानीय लोग इस सांप को चौर भी कहते हैं। सांपों को लेकर स्थानीय लोगों में अंधविश्वास एवं मान्यताएं प्रचलित हैं फिर भी पर्यावरणीय पारिस्थितिकी अनुकूलन की दृष्टि से सांपों द्वारा कीटों, दीमकों एवं जीवाणुओं को खाने से जैव संतुलन बना रहता है।



## आपदा आमंत्रण-आपदा निवारण

श्री विजय जड़धारी

इंदिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार से सम्मानित अनुसंधान सलाहकार समिति, व.अ.सं के सदस्य

उत्तराखण्ड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में हाल ही में आई आपदा से सारा देश चिंतित है। इस आपदा ने कुछ क्षेत्रों का भूगोल बदला तो आपदा का नया इतिहास भी रच डाला। आपदा में हुई जन-धन की हानि का सही-सही अंकड़ा ना तो उजागर हुआ है, न भविष्य में इसकी साफ-साफ तस्वीर सामने आने की सम्भावना है, लेकिन अकेले केदारधाटी में 16 / 17 जून 2013 को 10 हजार से अधिक लोगों का जिन्दा दफन होना निसंदेह भयभीत करने वाला है।

1. जलवायु परिवर्तन और बदलता मौसम
2. डाइनामाइट से भारी विस्फोट करना
3. सड़कों की अवैज्ञानिक प्रौद्योगिकी
4. बाँध / जल विद्युत परियोजनाओं का अंधाधुंध निर्माण
5. नदियों के किनारे अव्यवस्थित व अवैध निर्माण
6. पहाड़ों व नदियों में वैध / अवैध खनन
7. पारंपरिक जीवन पद्धति को नकारना

जलवायु परिवर्तन और धोखा देता मौसम हिमालयी क्षेत्र की एक बड़ी समस्या है। जो लोग दैवी आपदा या हिमालयी सुनामी कह कर इस आपदा के लिए प्रकृति के ऊपर सारा दोष मढ़ते हैं, उनका ज्ञान हिमालय व यहाँ के जनजीवन के बारे में बहुत कमजोर है। बादल, बारिश एवं नदियाँ आदि अवश्य दैवीय हैं किंतु एक साथ एक ही इलाके या एक ही जगह पर भारी बारिश होना, कभी सूखा पड़ना, या गलेशियरों का टूटना या नंगा होना बिल्कुल भी दैवीय नहीं है। यह सब वैशिक जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहा है, इसमें हमारा योगदान इतना है कि शिव की एकांत स्थली केदारनाथ एवं उच्च हिमालय जहाँ पहले पक्षी भी निर्भीक होकर विचरण करते थे, वहाँ पर हमने प्राकृतिक जंगल काटकर कंकरीट के जंगल खड़े कर दिये और हजारों मोटर-गाड़ियों व हैलिकप्टरों का मजमा लगा दिया है।

हिमालयी क्षेत्र की जलवायु और मौसम को पढ़ने के लिए हम यदि बुजुर्गों के पास जायें तो पता चलता है कि तीन चार दशक पूर्व यहाँ इससे भी ज्यादा बारिश होती थी, फर्क सिर्फ इतना है तब एक मानसून था अकेले एक स्थान पर नहीं अपितु

सब जगह खूब वर्षा होती थी, अधिक वर्षा से बाढ़ नहीं आती तो भला अंग्रेजी के अक्षर 'V' आकार की धाटियों कैसे बनती ? नदियों व खालों की बाढ़ के कारण ही तो ये 'V' आकार की धाटियाँ बनी हैं। बड़ी नदियों के अलावा यहाँ हजारों गैर बर्फनी नदियाँ हैं, और ये नदियाँ लोगों की आजीविका का मुख्य आधार हैं, क्योंकि इनसे सिंचाई की गूले निकाल कर लोग अपने खेतों को हरा भरा करते हैं।

उत्तराखण्ड के लोग मानसून को चौमासा यानी चातुर्मास कहते हैं। पहले चार महीने आषाढ़, सावन, भाद्रपद, व आश्विन में इससे भी ज्यादा बारिश होती थी। सावन के महीने को अधियारा महीना कहते थे, न दिन में सूरज निकालता था, न रात में चांद तारे। एक तारा दिखाई दिया तो कहते थे एक बिस्था अनाज कम हो जाता था। जितनी ज्यादा बारिश हो जाय अच्छा माना जाता था, बाढ़ भी अच्छी मानी जाती थी, क्योंकि बाढ़ के साथ गाद यानी रेत बजरी नहीं होती थी।

शरद काल में भी तीन या चार महिने बारिश होती थी। मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक खूब बारिश और बर्फ पड़ती थी। जहाँ पहले 2-3 फुट बर्फ पड़ती थी, आज वहाँ बिल्कुल भी बर्फ के दर्शन नहीं होते हैं। नयी पीढ़ी ने अपने गांव में बर्फ नहीं देखी हैं, कितना आश्चर्य जनक परिवर्तन हो रहा है मध्य हिमालयी इलाकों में ? यहाँ की अच्छी जलवायु, अच्छी बारिश व अच्छी बर्फ के कारण यहाँ के किसान एक जमाने में खाद्यान्न और जंगली फल-फूल व सब्जियों की उपज के कारण सम्पन्नता और खुशहाली के शीर्ष पर थे। चारों तरफ सुख शांति और समृद्धि थी। इसकी जानकारी गढ़वाल के इतिहास और हिमालय गजेटियर के लेखक एटकिंसन व अन्य अंग्रेज लेखकों के ग्रन्थों में देखी जा सकती है। तब देश के लोग बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री व यमनोत्री की पैदल यात्रा करते थे, चटियों में बसेरा करते थे, मन्दिरों के आस पास बसना सिद्धपीठों में वर्जित था।

जहाँ तक दैवी आपदा का सवाल है भूकम्प को एक हद तक दैवी आपदा कहा जा सकता है और उत्तराखण्ड इसके लिए अति संवेदनशील है। यह अधिकांश हिस्सा खतरनाक जोन 5 में पड़ता है। यहाँ भूकम्पों का इतिहास निश्चित तौर पर बड़ा खतरनाक रहा है। 1803 में उत्तराखण्ड में खतरनाक



भूकम्प आया था, जिसमें यहाँ की लगभग 80 प्रतिशत आबादी खत्म हो गई थी। भूकम्प से टूट चुके गढ़वाल राज्य को नेपाल ने आक्रमण कर जीत लिया। 12 वर्ष तक यहाँ नेपाल के गोरखा शासकों का शासन रहा। तब यहाँ न तो बहुमंजली ईमारतें थीं न बांध—बैराज, न टनल, न सड़कें। आज यदि ऐसा भूकम्प आता है तो कल्पना करें कितनी तबाही होगी? आज मानव निर्मित भूकम्प बुलाने के लिए टिहरी बांध जैसी झीलें भी तैयार कर ली गई हैं।

भूकम्पों की यह श्रृंखला अभी जारी है। 1991 में उत्तरकाशी में आये भूकम्प से लगभग 1 हजार जाने गयी थी, भारी जन-धन की हानि हुई थी। 1995 व 1999 में फिर चमोली व अन्य क्षेत्रों में भूकम्प से जन-धन की हानि हुई। हमारे आपदा प्रबंधन की कागजों में बड़ी तैयारियां होती हैं, किन्तु आपदा के बक्त यह प्रबन्धन गायब हो जाता है। कहीं भी आपदा हो प्रबन्धन कारगर साबित नहीं हुआ और हाल ही में आयी आपदा ने तो इसकी पूरी पोल खोलकर रख दी है। यह बात पक्की है कि भविष्य में और बड़ी आपदायें आ सकती हैं, इसलिए आपदा प्रबन्धन का पूरा ढांचा बदलना होगा।

## डाइनामाइट के धमाके

पिछले दस पन्द्रह सालों में सड़क, बाँध परियोजनाओं व अन्य निर्माण कार्यों के लिए हजारों टन डाइनामाइट सामग्री का उपयोग किया गया है। हिमालय की पहाड़ियां इतनी संवेदनशील हैं कि यदि एक पटाका भी फोड़े तो उसकी आवाज दूसरी पहाड़ी तक पहुंच कर नई आवाज पैदा करती है। आसमान में जब परीक्षण के लिए फौजी जहाज बम फोड़ते हैं तो घरों में कम्पन होता है। लेकिन यहाँ बाँध परियोजनाओं की टनल व सड़क निर्माण के लिए भारी से भारी विस्फोटकों का इस्तेमाल किया गया है। इसकी अनुमति भी कहीं से ली गयी है या नहीं, यह संदेह में है। बाँध परियोजनाओं में टनल बनाने के लिए डाइनामाइट का दुष्प्रभाग किसी भी सुरंग आधारित जल विद्युत परियोजनाओं में देखा जा सकता है। सुरंग के आस-पास ही नहीं अपितु दूर तक के कोई घर ऐसे नहीं जो क्षितिग्रस्त न हों। विस्फोट के समय धरती पर दरारें पड़ जाती हैं, और बारिश होने पर इन दरारों पर पानी का रिसाव होता है, जिससे भूस्खलन व भूक्षरण होता है और बाढ़ आती है, फिर तबाही होती है। टिहरी बांध के टनल के धमाकों से जमीन इतनी कमजोर हो चुकी है कि जीरो ब्रिज से होकर देव प्रयाग व अन्य क्षेत्रों को जाने वाली सड़क हर वर्ष भूस्खलन से बरसात में बन्द रहती है। भविष्य में यह सड़क पूरी तरह बन्द भी हो सकती है। इसी कारण आज सारा ट्रैफिक टिहरी बांध के ऊपर चल रहा है। भिलंगना व प्रताप नगर ब्लाक के लोगों ने दूरी घटाने की दृष्टि से जब बांध के ऊपर की सड़क

को मुख्य सड़क बनाने की मांग की तो सुरक्षा के बहाने उन्हें अनुमति नहीं दी गई।

निसंदेह डाइनामाइट पहाड़ों के लिए बहुत खतरनाक है। निर्माण कार्यों में डाइनामाइट के प्रयोग से अनेकों जल स्रोत भी सूख जाते हैं। लेकिन निर्माण कार्यों में लगी कम्पनियाँ और ठेकेदारों को इसमें सुविधा है, इसलिए इतनी बड़ी आपदा के बाद भी पुनः निर्माण कार्य के लिए लो.नि.वि. व बी.आर.ओ बेतहाशा डाइनामाइट के धमाकों को नहीं रोक रहे हैं। डाइनामाइट के धमाकों को रोकने के लिए निर्णय लिया जाना जरूरी है। डाइनामाइट के विकल्प ढूँढ़े जाने चाहिए।

## सड़के जीवन रेखा, लेकिन काल क्यों?

निसन्देह सड़कें पहाड़ की जीवन रेखा हैं, क्योंकि यहाँ पर न तो रेलवे लाइन है न आम आदमी हवाई सेवा का उपयोग कर सकता है। ले-देकर सड़क ही परिवहन का साधन है, किन्तु सड़क निर्माण की पुरानी तकनीकी तब इतनी खराब नहीं थी जब मानव श्रम से सड़क बनती थी, आज जे.सी.बी., डाइनामाइट और अन्य भारी मशीने आ गई हैं, जो पल भर में धरती माँ को लहु-लुहान कर भारी मलवा उधेड़ लेती है, सच्चाई से रिसर्च कर देखें तो पता लगेगा की सड़कों के कारण पिछले कुछ दशकों से लाखों नहीं करोड़ों टन मलबा (मिट्टी, पत्थर, रोड़ी) नदियों, गधेरों, जंगलों और खेतों में डाला गया है। जिसके कारण तबाही हुई है। एक कि.मी. सड़क बनाने के लिए लगभग 30 लाख रु. खर्च होते हैं, फिर भी सड़क बनाने का तरीका देखिए—सड़क के एलाइन्मेंट के लिए किसी भूगर्भ वैज्ञानिक व पर्यावरण के जानकारी की मदद नहीं ली जाती, इंजीनियर, ठेकेदार और राजनेता विकास के नाम पर सब जगह हावी रहते हैं। सड़क विकास है या सुविधा यह भी समझने वाली बात है।

सड़क निर्माण की अवैज्ञानिक/असफल प्रोटोगिकी ने ही पहाड़ की जीवन रेखा सड़क को काल बना दिया है। सैकड़ों सड़कें ध्वस्त पड़ी हैं या एक दूसरे के ऊपर उनका मलबा पड़ा है। आपदा के समय एक लाख से अधिक लोगों को जगह-जगह इंजीनियरों की बनायी सड़कों ने ही तो फँसाया है, और यहाँ के ग्रामीण तो आज भी परेशानी में हैं, यदि सड़कों का निर्माण गुणवत्ता से होता और उनका ढाल, नालियां व नारदाने ठीक होते तो इतनी सड़कों ध्वस्त नहीं होतीं, चाहे हाइवे हो या आम सड़क कहीं भी नालियों व नारदानों की देखभाल नहीं होती है। सब जगह नालियां व नारदाने बंद रहते हैं।

तबाही रोकने के लिए जरूरी है कि सड़क निर्माण की तकनीकी बदली जाय। सड़क कटाव से जितना मलवा



निकलता है उसका उचित स्थान पर निरस्तारण किया जाय। धरती के काटे गये हिस्से पर ऊपर व नीचे से मजबूत पुस्ते/दीवारें बनायी जाये, वहाँ पर घास, झाड़ियाँ व वृक्षारोपण साथ-साथ किये जाय वे सभी तरीके अपनाये जाये जिससे घायल धरती माँ के घाव भर सकें। धरती के साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक जीवधारी के साथ होता है—उदाहरण के लिए किसी मानव की सर्जरी करने पर डाक्टर उसके चीरे गये भाग पर टांके लगाकर मरहम पट्टी और दवा लगाते हैं ऐसे ही, धरती का संरक्षण, संवर्धन करने से 90 प्रतिशत से अधिक सड़कों को भूस्खलन की समस्या से बचाया जा सकता है। कठोर चट्टानें काटने के लिए नई तकनीकी युक्त कटर मशीनों से पहाड़ काटे जा सकते हैं और जरुरत पड़ने पर छोटी-छोटी टनल ड्रिल विधि से बनाकर सड़क निर्माण की नई तकनीकी विकसित की जा सकती है। इसके साथ ही धरती का कटाव अधिक पुलों के निर्माण से रोका जा सकता है।

नारदाने, नालियाँ की सफाई को व्यवस्थित रखने एवं मलबे को हटाने के लिए प्रति आठ दस कि.मी. पर सड़क सुरक्षा, दस्ता बारह महीने तैनात रहना चाहिए। इस दस्ते की मुख्य जिम्मेदारी सड़क की सफाई, नालियाँ और नारदाने का सुधार करना होना चाहिए। सड़क निर्माण व रख रखाव के ठोस मानक होने चाहिए। मानक का उल्लंघन करने वाले अधिकारियों व ठेकेदारों को दण्डित अवश्य करना चाहिए।

### बाँध/जल विद्युत परियोजनायें महाकाल क्यों?

हिमालय कितना संवेदनशील है, यह बात वैज्ञानिक बार-बार अपने दर्जनों स्थापित अध्ययनों से करते आ रहे हैं, इसके बावजूद उत्तराखण्ड में 558 से अधिक बाँध/बैराज और छोटी बड़ी जल विद्युत परियोजनाओं पर काम चल रहा है। अनेकों योजनायें बन चुकी हैं और डेढ़ दर्जन से अधिक परियोजनायें निर्माणकर्ताओं की गलती से हाल में आई आपदा के कारण नष्ट भी हो गई हैं।

केदारनाथ और केदार घाटी हाल की आपदा के कारण सबसे अधिक चर्चा में है। सबसे ऊँचाई से तीखे ढाल में बहने वाली मन्दाकनी नदी कई नदियों की तरह कम्पनियों के कब्जे में है। रामबाड़ा जो 'जिन्दा लाशों का दुनिया का सबसे बड़ा कब्रिस्तान' बन गया है, यहाँ पर लैंको नामक कम्पनी 76 मेगावाट की रामबाड़ा जल विद्युत परियोजना चला रही थी और इसी के समीप सीतापुर में कम्पनी की दूसरी परियोजना फाटा-ब्यूंग का बैराज बन चुका था और फाटा तक 8-10 कि.मी. की सुरंग के पावर हाउस आदि बन गये थे। आगे ब्यूंग तक लगभग 18 किमी सुरंग बन रही थी। शेरसी व खड़िया सहित

दर्जनों गांव में यह तबाही देखी जा सकती है, इन गांवों के नीचे से टर्नल गुजरती है। इस परियोजना की हवाई दूरी केदारनाथ से 1.5 (डेढ़ कि.मी.) के लगभग है। पहाड़ियाँ आपस में जुड़ी हैं, दर्जनों गांवों के स्थानीय लोग बताते हैं कि टर्नल निर्माण के लिए कम्पनी ने भारी से भारी डाइनामाइट के धमाके किए। फलस्वरूप उनके घर क्षतिग्रस्त हुए। जब धमाके होते थे तो पूरे पहाड़ हिलते थे। जब केदारनाथ के आस-पास की पहाड़ियों पर बसे गांव हिले हैं तो यह भी निश्चित है कि केदारनाथ के समीप चौराबाड़ी ताल व ग्लेशियर भी इन धमाकों से हिले होंगे, जिसके फलस्वरूप यहाँ भयावह तबाही हुई। इसकी उच्चस्तरीय भूगर्भीय जांच करायी जा सकती है।

16-17 जून 2013 को केदारनाथ से जब मन्दाकनी में बाढ़ आयी तो सीतापुर में लैंको कम्पनी के बांध, बैराज में बाढ़ का पानी रुक गया। लाखों करोड़ों क्यूसैक पानी उसमें जमा हुआ, टनल में भी बाढ़ का पानी घुसा लेकिन बहती गाड़ियों व मलबे से टनल बंद हो गयी और एक बड़ी झील सोन प्रयाग तक बन गयी फलस्वरूप सीतापुर व सोन प्रयाग की जीती जागती बस्ती, दुकानें, होटल व सड़कों में खड़े सैकड़ों वाहन बह गये। सोन प्रयाग, सीतापुर, चन्द्रापुरी, अगरस्तयमुनि और आगे श्रीनगर तक भारी तबाही हुई। कुंड के समीप एल.एण्ड.टी. कम्पनी की सिंगोली- भटवाड़ी परियोजना के कारण मन्दाकनी घाटी में और अधिक तबाही हुयी। आँखों देखा सच यह है कि बांध निर्माण कम्पनियों ने भारी डाइनामाइट के विस्फोट किये ही थे साथ ही सुरंग व अन्य निर्माण का लाखों टन मलबा भी नदी में डाला, जिसने आग में धी का काम किया।

अलकनन्दा की सहायक विष्णु गंगा पर जेपी कम्पनी की विष्णु गंगा प्रयाग योजना बन गयी। जेपी कम्पनी ने अधिक बिजली के लालच में अपने बाँध/बैराज में पहले बाढ़ का पानी भरने दिया और क्षमता से अधिक पानी जमा होने पर अचानक बैराज भी टूट गया, इससे बाढ़ ने प्रलय का रूप लिया फलस्वरूप हेमकुंड, गोविन्द घाट, लामबगड़, विष्णुप्रयाग व आगे श्रीनगर तक भारी तबाही हुई। श्रीनगर की बरितयों व वहाँ के सरकारी संस्थानों को डूबाने में जी.वी.के. कम्पनी की श्रीनगर जल विद्युत परियोजना भी इसी तरह सीधे-सीधे जिम्मेदार है, कोई भी इस त्रासदी को देखकर समझ सकता है।

राज्य में नदियों घाटियों और उच्च हिमालयी क्षेत्रों में तब से ज्यादा संकट आया है जब से सुरंग आधारित जल विद्युत परियोजनाओं की बाढ़ आयी है। एक अनुमान के अनुसार यहाँ पर प्रस्तावित बांधों की सुरंगों की लम्बाई 1,800 कि.मी तक है और 225 कि.मी. सुरंगे अब तक खोदी जा चुकी हैं। अनुमान



लगाई इनसे कितना मलबा निकला होगा वह सब नदियों में ही डाला गया है। आने वाले समय में भारी बारिश भूस्खलन व भूकम्प आदि की घटनायें बढ़ेगी। वर्तमान ढांचे के भरोसे रहना है। अब आपदा की पूर्व सूचना प्रणाली नये ढंग से विकसित करनी होगी, बांधों का आपदा प्रबंधन तो हमारे सामने फेल हो गया है। इसलिए जरुरी है आपदा बुलाने और आपदा बढ़ाने वाले कार्यों को ही रोका जाय।

आज आपदा के कारण पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार थोड़ी गम्भीरता से हिमालय के पारिस्थितिकीय तंत्र के बारे में विचार करने लगा है किन्तु इसे और गहराई से आगे बढ़ाने और कठोर कदम उठाने की आवश्यकता है क्योंकि दर्जनों जल विद्युत निर्माता कम्पनियां ऐसी हैं जिन्होंने पर्यावरण मंत्रालय के आदेशों का कहीं भी पालन नहीं किया है।

बाँध एवं जल विद्युत परियोजनाओं के लिए पहाड़ की छोटी-बड़ी नदियाँ बड़ी कम्पनियों के हाथ बेची जा रही हैं, जिसके फलस्वरूप यहाँ के मूल निवासियों के जीवित रहने के प्राकृतिक और मौलिक अधिकार छीने जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ परियोजनायें बनी हैं वहाँ के लोगों को आज बड़े संकट का सामना करना पड़ रहा है। टिहरी बाँध प्रभावित कई गाँवों का अब तक सही पुनर्वास नहीं हो पाया और जो गाँव झील के किनारे हैं, वे एक ज़माने के 'काले पानी' की सजा भुगत कर परेशानी में जीवन काट रहे हैं, इसलिए आवश्यक है कि नदियों को बहने दिया जाय, उनका प्राकृतिक स्वरूप जीवित रहे, उस पर किसी प्रकार की अनावश्यक छेड़-छाड़ न की जाय, यदि नदी के सीधे प्रवाह से बिजली बन सकती है तो जन समुदाय द्वारा ही सहकारिता के आधार पर परियोजनायें बनायी जानी चाहिए, अथवा सरकार अपने संसाधनों से इन परियोजनाओं का निर्माण करें।

## खनन

खनन पहाड़ के लिए भारी अभिशाप है। 1980 के दशक तक देहरादून और मसूरी की पहाड़ियों में जो चूना पत्थर खनन हुआ उसके घाव अभी तक भरे नहीं हैं। तब यहाँ एक सौ से अधिक खानें थीं। यदि यह खनन अब तक जारी रहता तो महाविनाश होता। लेकिन तब जन आंदोलन व सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के तहत खनन पर रोक लगी, किन्तु अब भी पिथौरागढ़ और बागेश्वर के कुछ हिस्सों में खड़िया खनन के नये पट्टे, टिहरी गढ़वाल के कटाल्डी गांव की वन पंचायत की भूमि / वन भूमि में अवैध पट्टा चूना पत्थर खनन के लिए दिया गया है। जो सर्वोच्च न्यायालय के 12.12.1996 के गांदा वर्मन फैसले का सीधा सीधा उल्लंघन है।

नदियों में खनन वैज्ञानिक ढंग से बिना नदी को प्रभावित

किया जाना चाहिए और उससे प्राप्त राजस्व का उपयोग हिमालय के उस हिस्से के लिए किया जाना चाहिए जहाँ से यह भूस्खलन, भूरक्षण व बाढ़ के कारण नदियों के द्वारा बहा कर ले जाया गया है। तभी हिमालय बचेगा वरना हिमालय तेज गति से उजड़ता जायेगा और माफिया मालामाल बने जायेंगे। नदियों के किनारे अव्यवस्थित व अवैध निर्माण के कारण ही इस आपदा में मृतकों की संख्या बढ़ी। अब पुनर्निर्माण में भवन निर्माण के लिए सही जगह का चयन होना चाहिए और स्थानीय पारंपरिक शिल्प व ज्ञान के आधार पर या नई तकनीक का उपयोग कर भूकम्प या अन्य आपदा से बचाव के लिए मजबूत घर बनने चाहिए। जैसे इस आपदा और पिछले भूकम्पों में भी पुराने शिल्प के घर सुरक्षित रहे।

## आपदाओं का निवारण—पारंपरिक ज्ञान व जीवन शैली से सीखने की आवश्यकता

जंगल को आज भी यहाँ के निवासी आजीविका के मुख्य आधारों में मानते हैं। पहले हर एक गाँव का अपना सामुहिक जंगल गोचर, पनघट, पटालखान, पत्थर की खान, छज्जे की खान, खेती के औजारों का जंगल व गाड़ / नदियां आदि होती थीं। इस नागरिक अधिकारों को सरकारी या राजा के पुराने बन्दोबस्त में देख जा सकता है। स्थानीय संसाधनों के स्थानीय कारीगर घर बनाते थे आपदा में सरकार फैब्रिकेट सामग्री की कॉलोनियां बसाने का काम कर रही हैं। जिस तरह 1980 के दशक में वनों के प्रति सरकार की व्यापारिक दृष्टि बदल कर पर्यावरण चेतना जगाने में सहायक हुई उसी तरह आज नदी, खनन, एवं अन्य संसाधनों की लूट रोकने की नई चेतना लाने की आवश्यकता है। नदियां विक्रय की वस्तु नहीं अपितु स्थानीय लोगों की आजीविका एवं पूरे देश और दुनिया के लिए स्वच्छ पानी व पर्यावरण की देन हैं। इससे हिमालय बचेगा और हिमालय बचेगा तो देश और दुनिया बचेगी। इस आपदा से यही सबक लिया जा सकता है।

## बारहनाजा मिश्रित फसलों के द्वारा भूस्खलन व मूक्षण रोकने की वैज्ञानिक पहल :

पहाड़ों के तेज ढालों स्थित सीढ़ीदार खेतों में बरसात में एक ही फसल (मोनोकल्पर) हो या खेत खाली हों तो निश्चित बात है तेज बारिश से मिट्टी बहेगी, गलियां बनेगी, भूस्खलन होगा और बाढ़ आयेगी। पहाड़ के किसानों के पारम्परिक ज्ञान को भले ही आज का कृषि विज्ञान मान्यता न दे किंतु यहाँ के किसानों ने अपनी सूझ-बूझ से मिट्टी की इस समस्या से बचने के लिए फसल चक्र विकसित किए हैं, जिसे 'सार' पद्धति कहते हैं। 'सार' एक क्षेत्र में बहुत से खेतों की पट्टी को कहते हैं। बरसात में एक 'सार' में बारहनाजा होता है तो दूसरी सार



में झांगोरा, कोनी एवं धान आदि उगाया जाता है। बारहनाजा यानि बारह तरह के अनाज, जिसमें केवल अनाज नहीं दलहन, तिलहन व साग मसाले भी मिश्रित रूप से उगाये जाते हैं। मंडुआ (रागी) बारहनाजा का मुखिया है, अन्य मुख्य फसलें हैं : रामदाना, कुट्टु, ज्वार, राजमा, गाहथ (कुलथ), भट्ट, नौरंगी, उड्डद, मूंग, भंगजीर, तिल आदि। मिश्रित फसलें अलग—अलग ऊँचाई की होती हैं, बारिश की तेज बूंदे इन फसलों की पत्तियों व टहनियों से टकराकर फंवारे की तरह जमीन में उतारती हैं, और फसलों की घनी जड़े उसे धीरे—धीरे जमीन में समा लेती हैं, जड़े जमीन को अच्छी तरह बांधे रखती हैं, फलस्वरूप, भूरक्षण, भूस्खलन रोकने का यह सर्वश्रेष्ठ उपाय है। फसलों के वक्त ही नहीं अपितु फसल कट जाने के दो तीन महीने तक भी फसलों की जड़े मिट्टी को बांधे रखती हैं। वर्षा आधारित ये फसलें किसानों की खाद्य व पोषण सुरक्षा में तो महत्वपूर्ण है ही साथ—साथ मिट्टी के संरक्षण व मिट्टी के संरक्षण व मिट्टी को उर्वर बनाने में भी सहायक हैं।

बारहनाजा और पौधिक अनाज (मिलेट) जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में भी सहायक है, ये फसलें C4 श्रेणी की हैं। सूखा झेलने में ये बहुत सक्षम हैं। ये फसलें भविष्य की आशा की किरणें हैं।

### घर बनाने का पारंपरिक ज्ञान

पहाड़ों में पथर मिट्टी एवं लकड़ी के मैल से बनने वाले पारंपरिक घर यहाँ के बहुमूल्य वास्तुशिल्प हैं, ये घर बड़े बड़े भूकम्पों को भी सहन कर सकते हैं। ये घर सर्दी व गर्मी के भी अनुकूल हैं।

### आपदा निवारण—हिमालय के सतत विकास के लिए क्या करें

उच्च हिमालय में मौजमस्ती के लिए बड़ी संख्या में बनने वाले हैलीपैड एवं हवाई उड़ानों पर रोक लगानी चाहिए, क्योंकि इनके लगातार भारी शोर एवं ईंधन द्वारा छोड़े गये कार्बन से हिम शिखरों को भारी नुकसान पहुँच रहा है साथ ही उच्च हिमालय के पश्च—पक्षियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

पानी व शीतल पेय की प्लास्टिक की बोतलों, एवं खाद्य पदार्थों के रैपर यहाँ प्रदूषण बढ़ा रहे हैं, इस पर तुरंत रोक लगायी जाय। यहाँ के धारे—नौलें (स्नोत्रों) का पानी अब भी बहुत शुद्ध है, प्राकृतिक मिनरलों से भरा है पानी लाने—लेजाने के लिए धातुओं के बर्तनों का इस्तेमाल होना चाहिए। प्याऊ की पुरानी परम्परा भी लौटाई जानी चाहिए।

- सार्वजनिक परिवहन सेवा को और सुविधा जनक बनाया जाय, छोटी कारों को हतोत्साहित करने के लिए इनपर टैक्स बढ़ाया जाना चाहिए। सार्वजनिक बस एवं जीपों पर टैक्स कम कर सुविधाजनक बनाया जाय।
- संवेदनशील हिमालयी क्षेत्र में सी.एन.जी. परिवहन चलाये जाने चाहिए।
- हिमालयी क्षेत्र के राज्यों को मिलने वाले 'ग्रीन बोनस' में यहाँ के समुदायों का पहला अधिकार दिया जाय।
- हिमालय के जंगलों को आग से बचाने के लिए, वन विभाग व ग्रामीणों को सुरक्षा की जिम्मेदारी दी जाय।
- बढ़ते जंगली जानवर के कारण किसानों की फसलों की तबाही हो रही है, इनकी संख्या घटाने के लिए नियमों को सरल बनाया जाय।
- ग्राम स्तर पर 'जैव विविधता समितियों' का गठन तेजी से किया जाना चाहिए और स्थानीय समुदाय की अनुमति के बिना किसी भी संसाधन की लूट नहीं होनी चाहिए। ऐसे गाँव जहाँ भूगर्भीय पर्यावरणीय कारणों से सड़क पहुँचानी सम्भव नहीं उनसे सम्पर्क के लिए रज्जू मार्ग का निर्माण किया जाय।
- खेती योग्य जमीन का दुरुपयोग अन्य गैर कृषि कार्यों के लिए नहीं किया जाना चाहिए।
- समुदायिक रेडियो प्रणाली को मजबूत किया जाना चाहिए।
- ऊर्जा की आवश्यकताओं पूरी करने के लिए पहाड़ों में सौर ऊर्जा एवं पवन ऊर्जा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और जल विद्युत के लिए धराट (पन चक्की) मॉडल की छोटी—छोटी जल विद्युत योजनायें युद्धस्तर पर चलायी जानी चाहिए।
- छोटे—छोटे बांधों के नाम पर सुंरग आधारित बांधों पर पूर्ण रोक लगानी चाहिए।
- पहाड़ की हर छोटी बड़ी नदी का जलागम प्रबंध पारंपरिक ज्ञान एवं विज्ञान के आधार पर होना चाहिए। नदी के तटों एवं नदी के तल पर विशेष ध्यान देकर सुरक्षा योजना बनानी चाहिए। नदी के स्वभाव / प्रभाव का शत् त अध्यन कर योजनायें चलायी जानी चाहिए। यह कार्य 'मनरेगा' में भी हो सकता है।



माखनलाल चतुर्वेदी  
(1889–1968)

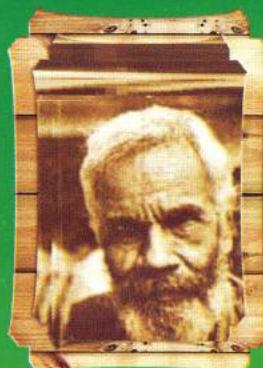


जयशंकर प्रसाद  
(1889–1937)

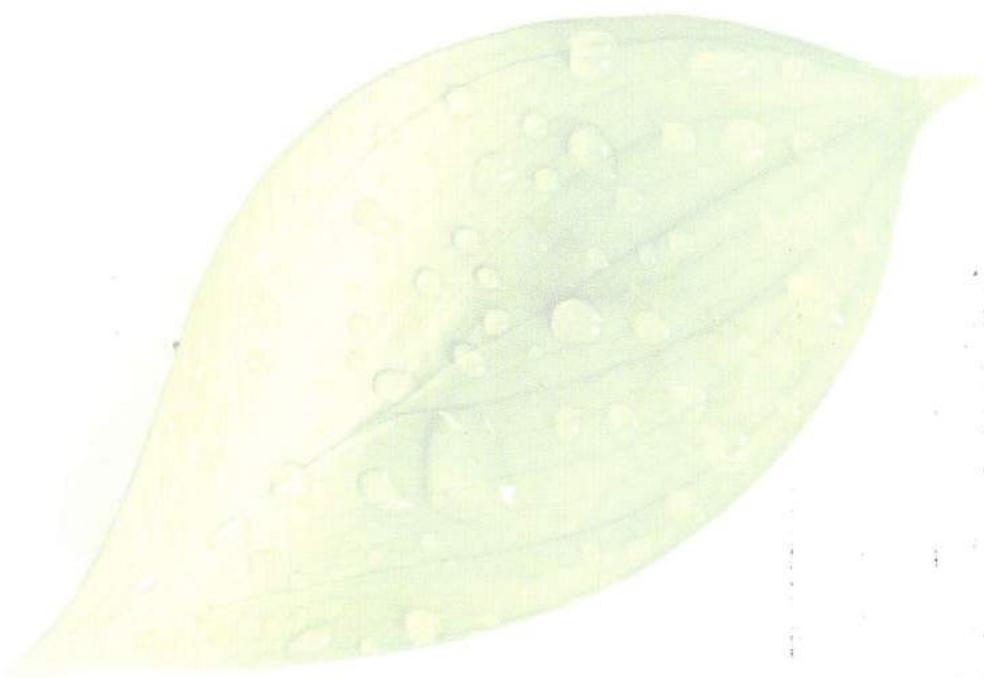
# लालित्य



सुमित्रा नन्दन पंत  
(1900–1977)



नागार्जुन  
(1911–1998)



## फ्रेंच कनेक्शन

श्री विवेक खाण्डेकर

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

राजा भोज व विविध तालाबों की प्राचीन नगरी भोपाल से फ्रांस के इतिहास का एक अजब, अनूठा, अनकहा, अनसुना किंतु विचित्र एवं अद्भुत नाता है, यह बहुत कम लोगों को ज्ञात है।

इस व्यस्त राजधानी के गली कूचों के अविरल जीवन प्रवाह के बीच सदियों से एक चर्च के समीप रहती आई हैं, फ्रांस के बोरबॉन राजघराने के वंशजों की पीढ़ियां। इस पूर्वी गोलार्ध के भारतीय शहर में अपने पश्चिमी विश्व के मूल से हजारों कि.मी. एवं सैकड़ों वर्षों के अंतराल के बावजूद अपने संस्कृति एवं राजसी परंपरा एवं विरासत को सहेजता, समेटता यह राजघराना आज भी समय से संघर्ष करता हुआ अपना अस्तित्व बनाए हुए है।

इतिहास के ज़र्द पने कहते हैं कि बोरबॉन राजघराना जिसने वर्ष 1589 से 1789 के रक्तरंजित फ्रांसीसी क्रांति तक फ्रांस पर एकछत्र शासन किया, उसका एक राजपुत्र जीन फ़िलिप डी बोरबॉन नावारे 1560 में अपने ही संभ्रात राजकुल के एक अन्य राजपुत्र के साथ हुए द्वंद्व युद्ध में उस राजपुत्र को तलवार से मौत के घाट उतारने के बाद मृत्युदंड के भय से फ्रांस से पलायन कर गया। चार्ल्स—डी—बोरबॉन, ड्यूक ऑफ बोरबॉन, और डेंजर सुजेन का गोपनीय (क्योंकि बोरबॉन राजघराने की आधिकारिक वंशावली से जीन फ़िलिप का नाम नदारद है) पुत्र जीन फ़िलिप भागते हुए अपने एक पादरी एवं 2 मित्रों के साथ मद्रास पहुंचा। पादरी मद्रास में ही रह गया और जीन फ़िलिप अपने मित्रों सह 1560 में सम्राट अकबर के



बाल्थाजार-IV अपने परिवार के साथ

दरबार में समुद्री मार्ग से होते हुये पहुंचा। अकबर को उसने अपने पलायन के दौरान समुद्री दस्युओं द्वारा पकड़ने व उसके बाद काहिरा के गुलाम बाज़ार में बिक्री के भयावह परिस्थितियों से किसी तरह बचने की अपनी व्यथा कथा बताई। सम्राट अकबर ने सहानुभूति व उसके राजघराने के उच्च पद के मददेनजर जीन फ़िलिप को न केवल शरण दी अपितु उसका विवाह अपनी यूरोपियन पत्नी (जो अपने यूरोपियन चिकित्सकीय ज्ञान के चलते राजघराने की महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी मसलों की प्रभारी थीं) की बहन जूलियानो के साथ किया साथ ही उसके उच्चवंशीय व राजसी संस्कारों के चलते राजकीय हरम की देखभाल व सुरक्षा का जिम्मा देते हुए उसे शेरगढ़ का राजा घोषित किया। नादिर शाह द्वारा 1737 में हुए आक्रमण तक यह राजवंश शेरगढ़ में कायम रहा। तदुपरांत फ्रांसिस-ट्वितीय (1718–1778), जो शेरगढ़ के आखिरी राजा रहे, उनके अधिकांश परिवार की हत्या राजा, नरवर के सिपाहियों के हाथों हुई। बचे हुए पुत्र साल्वाडोर—॥ एवं दो अन्य पुत्र वहां से ग्वालियर और अंततः भोपाल पहुंचे। यहां के दरबार में शरण पाकर वे मुस्लिम नामों से जाने गए। भोपाल में यह बोरबॉन घराना राजा के ऊपरांत सबसे प्रभावी व अमीर परिवार के रूप में जाना जाता रहा। इसमें बाल्थाजार ऑफ बोरबॉन उर्फ शहजाद मसीह (1772–1829) (साल्वाडोर—॥ के पुत्र) तो राज्य के 1820 में प्रधानमंत्री तक बन गए और 1829 में अफगान संभ्रातों द्वारा विष प्रयोग के फ़ल स्वरूप मृत्यु को प्राप्त होने तक प्रधानमंत्री ही रहे। उनके पुत्र सेबास्टीयन बोरबॉन आका मेहरबान मसीह (1830–1878) कुदसिया बेगमों के प्रधानमंत्री बने और उन्होंने भोपाल के सबसे भव्य राजमहल 'शौकत महल' का निर्माण करवाया।

1948 में जागीरदारों के प्रिवी पर्स समाप्त होने पर राजसी ठाठबाट जाते रहे। पर अभी भी कैपेशियन वंश के बोरबॉन राजघराने की वरिष्ठतम वंशावली का चिराग अपने मूलदेश फ्रांस में बुझने के बाद भी भोपाल की गुमनाम गलियों में रोशन हैं। अपने बोरबॉन घराने की धरोहर व विरासत के प्रतीक भोपाल के बोरबॉल राजवंश के बाल्थाजार-IV उस भूलेबिसरे सुदूर अतीत की अक्षत श्रृंखला की अद्यतन कड़ी के रूप में विद्यमान है।



## स्मृति अंश

**श्रीमती अर्चना जोशी**

**भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून**

कुछ पुरानी यादें एक भीनी खुशबू के समान जीवन को महकाती रहती हैं और हमें असीम आनन्द देती हैं। जिनका स्मरण मात्र हमारे चेहरे पर एक सहज स्मित ले आता है।

यह कोई कहानी नहीं, एक स्मृति अंश है, बेहद प्यारा और आनंद में आकंठ डुबोने वाला। यह तब की बात है जब स्कूल की पढ़ाई के बाद मैंने कालेज में दाखिला लिया ही था। अक्तूबर का महीना था और मेरी छुटियाँ पड़ गई थीं। संयोगवश मामाजी आ गए। उन्होंने मुझे अपने साथ टिहरी गढ़वाल के एक गाँव, जहाँ मेरी मामी सरकारी स्कूल में अध्यापिका थीं, चलने का प्रस्ताव रखा। घर से अनुमति मिलते ही मैं बड़े उत्साह से उनके साथ चलने को तैयार हो गई।

हम बस से टिहरी के लिए रवाना हो गए। टिहरी से गाँव तक बस नहीं जाती थी न ही कोई अन्य सवारी। बस एकमात्र साधन—पद यात्रा। हम चल पड़े पैदल ही। लेकिन वह यात्रा बड़ी ही आनंदायक बन पड़ी क्योंकि पहाड़ों में प्रकृति का वह अनछुआ सुरम्य दृश्य आपको मार्ग के लंबेपन का अहसास ही नहीं होने देता। ऊँचे—ऊँचे चीड़ के वृक्षों से आती खुशबूदार ठंडी हवा से मन अनायास ही स्वच्छ हो जाता है। मैं और मामाजी पैदल गप—शप करते कितने किलोमीटर चलते गए मुझे आभास ही नहीं हुआ। यद्यपि मुझे पहाड़ों पर चलने का अभ्यास नहीं था, फिर भी मुझे एक पल भी थकान का अहसास नहीं हुआ। शाम ढलते—ढलते हम गाँव के निकट पहुँच गए। मामाजी का क्योंकि वहाँ आना—जाना लगा रहता था इसलिए रास्ते में उनकी जान पहचान के कई लोग मिले जिनसे मिलते मिलाते, दुआ सलाम करते हम चले जा रहे थे। उनमें से कुछ लोग हमें रुकने व कुछ देर विश्राम करने तथा चाय पानी पीकर जाने का आग्रह कर रहे थे लेकिन हम कहीं न ठहरकर सीधे ठिकाने पर ही पहुँचना चाहते थे क्योंकि अँधेरा होने पर पहाड़ों में चलना पहाड़ जैसा ही है। एक तो रास्ता नहीं सूझता उसपर जंगली जानवरों का उर। अन्ततः चलते चलाते शाम होते होते हम घर पहुँच ही गए। मामीजी को हमारे अचानक आने का कोई अनुमान नहीं था वे वहाँ अपनी डेढ़ साल की बच्ची और माँ के साथ रह रही थीं। वे हमें अचानक आया देख चौंक गईं। गाँव के ही किसी संपन्न परिवार के मकान में कमरा लेकर वह रह रही थीं। वहाँ के छोटे—छोटे घर जिसमें निचले हिस्से में गाय—भैंसों आदि के रहने का स्थान था और प्रथम

तल पर लोग स्वयं रहते थे। बिजली थी पर आने—जाने का कोई भरोसा नहीं था। लालटेन या ढिबरी तैयार रखनी पड़ती थी। संयोगवश जब हम पहुँचे तो बिजली नहीं थी। रास्ता जितना सुरम्य लग रहा था घर पहुँचने पर सर्वत्र अंधकार के कारण कुछ घुटन सी महसूस हुई। पहाड़ी ढलान पर गाँव था, दूर—दूर हलकी सी रोशनी टिमटिमाती सी दिख रही थी। अचानक मुझे एक उदासी ने आ घेरा और जिस थकान को मैं अभी तक भूली हुई थी वह तीव्रता से महसूस होने लगी। घर की याद भी सताने लगी। कुशलक्षेम जानने के बाद मामीजी ने चाय बनाई। मैं नहीं जानती कि वह थकान की वजह से या उस चाय का स्वाद ही कुछ अलग था कि मेरी जिह्वा पर वह स्वाद आज भी ज्यों का त्यों है और मैं आज तक नहीं भूली हूँ।

हमें बहुत जोर से भूख लग आई थी। खाने में मामीजी ने आलू की सब्जी और चूल्हे में बनी रोटी के साथ कटोरी भर धी दिया। पहाड़ों में सब्जियाँ कम ही होती हैं पर वहाँ लोग गाय—भैंस पालते हैं, धी, दूध की कमी नहीं होती और फिर मामीजी तो मास्टरनी थीं तो गाँव के लोग यूँ ही उन्हें ये सब चीजें समान स्वरूप उपहार में दे दिया करते थे। शहर में तो हमें माँ चम्मच भर धी देती थी। पहली बार सब्जी की तरह धी को कटोरी में परोसा हुआ देखा जो कि खाया भी नहीं गया। वहीं रसोईघर में चूल्हे के पास बैठकर, उस गुलाबी ठंड में चूल्हे की गर्मी ने बड़ा सुकून दिया, खाने का स्वाद दुगुना हो गया। परन्तु बाहर काफी ठंडक थी। खा पीकर जब हाथ धोने बाहर निकले गीले हाथों पर हवा लगते ही ऐसा लगा मानो हाथ सुन हो गए हों। कुछ समय बाद बिजली आ गई। बातचीत करते करते हम रात को काफी देर से सोये।

दो दिन बाद मामाजी मुझे छोड़कर चले गए। एक दो दिन तो ठीक लगा पर अब वहाँ समय गुजारना मुश्किल लगने लगा क्योंकि न तो मैं वहाँ किसी को जानती थी, न ही टी.वी. था न अखबार, न पढ़ने को अन्य कुछ, न कोई काम। ऐसा लगता था मानो दुनिया इतनी ही है। प्राकृतिक नजारे देखकर कब तक समय गुजारती। एक दो दिन तो जैसे—तैसे मैंने अखबार की फटी पुरानी कतरनों यहाँ तक कि सामान लाने के लिए उपयोग में लायी गई कागज की थैलियों तक को खोल—खोल कर पढ़ डाला। अगले दिन मामीजी की तबियत अचानक खराब हो गई। अब खाना बनाने की जिम्मेदारी मुझपर आ



पड़ी। चूल्हे में खाना बनाने का यह मेरा पहला अनुभव था जिसमें मुझे नानी याद आ गई। बिना कूकर के दाल सब्जी बनाने की आदत भी नहीं थी। समय लगा, पर खाना ठीक ठाक ही बन गया। बीरबल की खिचड़ी वाली कहावत चरितार्थ हुई। पर आखिरकार खाना ठीक ठाक बन ही गया। रात मुझे ठीक से नींद नहीं आई थी। सुबह जरा झपकी आई ही थी कि अचानक किसी के तीव्र रुदन की आवाज से मैं हड्डबड़ाकर उठी और बाहर आई। मामीजी आराम से कुनकुनी धूप का आनंद लेते हुए चाय पीती बैठी दिखीं। उन्होंने मुझे इस तरह घबराए हुए देखा तो बोलीं, “क्या हुआ, इस तरह घबराई क्यों है? मैंने कहा, “यह रो कौन रहा है? क्या हो गया है?” वो हँस पड़ीं और बोलीं, “अरे! तू भी परेशान हो गई। जाकर सो जा, यहाँ तो यह सब रोज़ होता है, नीचे गाँव से कोई लड़की ससुराल जा रही होगी। यह रोना धोना यहाँ चलता रहता है। तूने यह सब पहले कभी देखा नहीं है न, इसलिए। शुरू-शुरू में मैं भी कोई अनहोनी समझ कर डर गई थी।” मैंने कहा, “भला ससुराल जाने के लिए भी कोई ऐसे रोता है?”

मैं बाहर आई और उत्सुकतावश घाटी में झाँका। दूसरा गाँव साफ नजर आ रहा था। मैंने देखा एक लड़की जो शायद उम्र में लगभग चौदह—पंद्रह वर्ष की होगी, साड़ी पहने हुए थी और बारी—बारी वहाँ खड़े सभी लोग जो रिश्ते में शायद उसके माँ, बाप, ताऊ, ताई, चाचा, चाची, बुआ, भाई, बहन लगते होंगे, उनसे गले लिपट रही थीं और हर बार उसका रुदन पहले से तीव्र हो जाता था। ऐसा लग रहा था मानो वह इन सबसे आखिरी बार मिल रही हो। मैं विचलित सी हो गई। काफी देर यही सब सोचती रही। उसका रोना अपनों से बिछड़ने के कारण था या ससुराल के प्रति उसका भय था।

उसी दिन मामीजी ने मुझे गाँव की एक दो लड़कियों से मिलवाया। वे उम्र में मुझसे तीन—चार वर्ष छोटी थीं लेकिन दोनों धोती पहने हुए थीं। कद काठी अच्छी थी बल्कि मैं कद में उनसे छोटी थी। देखने में सुंदर और रंग ऐसा कि दूध में हल्का सिंदूर मिला दिया हो। वे उछलती कूदती उधर से जा रही थीं कि मामीजी ने उन्हें आवाज़ देकर बुलाया और कहा, “ऐ लड़कियों ये मेरी भाँजी हैं, देहरादून से आई हैं, कुछ दिन यहीं रहेंगी। इसे भी अपने साथ धूमने—फिरने ले जा लिया करो।” क्योंकि वे सिर्फ गढ़वाली बोलती और समझती थी मामीजी ने उन्हें यह सब गढ़वाली में ही कहा। मैं गढ़वाली समझ तो अच्छी तरह लेती थी लेकिन बोलने में हिचक होती थी जैसे किसी अंग्रेज़ के सामने अच्छी से अच्छी अंग्रेजी जानने वाले हिंदी भाषी को होती है। उन्होंने मुझे बड़े कौतूहल से देखा जैसे कोई सलीकेदार जानवर पहली बार देखा हो। एक तो उनके हिसाब से उतनी बड़ी होने पर भी मैंने धोती नहीं पहनी थी, उसपर थोड़ी शहरी छाप के अनुसार मेरी सलीके से

बनी हुई लम्बी लम्बी दो चोटियाँ और मेरे सलवार सूट को वह बड़े गौर से देख रही थीं। उनके इस तरह धूरने पर भी मुझे उनकी आँखों में एक निष्ठल कौतूहल भरी चमक दिखी। वो मुझसे मित्रता करने को सहज ही उतावली हो उठीं। मुझे भी उन्हें देखते ही एक आत्मीयता का अहसास हुआ। कभी—कभी किसी व्यक्ति को देखते ही, चाहे उसने हमारा कुछ न बिगड़ा हो, हमें अकारण ही वह अच्छा नहीं लगता, उससे बात करने की इच्छा ही नहीं होती और कभी—कभी ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति को हम जानते भी नहीं, उसके बारे में किसी से कुछ सुना भी नहीं होता तब भी हम मित्रता करने को उत्सुक हो उठते हैं और ऐसा ही कुछ उन दोनों लड़कियों का देखकर मुझे हुआ। उनमें से एक का नाम बसन्ती था। वह अच्छी कद काठी की गौरवर्णा सुंदर छरहरी लड़की थी दूसरी का नाम लक्ष्मी था जिसे सब लछमी बुला रहे थे वह भी लम्बी छरहरी थी, बसन्ती जैसी सुंदर न थी पर आकर्षक थी।

थोड़ी ही देर में मैं उनके साथ धुलमिल गयी और पुरानी सहेलियों की तरह बतियाती हुई गाँव भर में धूम रही थी। मुझे उनकी हर बात अनोखी लगती और वे मेरी हर बात पर हैरान होतीं। जहाँ मुझे उनकी मासूमियत भरी बातें अच्छी लगती वहीं इस बात का दुख भी हो रहा था कि वे तीसरी चौथी कक्षा के बाद स्कूल नहीं गई थीं। गाँव के लड़के तो स्कूल जाते थे परन्तु लड़कियाँ सिर्फ घर का काम करती थीं। तब मेरी हैरानी की सीमा न रही जब बातों ही बातों में मुझे पता लगा कि बसन्ती की दो दिन बाद सगाई है क्योंकि वह मुझसे उम्र में बहुत छोटी लग रही थी और थी भी। लछमी ने मुझसे बड़े संकोच से गढ़वाली में ही पूछा, “तू कितने बरस की है?” मैंने कहा, “अटठारह।” बसन्ती बोली, “हैं! तुझे अभी कहीं दिया नहीं?” (यानि तेरा रिश्ता नहीं हुआ अभी)। मैंने कहा, “अभी तो मैं पढ़ रही हूँ, फिर नौकरी करूँगी फिर बाद में शादी बादी देखेंगे।” वो दोनों हैरान होकर मुझे इस तरह देखने लगी मानो कह रही हों कि बुद्धी तो अभी हो गई है शादी कब करेगी? फिर भी बसन्ती ने पूछा, ‘तेरे घरवाले तेरी बात मान जाएंगे?’ मैंने कहा, ‘हाँ, वे भी यही चाहते हैं। फिर मैंने पूछा, ‘तुम स्कूल क्यों नहीं जाते, स्कूल तो है गाँव में।’ तब बसन्ती बोली, ‘कहाँ दीदी, मन तो हमारा भी करता है पर हमें स्कूल जाते हैं।’

खैर! दो दिन बाद बसन्ती की सगाई थी। मुझे और मामीजी को भी खास न्यौता मिला। दूल्हा दिल्ली में काम करता है यह बताते हुए बसन्ती के पिताजी फूले नहीं समा रहे थे। उनके लिए दिल्ली किसी विदेश से कम नहीं था। यूं भी गढ़वाल में जब गाँव का कोई व्यक्ति शहर से आता है उसका रहन सहन गाँव वालों के लिए अनोखा होता है। जब वह गाँव में पायजामे कुर्ता की जगह कोट पतलून पहनकर निकलता है तो उसे गाँव के बूढ़े और जवान सभी घेर लेते हैं और वह “बाबू



साहब” जैसे सम्बोधन पा जाता है। जैसे कोई फॉरेन रिटर्न हो। वह भी उन सीधे सादे लोगों के सामने स्वयं को किसी अफलातून से कम नहीं समझता चाहे शहर में कुछ भी छोटा मोटा काम करता हो। गाँव की इकलौती पानी की टंकी पर टूथ ब्रश, नया साबुन, साफ तौलिया (गाँव के सीधे सादे गरीब लोगों को ये दुर्लभ वस्तुएं लगती हैं) लेकर जब वह आता है तो लोगों के लिए दर्शनीय व चर्चा का विषय बन जाता है। बसन्ती ने भी अपने गाँव के कुछ लोगों को जो शहर में रहते थे इसी तरह चर्चा का विषय बनते देखा था। वह भी यह सपना देखती थी कि काश! कभी उसे भी शहर जाने का मौका मिले। अब यह मौका उसे मिलने जा रहा था तो उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। हालाँकि पहाड़ों में ज्यादातर लड़के शादी करने के बाद पत्नियों को खेती बाड़ी में मदद तथा मातापिता की सेवा परम धर्म मानकर गाँव में ही छोड़ जाते हैं। फिर भी पत्नियाँ इसी पर अभिमान करती हैं कि उसका पति शहर में रहता है और जिन दिनों गाँव में काम कम होता है, महीने दो महीने के लिए उन्हें शहर जाना नसीब हो जाता है।

सगाई के लिए मेहमान पहुँचने ही वाले थे। दूर से ही आठ दस लोग पगड़ियों पर पैदल आते दिखाई दे रहे थे। बसन्ती की सहेलियों का उत्साह देखने लायक था। वे सभी भावी जीजाजी को देखने को उतार्वली थीं, वो भी जो दिल्ली में रहता हो। खैर! मेहमान पहुँच गए। इनमें वर कौन है, फुसफुसाहटें हो रही थीं, कथास लगाए जा रहे थे। मैंने सहज ही अनुमान लगा लिया क्योंकि उनमें से एक कुछ अलग था, काला चश्मा, पतलून पहने हाथ में घड़ी जो उसके शहरी होने की गाथा सुना रही थी। मैंने धीरे से लड़कियों को इशारा कर दिया। बस फिर क्या था लड़कियों ने उसे ऐसा धेरा कि मुझ जैसी शहर में रहने वाली पढ़ी लिखी लड़की का आत्मविश्वास भी बगलें झाँकने लगा। मैंने पाया कि उनमें नाम मात्र की भी हिचक नहीं थी। मुझे हिचक हो रही थी और वे मुझे भी अपने साथ आगे खींच रही थीं। वे यह भी दिखाना चाहती थी कि हमारे बीच भी कोई शहरी और पढ़ा लिखा है। वैसे मैंने आजमाया है कि हिचक या तो बिल्कुल अनपढ़ लोगों में नहीं होती या फिर बहुत विद्वानों में। सगाई की रस्म शुरू हुई। सगाई क्या, टीका पिठाई। अँगूठियों का आदान प्रदान वहाँ नहीं होता था। खाना पीना चल रहा था कि तभी मैंने देखा दस बारह लड़कियाँ एक डब्बा जो संभवतः श्रृंगारदान था, (जो लड़के वाले सगाई में बसन्ती के लिए लाए थे) लेकर दूसरे कमरे में आ गई और आनन फानन उसे खोल डाला और टूट पड़ी। सबने मिलकर उसका पाँच मिनट के भीतर पोर्टमार्टम कर डाला। उसमें पड़ा क्रीम, पाउडर, नेल पॉलिश, लिपस्टिक सबने पोत ली। एक ने खिलखिलाते हुए डिल्ली मेरी ओर इस भाव के साथ बढ़ाई मानो कह रही हो तू ही इस प्रसाद से

वंचित क्यों रहे, मौका है तो बस आज ही। देखते ही देखते वह श्रृंगारदान खाली पड़ा मुँह चिढ़ा रहा था। मैं हक्की बककी उन्हें देख रही थी। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि यह क्या हुआ। हँसी भी बहुत आई। तभी लड़कियों की खी खी और शोर सुनकर कोई बुजुर्ग महिला कमरे में आई और जोर से सबको डॉट लगाई, “अरे ओ जंगली लड़कियों, ये तुमने क्या किया। सब सामान खत्म कर दिया। मैंहमान क्या कहेंगे, यह सब तो बसन्ती के लिए था”। लड़कियाँ जो अब तक खी खी कर हँस रही थी एक दम चुप हो गई। पर उनकी बुजुर्ग की पीठ होते ही पुनः सबने मिलकर बिना किसी अपराधबोध के जमकर ठहाका लगाया।

शादी की तारीख दस दिन बाद की तय हुई क्योंकि लड़का फौज में था और बार बार छुट्टी नहीं आ सकता था। खैर! शादी की तारीख आते आते जोर शोर से तैयारियाँ शुरू हो गई थीं। मुझे भी पहली बार गढ़वाल की शादी देखने का मौका मिल रहा था। गाँव में किसी बेटी की शादी होना यानि सारे गाँव की बेटी की शादी। सभी अपनी अपनी सामर्थ्य से कन्या को दान स्वरूप कुछ न कुछ देते हैं और शारीरिक रूप से तो पूरा सहयोग रहता ही है। कोई बंदनवार बना रहा था, कोई तंबू लगा रहा था कोई स्वयं हलवाई का काम करने को प्रस्तुत था। सभी हर तरह से सहयोग कर रहे थे। गाँव की महिलाएं अनाज की सफाई के लिए इकट्ठी हुईं। आँगन में गेहूँ चावल व अन्य अनाज के ढेर लगे थे। उसके चारों ओर सभी महिलाएं बैठ गईं। बसन्ती की माँ रोली—अक्षत और गुड़ लेकर आई, सबको टीका लगाया और गुड़ की एक-एक डली दी। तब सबने अनाज को साफ करने की शुरआत की। यह अन्न का सम्मान और शुभ काम की शुरुआत का अंदाज मुझे बड़ा अच्छा लगा। शहरों में ये रस्में, यह अपनापन अब ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता। बीच-बीच में किसी किसी काम में मैं भी हाथ बँटा देती। वे सब मेरी टूटी फूटी गढ़वाली पर खूब हँसते। बड़े और छोटे सभी ने मुझ बड़ा प्यार और मान दिया।

उसी तरह रस्मों को निबाहते हुए शादी का दिन आ पहुँचा। सुबह बसन्ती को हल्दी लगी फिर मंगल स्नान। वह तो पहले ही सुंदर थी हल्दी लगने के बाद उसका रूप और निखर उठा। शाम को मैंने ही उसे तैयार किया। नई पीली साड़ी और खूब बड़ी नथ, माँग टीका, बुलाक पहनकर वह किसी देवी से कम नहीं लग रही थी। पहाड़ों में रात में पगड़ियों पर चलना मुश्किल होता है इसलिए बारात दिन ढलने से पहले ही आ जाया करती है। ढोल की आवाज सुनते ही सब दौड़ पड़े। दूल्हा पालकी पर सवार था, उसने सूट पहना था। फौजी था, अच्छी कद काठी का होने से पालकी ढोने वालों को खासी मशक्कत करनी पड़ रही थी। इसलिए उनपर तरस खाकर दूल्हा स्वयं ही दुर्गम रास्तों पर पालकी से उतरकर बीच बीच



में पैदल भी चल रहा था। पहाड़ की उन सुरम्य वादियों में ढोल, मश्क बाजा (एक तरह का बाजा जो सिर्फ पहाड़ों में ही बजाया जाता है) जिसकी गूँज इतनी मधुर थी कि अनायास ही मन स्लो मोशन में नाचने का करने लगे। वहाँ का नृत्य भी अलग तरह का होता है। पर बारात में सिर्फ मर्द ही नाचते दिखे, औरतें बारात में नहीं आई थीं। सभी घराती स्वागत द्वार की ओर दौड़ पड़े। वर का पूजन हुआ। वर नारायण स्वरूप माना जाता है। उस समय वह साक्षात् नारायण का रूप होता है और वधु लक्ष्मी स्वरूपा यानि पूजनीय। लड़कियों और महिलाओं ने मंगल गीत गाने शुरू कर दिए। दुल्हन के भाई दूल्हे को गोद में उठाकर भीतर लाये (क्योंकि अकेले के बस का वह था भी नहीं)। जलपान के दौरान महिलाओं ने गालियाँ गाईं। वह मीठी गाली सिर्फ बारातियों को चिढ़ाने के लिए गाई जाती है जिसका कोई बुरा नहीं मानता। इसमें हंसी ठिठोली होती है जिसका अपना अलग ही आनन्द है। उसके बाद विवाह की अन्य रस्में और दावत हुई। लग्नानुसार कन्यादान और फिर फेरे हुए। फेरे रात ग्यारह बजे से शुरू हुए और सुबह सात बजे पूरे हुए। पता चला वहाँ फेरे में लड़की जितना ज्यादा समय लगाती है उसकी उतनी ही वाहवाही होती है लड़की को उतना ही अच्छा माना जाता है। उसके बाद गोदान इत्यादि के बाद कन्या डोली में बैठकर विदा हुई। विदाई का दृश्य ऐसा कि माँ बाप की तो बात ही क्या वहाँ उपरिथित शायद ही कोई बचा हो जिसकी आँखें नम न हुई हों। ऐसी करुण विदाई मैंने आज तक नहीं देखी।

दो दिन बाद बसन्ती को मायके आना था। सभी इन्तजार कर रहे थे। मैं घर में भीतर कुछ काम कर रही थी तभी लछमी लगभग दौड़ती हुई आई और खबर देकर कि बसन्ती आ गई है तेजी से फुर्र हो गई। मैं बाहर आई तो तेज तेज वही रोने की आवाज़ आ रही थी। गाँव पहाड़ी ढलान पर था एक जगह खड़े होकर सारे गाँव को देखा जा सकता था। बसन्ती की सखियाँ उसे गाँव की सीमा पर ही मिलने पहुँच गईं। बसन्ती ने उन्हें देखते ही रोना शुरू कर दिया और उसके बाद जिस घर के आगे से वह गुजरी कोई भाई, कोई चाचा कोई चाची गाँव के हर व्यक्ति से कुछ न कुछ नाता होता ही है, वह सबसे गले मिलते हुए उसके साथ अपने रिश्ते से उसे पुकारकर ज़ोर से रोती और कहती मुझे तुम्हारी बड़ी खुद (बुरा लगना) लगी। मतलब कि उफ ये दो दिन तुम्हें मैंने कितना याद किया अंग्रेजी में जिसे कहते हैं मिस करना। यह उनके प्रति अत्यधिक लगाव के साथ—साथ रिवाज़ का भी हिस्सा था। मुझे पता चला कि गाँव की हर लड़की ऐसा ही करती है जब सुसुराल से मायके आती है। मतलब सुसुराल से आते भी रोना और मायके से जाते समय भी रोना। मिलन और बिछोह दोनों में रोना। मैंने देखा बसन्ती का पति एक बैग थामे आगे—आगे चला आ रहा

था। वह सब का अभिवादन करता और आगे बढ़ जाता। उससे काफी पीछे बसन्ती नई रंगीन साड़ी में सुबकती, नाक सुड़कती, अपनी सखियों के झुंड के साथ चली आ रही थी। मैं भी वहाँ खड़ी हो गई उसकी प्रतीक्षा में। वह मुझसे भी गले लगकर रोई। मैं सोच रही थी कि मात्र 8–10 दिन की जान पहचान में इतना अपनापन। वह मासूम सी बच्ची लग रही थी। अपने आँगन तक पहुँचते—पहुँचते उसका रुदन का स्वर और तेज हो गया था। अपने माँ बाप, भाई—बहनों से भी वह गले मिली। खैर! बेटी और दामाद का खूब आदर सत्कार हुआ। दो तीन दिन रहकर बसन्ती फिर उसी तरह रोती धोती सुसुराल चली गई। उसके बाद मैं भी देहरादून आ गई और मेरी उन सबसे कभी मुलाकात नहीं हुई। मामीजी की भी वहाँ से बदली हो गई। मेरा वह प्रवास मेरी जिंदगी का यादगार और बड़ा मीठा अनुभव था।

मैंने देहरादून आकर अपनी पढ़ाई पूरी की और उसके बाद मुझे नौकरी भी मिल गई। इस बात को लगभग पंद्रह वर्ष गुजर गए। मेरी भी शादी हो चुकी थी। पिछली गरमियों की छुट्टियों में बच्चों को साथ लेकर दिल्ली गई थी। वापसी में आई एस.बी.टी. में बैच पर बैठकर हम देहरादून की बस की प्रतीक्षा कर रहे थे कि तभी एक महिला दो बच्चों के साथ बड़ी जल्दी में आई और अपना सामान जमाकर वहीं बैच पर मेरी बिल्कुल बगल में बैठ गई। वह सलवार सूट पहने हुए थी, बाल कुछ छोटे थे पोनी टेल में बंधे हुए। कुल मिलाकर वह पढ़ी लिखी अच्छे परिवार की संप्रात महिला लग रही थी। वह अपने बच्चों को हिदायतें भी देती जा रही थी। सीधे बैठो, इधर उधर मत जाना आदि। उसके बच्चे मेरे बच्चों से कुछ बड़े थे। मैंने आवाज सुनकर उसकी ओर सरसरे तौर पर देखा और फिर बच्चों के साथ बातें करने लगी। उसके बच्चे स्टॉल से कुछ लेने चले गए तो वह मेरी ओर मुड़ी और पूछा, ‘आपको कहाँ जाना है मैडम?’। मैंने कहा, ‘देहरादून’। उसने पूछा, ‘यह बस वाया ऋषिकेश जाएगी न’। मैंने कहा, ‘नहीं, ऋषिकेश की दूसरी बस लगेगी’। फिर वह अचानक मुझे बहुत गौर से देखने लगी। मुझे उसका यूँ धूरना अजीब सा लगा। अचानक वह लगभग उछल पड़ी, और बोली, ‘हाय, आप तो दीदी हो न देहरादून वाली’। अब हैरान होने की मेरी बारी थी। मैंने निगाह जमाकर देखा तो आश्चर्य और खुशी से मेरे मुँह से निकला, ‘अरे बसन्ती! तू है’। वो मुझसे एकदम लिपट गई। मैंने देखा बसन्ती कितना बदल गई है। वह गाँव की अल्हड़ सीधी सादी बसन्ती अब पढ़ी लिखी शहरी मेमसाहब बन गई थी। मैंने तो तुझे बिल्कुल नहीं पहचाना रे बसन्ती! मैंने कल्पना भी नहीं की कि तुझसे फिर कभी इस तरह मुलाकात होगी। ‘हाँ, और देखो।’ मैंने आपको एकदम पहचान लिया, आपके लंबे बालों से। आप बिल्कुल नहीं बदली।



बसन्ती का स्वभाव आज भी वही था। फिर उसने बताया कि शादी के कुछ वर्ष तो वह गाँव में ही रहती रही। दिल्ली कभी ही आती थी। फिर सास ससुर की मुत्यु के बाद बच्चों सहित दिल्ली आ गई। यहाँ रहकर बच्चों को स्कूल में डाला और स्वयं भी पढ़ना शुरू किया। धीर-धीरे पति व बच्चों के सहयोग से अच्छी तरह पढ़ना लिखना और शहरी तौर तरीके सीख लिए। 'आपको पता है दीदी आपके आशीर्वाद से मैंने ग्रेजुएशन कर लिया है'। मैं हैरान हुई सुनकर। सच है, पढ़ने की कोई उम्र नहीं होती, मुख्य बात है लगन और सीखने की इच्छा। वह बोली, 'पता है दीदी जब मैं आपसे मिली थी तो मुझे आपको देखकर बहुत अच्छा लगा था जब आपने कहा था कि आप तो अभी पढ़ेंगी, अपने पैरों पर खड़ी होंगी फिर शादी के बारे में सोचेंगी। आपके उन स्वतंत्र विचारों को सुनकर लगा था कि हम अपने आप में कुछ भी नहीं। हम तो भेड़ बकरियाँ हों जैसे। माँ बाप जब चाहें जैसे चाहें हमें हाँक दें। तब हमें वह सब बुरा भी नहीं लगता था क्योंकि उसके अलावा कुछ देखा भी नहीं था न। कुछ अलग करने के लिए सामने कोई होना भी चाहिए जिससे हम अपनी तुलना कर सकें।

कोई दूसरा विकल्प था भी नहीं, हमारे पास, न साधन थे न कोई मार्गदर्शक और तब वही सब अच्छा भी लगता था। जब पहली बार गाँव में एक लड़की को इस तरह देखा तो लगा कि हम भी इंसान बन सकते हैं। दिल्ली आकर मैंने ठान लिया कि अब मैं अपनी पहचान बनाऊँगी और कुछ कर के दिखाऊँगी। आज मैं बच्चों को घर पर ही ट्यूशन पढ़ाती हूँ और घर-बाहर के सब काम भी सँभालती हूँ। मुझे बड़ा संतोष मिलता है। बच्चों को पढ़ाने से और स्वावलम्बी बन जाने से घर खर्च में भी मैं सहयोग कर पाती हूँ। उसका यह आत्मविश्वास देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। आज वह सुख सुविधाओं से परिपूर्ण जीवन जी रही थी। इंसान में लगन हो तो क्या नहीं हो सकता। यद्यपि मैंने भी अपना यथेश्ट पा लिया था पर मेरी उपलब्धि उतने मायने नहीं रखती थी जितनी उसकी क्योंकि मुझे अवसर और साधन दोनों सहज ही मिले थे।

तभी हमारी बसें लग गई। भविष्य में सम्पर्क में रहने के लिए हमने अपने अपने टेलीफोन नं. का आदान प्रदान किया और इस मीठी मुलाकात का अहसास अपने साथ लिए हुए हम अपनी-अपनी बस में सवार हो गए।



## तरुचिंतन

## चिंतन

डॉ. आर.एस. रावत

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

हे मानव कर चिंतन तरु का  
तरु का जीवन ही परोपकार।  
तरु क्या नहीं देता मानव को  
लकड़ी, जल, भोजन और पवन  
तरु ही जीवन का है आधार।  
तरु का जीवन ही परोपकार  
हे मानव, कर चिंतन तरु का।

मानव प्रदूषण फैलाता  
तरु पल—पल विष पीता जाता  
मानव तू भस्मासुर बनकर  
तरु—शिव पर मत कर अरे वार  
तरु का जीवन ही परोपकार  
हे मानव, कर चिंतन तरु का।

तरु सा भी ऋषि क्या कहीं कोई  
मारो पत्थर तो फल देता  
पालने से लेकर चिता तलक  
जीवन है तरु का ही विस्तार  
तरु का जीवन ही परोपकार  
हे मानव, कर चिंतन तरु का।

डॉ. आर.एस. रावत

श्रीमती कला नैथानी  
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

कभी कहा था 'अरस्तू' ने  
“मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है,”  
समाज में रहकर भी आज इंसान  
फिर क्यों, असामाजिक ही है।

जहाँ देखों उधर रक्षक ही भक्षक बन बैठे हैं,  
दूषित व गद्दार सोच वाले ही हो रहे उन्नत हैं,  
धन, बल, सम्पदा और सामर्थ्य सबके लिए जरूरी है।  
मधुर, मीठे, सच्चे वचनों की अब जरूरत किसको है,

भ्रष्टाचार, घोटालेबाजी, आतंकवाद पनप रहा है,  
खुद के स्वार्थ में मनुष्य ही मनुष्य को नोच रहा है।  
जिस कारण देश में चोरी, डकैती, गुंडागर्दी और  
जातिवाद, क्षेत्रवाद, नक्सलवाद फैल रहा है।

लघु उद्योग खो रहे हैं, बाल मजदूरी जैसी स्थिति  
बच्चों का बचपन छिन रहे हैं,  
भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था भी देश में,  
जाल बिछाए हैं,

सरकार, समाज व मीडिया व बुद्धिजीवी वर्ग के साथ  
समाज सुधारकों को आगे आना होगा,  
देश की अखंडता को एक बार फिर जगाना होगा।  
मनुष्य एक श्रेष्ठ प्राणी है, इसको मनन करना होगा।

जब जागेगी मन में सच्ची भावनाएं  
तब ही हम सच्चे कहलाएं,  
चेहरे पर मुस्कुराहट, दिल में नफरत  
ऐसे में कभी, कहाँ कोई इंसान बन पाए।



## त्रासदी

श्री छत्रपाल सिंह

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

ए वतन उनको नमन कोटि नमन,  
जो सो गये चिरनिद्रा में।

आस्था और विश्वास का चिराग लिए,  
वो निकले थे पर्वतों की गोद में।

एक अलौकिक शक्ति के आशीष से,  
महाशान्ति की खोज में।

दुर्गम पथरीली पगडण्डीयों से होते हुए,  
सघन वनों और लघु सरिताओं के रास्ते।

बद्री और केदार की लेने शरण,  
ए वतन उनको नमन कोटि नमन।

दुर्भाग्यवश उन वादियों में,  
बह चली कुछ ऐसी हवा।

प्रकृति से भयभीत हो,  
आसमां मानो झुकने लगा।

बादलों के तिमिर में,  
किसको था इतना पता।

रजनी के आगोश में जहां तहां,  
श्रद्धालुओं का सैलाब था ठहरा हुआ।

सहसा बरसने लगी ऐसी आफत,  
जो दे गई सबको दगा।

आंधियों की आहट तक नहीं,  
क्रूर काल का पंजा ऐसा चला।  
बादलों को भी कहां एहसास था,  
इतना नीर कहां उनके पास था।

जो वर्षभर से वीरान पडे जंगलों में,  
कुछ ही पलों में कहर बनकर बह गया।

शिलाओं से घिरा पवित्रधाम था,  
चारों ओर त्राहिमाम त्राहिमाम था।  
देखते ही देखते हो गये अरमां दफन,  
ए वतन उनको नमन कोटि नमन।

बेवक्त आई ऐसी बेरहम आपदा,  
हो गया है खून खून से जुदा।

खो गये सब के सब जानें कहां,  
गडगडाहटों में मिट गया उनका निशां।  
निष्ठुर मेघ अविरल बरसते रहे,  
ठिठुरते मासूम निवाले को तरसते रहे।

नहीं थमा उनको तलाशने का सिलसिला,  
कोई खड़ड में तो कोई मलबे में मिला।

दूँढ़ते ही रह गये अश्रु में भीगे नयन,  
ए वतन उनको नमन कोटि नमन।

खोजते रहे यहां वहां उनका पता,  
गुमनाम लाशों का ऐसा दौर था।

कुछ लोग सिसकियों को कुचलते मिले,  
कुछ आंसुओं को अमृत में बदलते मिले।

बेखौफ मौसम ने ऐसा जादू चला,  
न वो मिले न जल सकी उनकी चिंता।  
हाय! नहीं मिले निर्दोष लोगों को कफन,  
ए वतन उनको नमन कोटि नमन।



## कितने सगे हैं मेरे

## संकल्प

श्रीमती सुधा पाण्डेय 'गुड़डी'

सामाजिक वानिकी एवं पारि-पुनर्स्थापन केन्द्र, इलाहाबाद

श्री प्रवीण कुमार नाग

वन उत्पादकता संस्थान, राँची

ये कौन्धते अन्धेरे,  
कितने सगे हैं मेरे,  
ये रोशनी के फेरे,  
कितने सगे हैं मेरे।

ये धूप सुलभ बातें ये धुँआ—धुँआ रातें,  
कम है नहीं किसी से, हर रोज की ये बातें,  
ये साझा के सवेरे  
कितने सगे हैं मेरे।

दुख दर्द जो सहे है, कहने वो अनकहे हैं,  
आचार संहिता के ये शब्द अंजाने हैं,  
ये प्रेम के मछेरे  
कितने सगे हैं मेरे।

एक नाम है अंधेरा, गुम नाम है अंधेरा,  
ये झूठ के उजारे बदनाम है अंधेरा,  
ये ढूबते सवेरे  
कितने सगे हैं मेरे।

## मिला नहीं

सुर मेरे जीवन का मुझाको मिला नहीं,  
फूल मन की बगिया में अब तक खिला नहीं ॥1॥

काँटों से दोस्ती तो कर ली मैने पर,  
फिर भी कलियां दामन में अभी तक मिला नहीं ॥2॥

ओ मेरे जिन्दगी के दर्द किससे करू में शिकायत,  
शिकवा मुझे खुद से है जमाने से गिला नहीं ॥3॥

सहते जाओ इस दुनियां के गम तुम भी,  
कौन है ऐसा जिसको गम ने छुआ ही नहीं ॥4॥

मानव ने किया आविष्कार  
सुख—सुविधा एवं साधन अपार।  
साधन हुए अपार संचार, परिवहन के  
धरती सिमटी, क्षितिज मुट्ठी में।  
वाहन की बढ़ती संख्या से  
आना जाना हुआ सुगम।  
किंतु धुआँ और प्रदूषण  
ने कर दिया सबको बेदम।  
बेदम होते खाँसते  
हाँफते सब जन।  
छोटे बच्चे आँखे मलते  
जब वो होते सड़कों पर।  
वाहन के धुएँ से होते  
नित नये—नये रोगों की भरमार।  
अस्पताल भरे हैं उनसे  
जिन पर पड़ी प्रदूषण की मार।  
अब भी समय है चेतो मेरे भाई  
अपनी धरती हुई परायी।  
हरे—भरे वृक्षों को लगाओ  
धरती को फिर स्वर्ग बनाओ।  
अपने वाहन का कम करो प्रयोग  
जिससे रहे न गंदगी और न शोर।  
वाहन की नियमित जाँच कराओ  
प्रदूषण पर लगाम लगाओ।  
सी.एन.जी. एक नया विकल्प  
वातावरण का हो कायाकल्प।  
मेट्रो का उपयोग करेंगे  
प्रदूषण मुक्त वातावरण बनाएँगे।  
साइकिल भी है एक विकल्प  
इसके उपयोग का करें संकल्प।  
यह प्रदूषण को मिटाएगा  
हमारे जीवन में खुशहाली लाएगा।



## इंसानियत

## जिंदगी क्यूँ अधूरी है ?

श्री केशव सिंह मंद्रवाल

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

श्री प्रशान्त शर्मा

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

मेरे निराश उदास पलों में,  
दोस्तों का अचानक टपकना।  
धोखे से मुझे समीप बुलाकर,  
झिंझोड़ना और सच उगलवाना।  
व्यंग्य बाणों से मेरा हृदय जख्मी,  
और खुद प्यार से मुस्कराना।

मेरे सौ फीसदी सच को भी,  
उनका आराम से झुटला देना।  
और सच की धज्जियाँ उड़ाकर,  
आलोचनाओं में मुझे फंसा देना।  
उनके बेहिसाब झूठे इल्जाम और,  
मेरे सवालों के जवाब न देना।

अवसरों के फायदे उठाकर,  
मुझसे तुरन्त पीछा छुड़ा देना।  
बजाय धन्यवाद के अपने पुराने,  
अहसानों के असंख्य बम फोड़ना।  
हमेशा की तरह मुझे बेवकूफ, और  
खुद को शाहँशाह साबित करना।

ऐसी क्या है ? इंसान की विवशता,  
क्यों खो रहा, धैर्य और शालीनता।  
कौदंती दिन—रात दिमागों में गंदगी,  
द्वेष—कलेश में झुलसती सारी जिंदगी।  
अपने सुख में क्यों खुश नहीं है इंसान,  
दूजे दुःख में हर्षित और डोलता ईमान।

मैं जब भी इस तरह मारा गया,  
मेरा कद हमेशा और बढ़ा है।  
बदलते मौसम और पतझड़ में भी,  
लबालब सावन का अहसास हुआ है।  
हर कदम पर खुशियों के पुष्टों और,  
मीठे रसीले फलों का स्वाद मिला है।

लेकिन सोचता हूँ दुनियाँ में पाप के,  
बढ़ते ग्राफ का क्या परिणाम होगा।  
खुदा बचा लेगा या नफरतों, जुल्मों की  
धधकती आग में ये जहां स्वाह होगा।  
इंसानियत बचा सकती है, दुनियाँ मगर,  
निर्णय तो इंसान को ही लेना होगा।

कभी—कभी मैं सोचता हूँ  
हम दुनिया में क्यूँ आए  
अपने साथ ऐसा क्या लाए  
जिस के लिए घुट—घुट कर जीते हैं।  
दिन रात कड़वा घूट पीते हैं  
क्या दुनिया में आना जरूरी है  
अगर है ?  
तो फिर जिंदगी क्यूँ अधूरी है ?

कभी—कभी मैं सोचता हूँ बच्चे पैदा क्यूँ किए जाते हैं  
पैदा होते ही क्यूँ छोड़ दिए जाते हैं  
माँ की गोद उन्हें क्यूँ नहीं मिलती  
ये बात उन्हें दिन रात क्यूँ है खलती  
क्या पैदा होना जरूरी है  
अगर है ?  
तो फिर जिंदगी क्यूँ अधूरी है ?

कभी—कभी मैं सोचता हूँ  
इंसान—इंसान के पीछे क्यूँ पड़ा है  
जिसे समझो अपना वही छुरा लिए खड़ा है  
अपने पन की नौटंकी क्यूँ करता है इंसान,  
इंसानियत का कत्ल खुद करता है इंसान,  
क्या इंसानियत जरूरी है  
अगर है ?  
तो फिर जिंदगी क्यूँ अधूरी है ?

(इस सोच का अभी अंत नहीं)



## हकीकत

श्री प्रताप सिंह बिष्ट  
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

फूलों के बगीचों में अब कहाँ खुशबू  
कलियों पर अब न टिकती शबनम है।

बेखौफ जारी है सांसों में जहर का घुलना,  
मरते शेरों का दर्द क्या कम है।

इस शहर में दूर तक दिखाई देती हैं झुगियाँ,  
मुफलिसी का इस मुल्क में ये आलम है।

पुरखों के पीपल, बरगद नहीं हैं अब गावों में,  
हवाओं में कहाँ पत्तों की सरगम हैं।

कोयल कूके, मैना मुरकाए, मयूरी नाचे कैसे,  
जंगली परिन्दों की आंखों में बस गम ही गम है।

अंधेरे में अपनों को तलाशती हैं बूढ़ी आँखें,  
बुजुर्गों को उनके सहारा देगें, मन का भरम है।

मंहगाई हर तरफ रुलाती हैं खून के आंसू  
सियासीनों में न कोई दोस्त है ना हमदम है।

फरेबे वफा के दौर में यह कैसी मखौल है,  
नेकी पिटती सरेआम, बदी का खैरमकदम है।

## महत्वाकांक्षायें

श्री नवनीत गुप्ता  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

मनुष्य की इच्छायें, प्रतीक्षायें कभी खत्म नहीं होती  
जिस मनुष्य की इच्छायें खत्म हो जायेगी  
उसकी जिन्दगी  
एक बोझ बन कर रह जायेगी  
मौत  
हर पल उसे बुलायेगी  
उसकी जवानी उसको बुढ़ापे की ओर ले जायेगी  
उसे याद आयेंगे बचपन के वो दिन  
जब वह था कितना आशावादी  
कल्पनाओं में रहता था  
खुशहाल जिन्दगी का था आदि  
उसे याद आयेगी अपनी माँ की गोद  
जिसमें वह डर कर छुप जाया करता था  
और सोचता था  
वह भी बड़े होकर एक दिन  
बनेगा बड़ा आदमी  
और पूरी करेगा अपनी महत्वाकांक्षायें  
लेकिन धीरे—धीरे सब खत्म हो गया  
उसका जीवन एक आम आदमी में खो गया  
जहाँ पर न तो माँ की गोद थी न ही बाप का प्यार  
यहाँ पर तो था जिम्मेदारियों का अम्बार  
जहाँ वह खुद जिन्दगी से संघर्ष कर रहा है  
वह अपने आप को उस जर्जर वृक्ष के समान समझ रहा है  
जिस पर न तो फल है और न ही छाया  
और जिसकी जड़ें भी खोखली हो चुकी हैं  
फिर भी वह एक आम आदमी की तरह खड़ा है  
इन्हीं संघर्षों में उसकी महत्वाकांक्षायें न जाने कब कुचल गयी  
और अब तो उसकी रह गई है एक इच्छा  
जिस इच्छा के लिए वह अपनी जिन्दगी को ढो रहा है  
शायद में अगली बार फिर से लूंगा जन्म  
और पूरी करूंगा अपनी महत्वाकांक्षायें



## प्रकृति

श्री महेश कुमार चंचल  
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

प्रकृति की है छटा निराली,  
कहीं सूखा कहीं हरियाली ।  
  
कहीं झील झरनों की भरमार,  
कहीं सजे हैं पर्वतों की कतार ।  
  
वन उपवन हैं इसके खेल,  
नदी नाले सागरों का मेल ।  
  
मेघ पवन और निर्मल जल,  
धरा अम्बर और पताल ।  
  
चाँद सूरज और सितारे,  
ग्रह नक्षत्र सारे के सारे ।  
  
मानव के ये सब हितकारी,  
प्रकृति प्रदत्त निधि हमारी ।  
  
प्रकृति प्रेम ही जीवन का सार,  
सत्य वचन है माने संसार ।

## वैज्ञानिक के हाथ-लकड़ी का फट्टा

डॉ. शक्ति सिंह  
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर

एक लकड़ी का फट्टा, खुबसुरत सा,  
अनजान पेड़ से कटा, मेरे संस्थान में आ टपका ।  
किसी ने छुआ, तो किसी ने सूँघा,  
यहाँ से कहाँ जाएगा, एक बेचारा लकड़ी का फट्टा ।

उसका क्या रूप हो जाएगा, उसे भी नहीं पता,  
फट्टे के टुकड़े-टुकड़े हुए,  
किसी ने सुखाया, तो किसी ने भिगोया ।  
लगे हाथ उसको भिन्न-भिन्न रसायनों में डुबोया,  
किसी ने तोड़ा-मरोड़ा ।  
और मौका मिला तो चीर-फाड़कर मायक्रोस्कोप में उसको देखा,  
एक बेचारा लकड़ी का फट्टा ।

किसी ने रूप बदला तो किसी ने रंग,  
एक ने भट्टी में झोंका, तो दूसरे ने फरनेस में फेंका ।  
ये क्या कम था, वो तो तेल में भी उबला,  
केमेट्री के हाथ लगा तो, पानी से ही क्या अल्कोहल से भी धुला ।

क्या रे किसत, उसका तो यहाँ तेल भी निकला,  
बाकी जो बचा था, फफूँद और दीमक को भेट हुआ ।  
थोड़ा सा टुकड़ा, मेरे हथौड़े भी चढ़ा,  
पहले तो हथौड़े से बजा, फिर पिलोडिन से छेद-छेद हुआ ।  
कुछ समय बाद चक्की में पिसा,  
और फिर पिसकर एक्सट्रुडर में डला ।  
अब क्या बताएँ  
लकड़ी का टुकड़ा – प्लास्टिक बनकर निकला,  
वो बेचारा लकड़ी का टुकड़ा ।

यह सिर्फ काफी न था – वैज्ञानिकों ने सुझाया,  
उस पेड़ को ढूढ़ों, जहाँ से यह फट्टा आया,  
कितने ऐसे पेड़ हैं – जरा पता लगाओ,

उनके बीजों को लाओ और पौधशाला में ऊगाओ ।  
जंगल ही क्या, उन्हे खेतों में भी लगाओ,  
हम फिर से परीक्षण करेंगे ।  
उस खुबसुरत लकड़ी का क्या करना है,  
थोड़ा इन्तजार कीजिए – आप सभी को बताएँगें ।



## सागर

श्री अजय कुमार  
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

अनंत है जलराशि उसकी, रहस्यमयी है गहराई,  
बूंद—बूंद में स्पंदन है जीवन की परछाई।

ज्वार भाटे की उर्मियाँ, उस पर छिटकती रशिमयाँ,  
नीले अम्बर को समेटे चमकाती श्वेत मणियाँ।

क्षण भर को शांत है, क्षण में रूप विकराल,  
क्रोध आए जब भी, धरती पर आया भूचाल,

भुजाओं में जिसके, लहराता हरित शैवाल,  
शोभा उसकी बढ़ाते, ये असंख्य प्रवाल।

रंग बिरंगी मछलियाँ, जल की ये तितलियाँ  
पंख फैलाकर तैरनेवाली, लगती हैं ये पक्षियाँ।

दूर—दूर किनारों तक, जो फैले हुए वन हैं,  
सागर की सौंसों पर जन्म हुआ है  
सागर से पाया जीवन है।

सागर की हम संतानें, न जाए इसको भूल  
अपनी ही राहों पर, क्यों बिछा रहे हम शूल  
नदियों और सागरों को, कर रहे हम विषैला  
कटते—उजड़ते वन हैं सारे, धरती का आंचल मैला।

प्रलय की घड़ियों को, दे रहे तुम निमंत्रण  
थम जाएगी जब सौंसें धरती की, फिर न रहेगा जीवन।



## जीवन का संघर्ष

कुमारी अंजिपा

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

यह एक अनचाहा तथ्य है कि हममें से ज्यादातर लोग अपने जीवन को नियंत्रित नहीं करते बल्कि हमारी जिंदगी हमें नियंत्रित करती है.... हम अपनी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए कुछ खास नहीं करते और धीरे—धीरे अपनी साधारणता (mediocrity) को स्वीकार कर लेते हैं और तथाकथित सुरक्षित जीवन जीते रहते हैं, पर कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इन सबसे ऊपर उठ कर कुछ ऐसा कर गुजरते हैं जो ना सिर्फ उनकी ज़िन्दगी बदल देता है बल्कि लाखों लोगों के लिए प्रेरणा का भी काम करता है।

एक बार एक आदमी को अपने उद्यान में टहलते हुए किसी टहनी से लटकता हुआ एक तितली का कोकून दिखाई पड़ा। अब हर रोज़ वो आदमी उसे देखने लगा, और एक दिन उसने notice किया कि उस कोकून में एक छोटा सा छेद बन गया है। उस दिन वो वहीं बैठ गया और घंटों उसे देखता रहा। उसने देखा की तितली उस खोल से बाहर निकलने की बहुत कोशिश कर रही है, पर बहुत देर तक प्रयास करने के बाद भी वो उस छेद से नहीं निकल पायी, और फिर वो बिलकुल शांत हो गयी मानो उसने हार मान ली हो।

इसलिए उस आदमी ने निश्चय किया कि वो उस तितली की मदद करेगा। उसने एक कँची उठायी और कोकून की opening को इतना बड़ा कर दिया की वो तितली आसानी से बाहर निकल सके। और यही हुआ, तितली बिना किसी और संघर्ष के आसानी से बाहर निकल आई, पर उसका शरीर सूजा हुआ था और पंख सूखे हुए थे।

वो आदमी तितली को ये सोच कर देखता रहा कि वो किसी भी वक्त अपने पंख फैला कर उड़ने लगेगी, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इसके उलट बेचारी तितली कभी उड़ ही नहीं पाई और उसे अपनी बाकी की ज़िन्दगी इधर—उधर घिसते हुए बितानी पड़ी।

वो आदमी अपनी दया और जल्दबाजी में ये नहीं समझ पाया की दरअसल कोकून से निकलने की प्रक्रिया को प्रकृति ने इतना कठिन इसलिए बनाया है ताकि ऐसा करने से तितली के शरीर में मौजूद तरल उसके पंखों में पहुंच सके और वो छेद से बाहर निकलते ही उड़ सके।

वास्तव में कभी—कभी हमारे जीवन में संघर्ष ही वो चीज होती है जिसकी हमें सचमुच आवश्यकता होती है। यदि हम बिना किसी संघर्ष के सब कुछ पाने लगे तो हम भी एक अपंग के सामान हो जायेंगे। बिना परिश्रम और संघर्ष के हम कभी उतने मजबूत नहीं बन सकते जितना हमारी क्षमता है। इसलिए जीवन में आने वाले कठिन पलों को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखिये, वो आपको कुछ ऐसा सीखा जायेंगे जो आपकी ज़िन्दगी की उड़ान को संभव बना पायेंगे।

अंत में दो शब्द शिक्षाप्रद— “जब हमें कोई दुःख दे तब हमें उसे रेत पर लिख देना चाहिए ताकि क्षमाभावना की हवाएं आकर उसे मिटा दें। लेकिन जब कोई हमारा कुछ भला करे तब हमें उसे पत्थर पर लिख देना चाहिए ताकि वह हमेशा के लिए लिखा रह जाए”।



## आशा की किरणें

डॉ. पापोरी फुकन बोरपुजारी  
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

माँ बहुत बैचेन होते हुए बोलने लगी मीना (रीता की बड़ी बहन), देखो तो इतनी देर हो गई रीता अभी तक स्कूल से घर नहीं लौटी। मैं बहुत चिन्तित हूँ। आजकल जमाना भी ठीक नहीं है। अंधेरा भी होने लगा है, दादाजी को पता चलने से और दिक्कत होगी। हाँ माँ, मैं देखती हूँ। बातें पूरी तरह से खत्म भी नहीं हुई थी कि देखा रीता पहुँच रही है। माताजी ने ऊँची आवाज़ में रीता को डांटना शुरू कर दिया। रीता बोली, मेरी बात तो सुनो माँ। माँ बोली, नहीं तुमने बिना ख़बर भेजें इतनी देर क्यों की? हम सभी लोग घर में बहुत चिन्तित हैं। माँ वही तो बोलने जा रही हूँ। थोड़ा शांत होते हुए माँ बोली ठीक है बताओ। नहीं माँ, पहले कुछ खाने को दो मुझे बहुत ज़ोर से भूख लगी है। तभी बोल पाऊँगी। ठीक है, माँ अंदर से कुछ लाई और वह खाने लगी, अब लंबी सांस लेते हुये बोली, माँ पिताजी कहाँ है? उन्हें भी बुलाओ। यह सारी बातें सुनकर उनको बहुत खुशी और मन को शांति भी मिलेगी। प्रभा, दीपक और सुनीता को भी मैं बुलाके लाती हूँ। यह जरूरी बातें उन लोगों को भी जानना आवश्यक हैं।

अब सब मेरी बातें ध्यान से सुनों। आज हम लोग दसवीं कक्षा के सभी विद्यार्थी कक्षा अध्यापिका के साथ मिलकर एक सभा पर गये थे। वहाँ ढेर सारे लोग, बहुत गुणी वैज्ञानिक और समाजसेवी सम्मिलित हुए थे। मुझे आज बहुत प्रसन्नता हुई जैसे हम लोग सोच रहे थे वैसा नहीं है। तुम लोगों को यह सुनकर आश्चर्य और साथ—साथ खुशी भी होगी क्योंकि हम लोगों को बहुत सारी महत्वपूर्ण बातें आजतक पता नहीं थी। जिसने यह सभा आयोजित की थी उस संस्था को ‘एन. जी. ओ.’ कहा जाता है। इसमें बहुत सारे लोग काम करते हैं और उन्हें वेतन भी मिलता है। उनके काम का वर्णन करते हुए रीता बहुत उत्सुलित हो गई और बोलने लगी सुनों इस तरह की संस्थाएं गाँव—गाँव में जाकर सभाओं का आयोजन करती हैं। इनमें गाँव के मुखिया को लेकर सभी गाँववासियों को बुलाया जाता है और तरह—तरह की बातें बताई जाती हैं। जैसे कि घर में और आस—पास में मिलने वाले पेड़—पौधों, पशु—पक्षियों को कैसे संरक्षित किया जा सकता हैं और इससे हम लोगों को वर्तमान और भविष्य में क्या—क्या लाभ होगा। इसके अतिरिक्त पेड़—पौधों को काटने से, पशु—पक्षियों को मारने से क्या—क्या भयानक परिस्थितियों का भविष्य में सामना करना पड़ेगा।

इसके ऊपर भी बताया जाता है। उन्होंने पौधों की हानिकारक गैसों को सोखने एवं उपयोगी गैसों को बातावरण में छोड़ने की उपयोगिता के विषय के बारे में भी बताया। देखिए पिताजी, हम सभी को यह बातें पता नहीं हैं और अगर कोई भी इसके ऊपर ध्यान न देकर ये सब गलतियाँ करते रहेंगे तो सोचिए यह पूरी मनुष्य जाति पृथ्वी से एक दिन लुप्त हो जायेगी। प्रभा और दीपक एक साथ ज़ोर से बोले, दीदी अब हमें क्या करना उचित होगा। इस संस्था का तो यही काम है। जैसे सभी लोगों को इसके बारे में ज्ञात कराना और सजग रखना जिससे वे ऐसे काम का विरोध करें। इस बार सुनीता बोली, रीता कभी—कभी हमें कई कामों के लिए बड़े पेड़ काटने पड़ते हैं तब क्या करना चाहिए? ठीक है इसके लिए भी उपाय है। अगर एक पेड़ काटना ही पड़े तो तुम और चार पेड़ लगाओ। हाँ! यह बात सही है। तुम चिन्ता मत करो, इन सब जानकारियों के लिए इस संस्था ने छोटी छोटी चित्रमय पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं जो कि मुफ्त में दी भी जाती है। जिससे अनपढ़ लोगों को यह बातें भी समझाई जा सके।

महिला के लिए वे काम करने में कोई पाबन्दी है क्या जिसमें पुरुष को अग्राधिकार देकर महिला को पीछे रखा जाता है? कभी नहीं, इस तरह की संस्था महिलाएँ बिना पुरुष को जोड़ते हुए भी बना सकती हैं। घरेलू महिलाएँ भी अपने घर का काम खत्म करके ये काम कर सकती हैं। इससे उनका मन भी बहल जायेगा और समाज का उपकार भी होगा। तब माँ बोली, तब तो विमला, रत्ना, प्रतिभा इन सभी को भी बुलाना चाहिए था। रीता बोली, माँ अभी नहीं, इन सब कामों के लिए ठीक तरह से नियमों के अनुसार आगे बढ़ना पड़ेगा। हाँ, ठीक है—माँ बोली।

सुनीता उत्साहित हो कर बोलने लगी, रीता हम लोग भी यह काम कर सकते हैं? क्यों नहीं जरूर कर सकते हैं। ऐसी संस्था गठन करने के लिये सर्वप्रथम सरकारी नियमों का पालन करना पड़ता है। उसके बाद धीरे—धीरे नियमों के अनुसार काम पर आगे बढ़ना पड़ता है। इसके लिए सरकार की तरफ से धन भी दिया जाता है। लेकिन पहले आप को पूरी संभावित कार्यप्रणाली के ऊपर एक प्रोजेक्ट बनाकर प्रस्तुत करना पड़ेगा। इसके बाद सरकार की तरफ से स्वीकृत होने



के बाद ही काम पर आगे बढ़ सकते हैं। एक बात सुनों, अभी हम सभी पढ़ाई छोड़ कर इस काम में कभी ध्यान नहीं दे सकते, लेकिन मदद जरूर कर सकते हैं। रीता की बातें सुनकर पहले तो सुनीता दुखी हो गयी परन्तु बाद में उसमें अपनी भागीदारिता देने को लेकर प्रासन्न हो गई और रीता से बोली हम कैसे इस कार्य में अपनी सहभागिता कर सकते हैं। रीता ने बताया कि छुटियों के दिनों में संस्था के विभिन्न पर्यावरणीय कार्यक्रमों में सहभागिता की जा सकती है। छोटे

बच्चों की टोलियों में इसकी उपयोगिता को जनसामान्य की भाषा में बताया जा सकता है।

माँ बहुत खुश दिखाई दी। पिताजी गर्व से बोलने लगे मुझे पहले से ही पता है मेरी लड़की बहुत समझदार है और वह जिंदगी में जरूर कुछ करके दिखायेगी। बाकी बंधुओं ने भी रीता की बातें सुनकर बहुत आनन्द प्रकट किया और भविष्य में कैसे काम करेंगे इसकी कल्पना में डूब गये।

पेड़ों से मानव प्यार करो।

मित्रों सा व्यवहार करो।

पेड़ लगाकर मानव तुम।

खुद अपना उपकार करो।



## नम्रता का भाव

कुमारी रूपेन्द्रिका  
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

एक गाँव के पास गहरा नाला था जिस पर एक संकरा पुल बना हुआ था। वह पुल इतना संकरा था कि उस पुल पर से एक समय में एक ही व्यक्ति नाला पार कर सकता था।

एक बार की बात है। दो व्यक्ति उस पुल पर विपरीत दिशाओं से आ रहे थे। पुल के मध्य में दोनों का आमना-सामना हुआ। पर उनमें से एक भी पीछे मुड़ना नहीं चाहता था। बात ही बात में दोनों भिड़ गये। वादविवाद ने हाथापाई का रूप ले लिया। कुछ ही क्षणों में वे दोनों पुल के नीचे आ गिरे। उनको चोटें लगीं और घायल हो गये।

कुछ दिन बीते। एक दिन दो बकरियां उसी पुल पर आमने-सामने से आ निकलीं। पुल पार करना दोनों का लक्ष्य था। पुल के बीच में वो दोनों मिली। कुछ देर तक दोनों खड़ी रही। थोड़ी देर बाद विपरीत दिशा से आने वाली पहली बकरी बैठ गई और दुसरी बकरी ने बड़े आराम से उसके ऊपर से पुल पार कर

लिया। पहली बकरी ने भी नम्रता के भाव से पुल पार कर लिया।

ये दो घटनाएं हैं। हमने पहली घटना में देखा कि नम्रता के अभाव में अथवा अहंकार के कारण दो व्यक्ति आपस में लड़ पड़े और घायल हो गये।

दूसरी घटना में एक बकरी ने नम्रता (झुकना) के कारण बिना कुछ विशेष कष्ट उठाये पुल को पार कर लिया।

कहने का भाव यह है

**कि 'नम्रता', सहयोग और प्यार की भावना व्यवहार जीवन का सफल सूत्र है।**

सहयोग और नम्रता से मुश्किल काम भी आसान हो जाते हैं। परस्पर सहयोग करने से अपनत्व की भावना पैदा होती है। जहाँ अपनत्व की भावना पैदा होती है वहाँ सदैव सुख और समृद्धि रहती है।



## गिर अभ्यारण्य का अविस्मरणीय सफर

डॉ. मीता शर्मा एवं सुश्री नूपुर शर्मा  
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

"जंगल" शब्द ही अपने आप में कौतूहल भरा है। घने बड़े-बड़े वृक्ष, कहीं-कहीं उनके बीच से झांकती अठखेलियाँ करती हुई सी सूर्य की किरणें, प्रत्येक पल किसी भयानक जानवर अथवा कीड़ों के गूँजते स्वर, घास के सपाट मैदान, कहीं कलकल बहती नदियों का पानी और दूर तक फैली पहाड़ियाँ। शहरों की भीड़भाड़ से कोसों दूर प्रदूषण रहित वातावरण और भयानक जानवरों से परिपूर्ण जंगल किसी को भी आकर्षित कर सकता है। और फिर यदि वो गुजरात प्रांत का सुप्रसिद्ध "गिर" हो जो संपूर्ण एशिया महाद्वीप में एशियाई सिंह की खत्म होती प्रजाति का आखिरी घर माना जाता है, तो यह सफारी रोचक होना लाज़मी है।

चारों ओर साग के वृक्षों से सजा गिर सिर्फ एशियाई शेर ही नहीं अपितु अन्य कई जानवरों, पक्षियों, कीट-पतंगों का घर है। तितलियों की विविध प्रजातियों पर अनुसंधान के दौरान ही गिर और यहाँ के पशु-पक्षियों की गतिविधियों को करीब से देखने का मौका मिला। यहाँ की आम भाषा में तितली को "फूदड़ी" कहते हैं। भिन्न-भिन्न रंगों की खूबसूरत तितलियाँ भी गिर की शोभा बढ़ाती हैं। करीब सौ प्रजाति की तितलियों की पहचान इस अनुसंधान परियोजना में की गई। फूलों से रस लेते हुए तो सभी ने इन्हें देखा है, परन्तु गीली मिट्टी पर समूह में रस लेते हुए शायद ही कभी देखा हो। बारिश के मौसम में यह नजारा यहाँ आम है। सड़क के किनारे जमा पानी और कीचड़ पर पीले व नीले रंग की तितलियाँ मंडराते देखना काफी रोचक है।

गिर जितना खूबसूरत है उतना ही खूबसूरत यहाँ के लोगों का व्यवहार है। गिर जंगलों के बीच "मालधारी" जाति



के लोग निवास करते हैं। ये लोग चाय हमेशा कप में ही नहीं बल्कि प्यालियों में पीते हैं। मालधारियों के घरों में मिलने वाली चाय थोड़ी अधिक मीठी होती है। वे यहाँ अपनी गाय, भैसों को चराते हैं और शेरों के साथ बड़े आराम से रहते हैं। अनेकों बार इनका सामना शेर से होता है परन्तु शायद मानो शेर भी इन्हें अपने जंगल का हिस्सा मान इनपर हमला कम ही करते हैं। इसी प्रकार यहाँ काम करने वाले कर्मचारी भी जंगल में खाकी रंग पहनते हैं तथा अपने पास डंडा रखते हैं। शेर के समीप ये लोग ऐसे निर्भय घूमते हैं मानो वो इनका मित्र हो।

अपने सामने शेर को देखने का अनुभव ही निराला है। किसी भी काले रंग की वस्तु को देख शेर उसे भैस समझ बैठता है और हमला करने को तैयार हो जाता है। यह व्यवहार पहली बार यहाँ आकर पराविया में देखने को मिला। अगर भूख ना हो तो शेर अपने समीप खड़े प्रिय भोजन हिरण को भी छोड़





देता है। शिकार के लिए तैयार शेरनी और व भागने के लिए तैयार हिरण का खेरम्भा थाने के समीप का दृश्य सचमुच अदभुत था। किस प्रकार दो शेरनियाँ हिरण के झुंड को देख धीरे-धीरे उनके समीप पहुँचती हैं, वहीं दूसरी ओर हिरण जिन्हें पता चल चुका है कि शेर उनके शिकार के लिए ताक में है और उनकी एक भी गलती उनकी जान ले सकती है, धीरे-धीरे अपने झुंड में मौजूद छोटे हिरणों को आगाह कर उनकी सुरक्षा को प्राथमिकता देते हुए उन्हें बचाने का प्रयत्न करते हैं। सूर्यास्त का समय होने से आगे का दृश्य हम देख नहीं पाए।

अगर शेर से भी खतरनाक शिकारी गीर में था, तो वो था तेंदुआ। ये कभी झुंड में नहीं रहते, वसपञ्चलद्ध और जंगल में किसी पथर की बिन्डी पर अथवा गन्ने की लंबी लंबी फसलों के बीच छिपे रहते हैं। गन्ने की फसल में इसे काटने वाले किसान, जंगली सुअर आदि आते रहते हैं और तेन्दुए को आसानी से शिकार मिल जाता है। ये अक्सर रात में ही शिकार करते हैं और सीधा पीछे से गर्दन पर आक्रमण करते हैं जिससे मृत्यु निश्चित है। तेन्दुए के पास में होने पर हिरण एक अजीब सी आवाज़ निकालकर अपने साथियों को इस आने वाले आतंक का संकेत देते हैं। जंगल भ्रमण के दौरान हमने भी इस आवाज़ को सुना और उत्सुकतावश इधर-उधर देखा परन्तु तेन्दुए जैसे चालाक जीव का कोई नामोनिशान नहीं देख सके। शायद गाड़ी की आवाज़ सुनते ही ये पल भर में ओझल हो जाते हैं। तेन्दुए के इस व्यवहार को जानना भी दिलचस्प था।

शेरों के व्यवहार के बारे में एक खास बात यह है कि वे टैरिटरी (territory) बनाकर रहते हैं अर्थात् एक टैरिटरी में

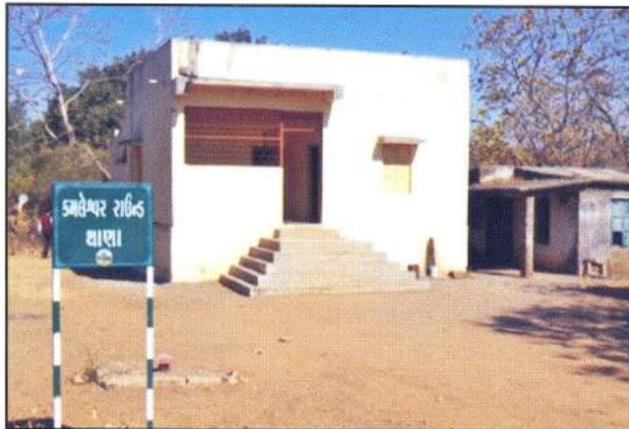


2-3 वयस्क नर शेर, 5-6 मादा शेर एवं उनके शावक पाए जाते हैं। कोई भी नर शेर किसी अन्य नर शेर की टैरिटरी में प्रवेश नहीं करते और यदि करे तो एक भयंकर युद्ध होता है। ऐसा तभी होता है जब शेर को अपनी टैरिटरी का विस्तार करना होता है। शेरनियाँ भी अपने समूह (pride) से बाहर की शेरनियों को प्रवेश नहीं देती हैं। नर शेर अपनी टैरिटरी की सीमा पर पहरा देते हैं तथा शेरनियाँ शावकों के भोजन की व्यवस्था करती हैं। इसलिए शिकार का कार्य अधिकतर शेरनी ही करती है। शेर कभी भी मृत रखा मांस नहीं खाते, ये भी उनकी खासियत है। शेर की उम्र का अंदाज़ा उनके बालों की संख्या व पूँछ की लंबाई से लगाया जा सकता है। घने बाल (mane) शेर के स्वरूप होने का संकेत है परन्तु गर्भी में यही बाल इनकी परेशानी का कारण बन जाते हैं। शेरनी भी घने बाल वाले शेर की ओर आकर्षित होती है। वृद्धावस्था में शेर के पैर खराब होने लगते हैं। इनके मांस खाने वाले दांत भी गिर जाते हैं जिससे ये खाने में असमर्थ हो जाते हैं और अन्त में इनकी मृत्यु हो जाती है।

एशियाई सिंह की खत्म होती प्रजाति को बचाने हेतु "रेस्क्यु सेंटर गिर" एक सशक्त प्रयास है। यहाँ बीमार या घायल शेर, तेंदुए जंगल से पकड़कर लाए जाते हैं एवं उनका इलाज किया जाता है। इनकी देखरेख के लिए डॉक्टर मौजूद रहते हैं। ठीक होने के पश्चात् जानवरों को दोबारा जंगल में छोड़ दिया जाता है। मृत शेर का पोस्टमोर्टम भी यहीं किया जाता है। मृत्यु के कारणों को बारीकी से जाँच कर उन पर गौर किया जाता है और सिंह को बचाने का हर संभव प्रयास किया जाता है। इसी के समीप एक क्रोकोडाइल ब्रीडिंग सेन्टर भी खोला गया है जहाँ पानी की समस्या से जूझ रहे गिर से मगरमच्छों को लाकर रखा गया है। इन्हीं के अनुसार यहाँ तापमान भी ठंडा रखा गया है और कमलेश्वर बाँध के घटते स्तर से मगरमच्छों की घटती संख्या को सामान्य रखने में यह एक सफल प्रयास है।

अमिताभ बच्चन ने अपने गिर भ्रमण के अनुभव के आधार पर कहा था, यदि स्वर्ग सा अहसास है तो कमलेश्वर बाँध में। कमलेश्वर बाँध देखने के बाद इस बात का अहसास हुआ।





पहाड़ियों के बीच बना बाँध और चारों तरफ बहता पानी, यहाँ पर बनी पगड़ंडी, एक लाइट हाउस नुमा बिल्डिंग से ये सारा नज़ारा इतना प्रिय दिखाई देता है कि बस प्रकृति को निहारते ही रह जायें। कमलेश्वर मगरमच्छों को देखने का सटीक स्थान है। बारिश के मौसम में यहाँ भारी मात्रा में इन्हें तैरते अथवा धूप सेकते देखा जा सकता है। सर्दियों में धूंध के बीच से दिखता संकरा मार्ग अद्भुत है। कहते हैं इस ऊँची झारोखे नुमा बिल्डिंग में कभी कभार तेन्दुए भी आकर विश्राम करते हैं। गिर आने वाले पर्यटकों के लिए कमलेश्वर सबसे पसंदीदा जगह है। इसी प्रकार देवलिया भी देखने लायक है। यदि जंगल सफारी के दौरान शेर दिखाई ना दे तो यहाँ जंतुआलय में या खुले में देखा जा सकता है। संग्रहालय द्वारा यहाँ के जीवन को अच्छे से समझा जा सकता है।

सर्दी व वर्षा ऋतु में गिर आने का अलग ही मज़ा है। सर्दियों में कोहरे से ढका कमलेश्वर जाने का रास्ता अत्यंत मनमोहक लगता है। धुंध के बीच से झांकती सूर्य की किरणों का दृश्य देखते ही बनता है। ऐसे मौसम में शेर के भी प्रातः काल कभी कभार टहलते हुए दिखाई देने की संभावना बढ़ जाती है। एक बार तो करीब आधे घंटे तक शेर को सैर करते देखना आश्चर्यजनक रहा। परन्तु काफी पर्यटकों को जंगल की जीप में देख शेर भी परेशान हो उठते हैं एवं घने वन की ओर प्रस्थान करते हैं। वर्षा ऋतु में जंगल के काफी रास्ते बंद हो जाते हैं इसलिए पर्यटकों के लिए गिर देखना इस काल में निषिद्ध होता है। किन्तु अनुसंधान कार्य की वजह से हमें ये सौभाग्य प्राप्त हुआ। सचमुच इस मौसम में गिर की शोभा देखते ही बनती है। चारों ओर फैली हरितिमा आंखों को बहुत सुकून पहुँचाती है। कहीं-कहीं तो मार्ग में घास इतनी बढ़ जाती है कि रास्ता भी दिखाई नहीं देता। बारिश में ऐसी घाटियों को पार करना रोमांच से भरपूर था। ऐसे में वहाँ की बिना दूध की चाय जिसमें वे लोग अश्वगंधा के पत्ते व लेमन ग्रास मिलाते हैं जो चाय के स्वाद में चार चौंद लगा देते हैं, भी कमाल लगी। करमदरी के आस पास का क्षेत्र काफी आकर्षक

था किन्तु भारी वर्षा में बंद होते रास्ते के डर से हमें जल्दी लौटना पड़ा।

यहाँ आकर यह देखना काफी दयनीय था कि जंगल में बने थानों पर कर्मचारी 3.4 महीनों तक अपने परिवार से कोसों दूर कैसी स्थिति में रहते हैं और भारी वर्षा में तो रोज़मरा का सामान भी लाना कितना मुश्किल हो जाता है, ऐसी विपरीत परिस्थिति में भी हँसते मुस्कराते हुए जीना कोई इन लोगों से सीखें। मेहमान नवाजी में भी इन लोगों का कोई जवाब नहीं है। इन लोगों के कठिन जीवन को देख महसूस हुआ कि शहरवासियों का जीवन तो कुछ भी नहीं है, आराम की सभी व्यवस्थायें उपलब्ध हैं फिर भी हम बेवजह परेशानियों का रोना रोते हैं। चौबीस घंटे चौकस रहना, पहरा देना और पल पल की खबर अफसरों को देते रहना कोई मामूली बात नहीं है। अनेक कर्मचारी (trackers) शेरों के झुंड के साथ भी काफी वक्त बिताते हैं। रेडियो कॉलर की तकनीक द्वारा ये लोग शेरों की लोकेशन का पता लगाते हैं और उन्हें ढूँढकर उनकी स्थिति का ध्यान रखते हैं। कोई बीमारी या घाव आदि दिखने पर ये लोग रेस्क्यु सेंटर को बताते हैं। परिणामस्वरूप घायल शेर को ले जाया जाता है तथा उनका उपचार किया जाता है। कई बार ये शेरों के आस पास ही रात में सो जाते हैं और आँख खुलने पर अपने चारों ओर शेरों को पाते हैं। इससे खतरनाक शायद ही कोई कार्य इस दुनिया में हो सकता है। "खतरों के खिलाड़ी" सही मायने में यही लोग हैं और गीर की खूबसूरत दुनिया के लिए यही कर्मचारी जिम्मेदार हैं।

अनेकों बार गिर अभयारण्य देखने के बाद भी दोबारा वहाँ जाने का उत्साह कम नहीं होता। विभिन्न रेन्जों जैसे कि डेडकड़ी, विश्वदार, अन्कोलवाड़ी, जामवाला, छोडवडी के बाजाने पहचाने रास्ते, पेड़-पौधे, कमलेश्वर बाँध, देवलिया इंटरप्रेटेशन सेंटर आदि अनगिनत जगह जितनी बार देखो, कम ही प्रतीत होती है। प्रत्येक बार देखने पर भी वह नयी सी ही लगती है, शायद यही यहाँ की खूबसूरती है। और इस खूबसूरती का कभी अंत ना हो, यही गुज़ारिश है।





## हिंदी नाटक

## मेरा गाँव

श्री रमेश सिंह

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

## दृश्य-1

सूत्रधार — गढ़वाल का एक भरा—पूरा गाँव। उसी गाँव में एक अच्छा मकान है जिसमें लच्छू सिंह अपने परिवार के साथ रहता है। लच्छू सिंह बड़ा ही होनहार आदमी है। उसकी गाँव में एक दुकान है और अच्छी खेती—बाड़ी वाला व्यक्ति है।

लच्छू सिंह की बेटी लक्ष्मी एक के हाथ में सब्जी का डिब्बा और रोटी का बण्डल दूसरे हाथ में पानी की बोतल लिए पगड़ंडियों पर तेज गति से चलती हुई खेत में पहुँचती है। खेत में लच्छू काम कर रहा है। खेत के किनारे पहुँच कर।

लक्ष्मी: बाबा ..... रोटी खा लो।

लच्छू: हाँ! आ रहा हूँ।

(लच्छू काम छोड़ कर पास के प्राकृतिक जल स्रोत में हाथ मुँह धोकर आता है। रामी सब्जी का डिब्बा खोलती है और रोटी निकाल कर लच्छू को देती है।)

रामी: किशन के लिए पैसों को इंतजान हो गया?

लच्छू: हाँ भई हाँ, पैसों का इंतजाम मैंने पहले से किया हुआ है, तू क्या समझती है।

रामी: हाँ हाँ जानती हूँ वैसे तो तुम बहुत समझदार हो। कितने पैसे मंगायें हैं?

लच्छू: पचास हजार।

रामी: पैसा ले कर कब जाओगे?

लच्छू: आज ही जाना है।

रामी: चलो फिर देर मत करो। ले लक्ष्मी, तू ये भाँडे बरतन ले जा और रोटी खाकर स्कूल चली जाना। चलो जी तुम भी चलो। टाइम से निकल जाना।

(लक्ष्मी डिब्बा और बोतल हाथ में लेकर उछलती कूदती हुई चली जाती है।)

## दृश्य-2

लच्छू बैग कन्धे पर टांगकर गाँव की पगड़ंडी पर चलता हुआ सड़क की ओर जा रहा है रास्ते में मंगल सिंह उसको मिलता है, जो प्रधान का खास आदमी है और शराब बेचने का काम करता है।

मंगल: हाँ भई लच्छू आज सजधज के कहां चले?

लच्छू: जरा देहरादून तक जा रहा हूँ।

मंगल: अच्छा! बेटे के पास जा रहा होगा?

लच्छू: हाँ भाई, और तेरी सवारी?

मंगल: अरे कहते हैं ना “मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक” बस ऐसे ही जरा प्रधान जी के घर तक।

लच्छू: मंगल! प्रधान जी की शय पर तू जो उल्टे सीधे काम करता है ना, इसकी वजह से एक दिन तू बहुत पछतायेगा।

मंगल: मैं क्या उल्टे सीधे काम कर रहा हूँ यार?

लच्छू: देख सबसे बुरा काम तेरा दारू बेचने का है, जिससे तू अपनी मुसीबत तो बुला ही रहा है साथ ही गाँव के जवान बच्चों को दारू पीना सिखा रहा है। इसकी वजह से हमारे गाँव की नई पीढ़ी बरबाद हो रही है।

मंगल: अरे बेकार की बात मत करो यार, कौन सा मैं उनके घर जा रहा उन्हें जबरदस्ती दारू पिलाने। अरे भई वो मेरे पास आते हैं, दारू मांगते हैं तो देनी ही पड़ती है।

(मंगल बुरा सा मुँह बनाकर चला जाता है।)

## दृश्य-3

किशन अपने वार्ड से निकलकर बाहर आ रहा है और गैलरी से होता हुआ मुख्य द्वार की ओर आ रहा है। उधर से नैना भी अपने वार्ड से निकलती है, दोनों गैलरी में मिलते हैं।

नैना: अब यह हमारा फाइनल इयर है, इसके बाद हम डाक्टर। अच्छा डॉ. किशन तुम यहाँ से पासआउट होने के बाद क्या करोगे? मेरा मतलब अपना क्लीनिक या सरकारी अस्पताल?

किशन: मेरा सब कुछ भगवान की मर्जी पर है। पहले तो घर जाऊँगा फिर सोचूंगा। तुमने क्या सोचा है?

नैना: अभी तो कुछ नहीं। अच्छा हाँ! आज शाम को मेरे घर आ जाना, मेरे भाई का जन्मदिन है। पापा हर साल भाई के जन्म दिन पर पार्टी देते हैं।



(इतने में नैना के पिता हैं जो चीफ मेडिकल ऑफिसर आते हैं। वे किशन को अच्छी तरह जानते हैं। वे भी आकर बातचीत में शामिल हो जाते हैं।)

डाक्टर: हूँ क्या बातें हो रही हैं भई ?

नैना: आं, कुछ नहीं, मैं किशन से कह रही थी कि शाम को पार्टी में आ जाना।

डाक्टर: हाँ भई किशन, मैं तो भूल ही गया था। शाम को जरूर आ जाना।

(इस बीच सामने से किशन के पिता आते हैं, किशन उन्हें देख कर तुरन्त आगे बढ़कर उनके पैर छूता है।)

किशन: डाक्टर साहब, ये मेरे पिताजी हैं। पिताजी, ये डाक्टर साहब, मेरे सीनियर।

(दोनों एक दूसरे का अभिवादन करते हैं)

डाक्टर: अरे भई किशन, शाम को पार्टी में अपने पिता को भी जरूर लेते आना।

(किशन हाँ में गरदन हिलाता है और अपने पिता को लेकर निकल पड़ता है।)

#### दृश्य-4

(गाँव में ग्रामप्रधान के लिए चुनाव का समय है। प्रधान और उसके आदमी बैठे हैं उनके आगे कांच के गिलास, नमकीन और सलाद रखा है। मंगल का प्रवेश होता है।)

मंगल: नमरते प्रधान जी।

प्रधान: आओ मंगल क्या खबर है ?

मंगल: ये लच्छू अपने आप को बहुत समझता है।

प्रधान: क्यूँ ?

मंगल: अरे प्रधान जी जब से उसका लड़का शहर में डाक्टरी पड़ने गया है, तब से अपने को कुछ ज्यादा ही समझने लगा है।

प्रधान: कुछ कहा क्या ?

मंगल: कहेगा क्या, बस कह रहा था कि प्रधान की बातों में आकर ये दारु बनाने का धंधा छोड़ दे नहीं तो पछतायेगा।

प्रधान: (गुस्से में) अच्छा! परसो बोटिंग है तुम लोग ध्यान रखना। पैसे की परवाह मत करना अपनी सीट हिलनी नहीं चाहिए बस। मैं कुछ नहीं जानता। मंगलू! चुनाव के दिन और उसके बाद दारु की कमी नहीं होनी चाहिए। समझो। शेरू कल लच्छू को यहाँ बुला लाना।

शेरू: अच्छा प्रधान जी

#### दृश्य-5

(प्रधान के घर पर जाता है, प्रधान के कमरे में सभी गुर्गे बैठें हैं और शराब पी रहे हैं। लच्छू का प्रवेष)

प्रधान: आओ भई लच्छू आओ।

लच्छू: (झिझकते हुए) आपने मुझे बुलाया था, कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ

प्रधान: अरे सेवा को मार जाऊँ इधर बैठ, लगा रे एक गिलास और अपना लच्छू भाई आया है।

(एक व्यक्ति गिलास लाकर लच्छू के आगे रखता है, दूसरा बोतल से शराब डालने लगता है लच्छू उस पर हाथ रखकर कहता है)

लच्छू: माफ करना प्रधान जी मैं इसका सेवन नहीं करता।

प्रधान: अरे पी ले, सभी पीते हैं, कुछ नहीं होता। विदेशी है।

लच्छू: नहीं प्रधान जी देशी हो या विदेशी मैंने आज तक जिंदगी में इसका स्वाद नहीं चखा, इसलिए मुझे माफ करें। (खड़ा हो जाता है) अच्छा चलता हूँ कुछ काम हो तो बुलवा लेना। (चला जाता है)

#### दृश्य-6

सूत्रधार — कुछ समय बाद परिणाम का दिन आता है और पूर्व प्रधान ही जीत कर फिर प्रधान बन जाता है। (प्रधान बहुत खुश है उसके आदमी दावत उड़ा रहे हैं। प्रधान अपने आदमियों से कहता हैः)

प्रधान: 'सारा गाँव मेरे इशारे पर नाचता है और वो लच्छू.... धिक्कार है, यार तुम पर, जो एक आदमी को काबू नहीं कर पा रहे हो।'

चमचा: (जेब से चाकू निकालकर) क्या बात कर दी प्रधान जी आपने, कहो तो ... (इशारा करता है।)

प्रधान: 'नहीं नहीं, ऐसे नहीं। उसे अपने ही रंग में ढाल कर दिखाओ। अरे उससे दोस्ती करो, उसे अपने रंग में ढालो तो बात बने।'

भण्डारी: अच्छा प्रधान जी अब देखो भण्डारी का कमाल। एक हफ्ते में लच्छू आपका हुआ।

प्रधान: शाबाश, देखते हैं तेरा कमाल भी।

#### दृश्य-7

(भण्डारी लच्छू की दुकान पर आते हैं।)

भण्डारी: और भई लच्छू कैसी चल रही दुकानदारी।



लच्छूः ठीक ही चल रही है।

कीडूः क्यों तुम्हें क्या मतलब, मुझे लगता है आज यहां आने का कुछ विशेष कारण है।

भण्डारी: नहीं भई ऐसी कोई बात नहीं, हमें लच्छू की आदत बहुत अच्छी लगती है। बहुत अच्छा आदमी है इसलिए, कहते हैं कि जैसी संगत करो वैसा गुण आता है। शायद लच्छू की संगत करके हम भी सुधर जाएं।

कीडूः 'वाह नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज को, अरे मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम यहां क्यों आये हो।'

लच्छूः तू चुप कर यार, भण्डारी जी आए हैं, कुछ चाय—वाय का इंतजाम कर।

भण्डारी: भई लच्छू उस प्रधान को देखकर तो सारा गाँव डरता है पर तू बिलकुल नहीं डरता। एक तू ही है गाँव में जो प्रधान से नहीं डरता।

लच्छूः अरे डरने की क्या बात। अपना कमाना अपना खाना, तो डर काहे का। डरे वो जो उसकी दया पर बच्चे पाल रहा हो, यहां तो भगवान की दया से सब ठीक ठाक चल रहा है।

भण्डारी: अरे उसकी दया वया क्या। सरकार देती है और वह बांटते हैं। प्रधान जी बहुत अच्छे इंसान हैं, बोल तुम्हें भी चाहिए तो प्रधान जी से सिफारिस लगाते हैं पाँच—दस हजार रुपये दिलवा देंगे। भैंस तेरे पास है ही। देखने वाले आएंगे तो उसे दिखा देना।

लच्छूः ना भई, ये मेरे बस का नहीं, भगवान का दिया सब कुछ है।

भण्डारी: अरे वो भी भगवान का दिया समझकर रख लेना। कौन सा प्रधान जी तुम्हें दया करके भीख दे रहे हैं वो सरकार की स्कीम है। सरकार किसके लिए ? जनता के लिए, सरकार की स्कीम का फायदा जनता न उठाए तो कौन उठाएगा।

कीडूः हाँ! अब जरा इतना और बता दो कि उसमें प्रधान की कमीशन कितनी होगी।

(लच्छू उसे चुप रहने का इशारा करता है)

भण्डारी: भई कमीशन कैसी, वो तो लगता ही है। अब पहले प्रधान जी भैरीफाई करेंगे, तब पटवारी है, उसने भी घुच्ची मारनी है। फिर तहसील भी जाना पड़ेगा, अब प्रधान जी इतनी भाग दौड़ करेंगे तो आने जाने का किराया तो बनता ही है, बस।

(इस बीच कीडू चाय देता है। भण्डारी चाय पीता हैं और वहां से चला जाता है)

कीडूः मामा इनके कहने में मत आ जाना।

लच्छूः क्या तू मुझे इतना बेवकूफ समझ रहा है।

सूत्रधार — इस प्रकार हर दूसरे तीसरे दिन आते हैं और धीरे-धीरे बातों ही बातों में गुर्गे उससे दोस्ती कर लेते हैं। वे उसे अपने रंग में ढालने की कोशिश करते हैं। कहते हैं कि संगत का असर तो होता ही है। धीरे-धीरे लच्छू उनके कब्जे में आ जाता है।

## दृश्य-8

(भण्डारी और तेजू दुकान पर आते हैं लच्छू उन्हें इज्जत से बैठाता है)

लच्छूः आओ आओ बैठों। कीडू जरा चाय का इंतजाम कर बैठा।

भण्डारी: चाय रहने दो लच्छू भाई। सर्दी बहुत है, पिछले पहाड़ पर बर्फ पड़ी है ठण्ड से हालत खराब है।

कीडूः तो चाय से गरम हो जाओगे।

तेजूः नहीं भई चाय नहीं, चाय से काम नहीं चलने वाला।

कीडूः क्या अंगूर की बेटी चाहिए, वो यहां नहीं आती।

भण्डारी: अरे अंगूर की बेटी हमने अपने साथ ला रखी है वो भी विदेशी। अंग्रेजी है, घोर। लाओ गिलास—विलास दो जरा।

लच्छूः कीडू ले ये गिलास जरा छाल दे और पानी भी दे।

(कीडू चिढ़ता है, फिर भी अनमने मन से वो गिलास धोकर देता है और एक मग में पानी भी।)

तेजूः एक गिलास और दे भई।

कीडूः क्यों? दो आदमियों के लिए दो गिलास काफी नहीं हैं। और कोई भी आ रहा है क्या?

तेजूः नहीं और तो कोई नहीं आ रहा है पर आज इतनी ठण्ड है कि खून जम रहा है, थोड़ी सी लच्छू भाई भी ले लेगा तो गरमी आ जाएगी।

लच्छूः (कीडू की तरफ देखकर कहता है) नहीं भई मैं ये काम नहीं करता, मुझे माफ करो।

भण्डारी: अरे ले ले यार, घोर चीज है, ऐसी—वैसी नहीं है। कच्ची—पक्की ठेका ब्राण्ड हम इस्तमाल ही नहीं करते। यह तो विदेशी माल है, बस एक पैग लेकर तो देखो। हम तुम्हें बिगाड़ना थोड़ी चाहते हैं। ठण्ड बहुत है थोड़ी सी पी लोगे तो दुकान में बैठना आसान हो जाएगा।



**सूत्रधार** – (लच्छू न चाहते हुए भी एक पैग पी लेता है। थोड़ी देर में दोनों चले जाते हैं। लच्छू को उस एक पैग से ठण्ड में जरा सकून सा महसूस होता है। 1–2 दिन बाद फिर वे आते हैं और फिर से वही सिलसिला चलता है इस बार लच्छू दो पैग पी लेता है इस प्रकार धीरे-धीरे प्रधान के साथी उसे शराब पीना सिखा देते हैं और वह शराब पीने का इतना शौकीन हो जाता है कि उसे शराब पिये बिना नींद ही नहीं आती। ....)

### दृश्य-9

**सूत्रधार** – (शहर में किशन पैसे की इंतजार करता रहता है किन्तु पैसे नहीं आते वह उदास सा बैठा है)

**नैना:** क्या बात आज भी उदास बैठे हो फिर घर की याद आ रही है?

**किशन:** नैना लगता है मेरी इतने साल की मेहनत बेकार चली जाएगी। अब मैं क्या करूँ।

**नैना:** बात क्या हुई कुछ बताओगा भी या यूँ ही।

**किशन:** क्या बताऊँ नैना, घर से फीस मंगाई थी अभी तक नहीं आई। लगता है घर में कुछ परेशानी है।

**नैना:** आ जाएंगे। थोड़ी देर हो भी गई तो क्या है आ जाएंगे, पैसे। इसमें इतना मायूस होने की क्या बात है।

**किशन:** नहीं नैना मैं कल घर चला जाऊंगा, अब मुझे लगता है कि मेरे घर के हालात ठीक नहीं हैं इसलिए पैसे नहीं आ रहे।

**नैना:** तुम कहीं नहीं जाओगे। हिम्मत क्यूँ हारते हो कुछ न कुछ हो जाएगा। (नैना चली जाती है और किशन सोच में बैठा है)

### दृश्य-10

(किशन मायूस बैठा है, नैना के पिता आते हैं।)

**डाक्टर:** क्या बात है किशन, नैना बता रही थी कि तुम्हारी फीस नहीं आई।

**किशन:** जी डाक्टर साहब, हर बार तो खबर जाते ही पिताजी फीस लेकर दौड़े चले आते थे पर इस बार दो सप्ताह बीत जाने पर भी कोई खबर नहीं। पता नहीं घर पर सब ठीक है या नहीं।

**डाक्टर:** इसका मतलब तुमने हमें अपना नहीं समझा। ऐसी कोई परेशानी थी तो कहा क्यूँ नहीं, हम क्या पराये हैं।

**किशन:** ऐसी तो कोई बात नहीं, आप ही के भरोसे तो मैं इस अजनबी शहर में हूँ।

**डाक्टर:** तो ठीक है, तुम कहीं नहीं जाओगे मैंने तुम्हारी फीस का इंतजाम कर दिया है।

**किशन:** क्या आपने?

**डाक्टर:** हाँ। क्यों? कुछ बोझ लगे तो जब कमाने लगोगे तो लौटा देना। मैं कोई अहसान नहीं कर रहा तुम पर, यह तो मेरा फर्ज है, आखिर तुम इस इंस्टीट्यूट के सबसे होशियार डॉक्टर हो, तुम्हारी मदद करने में मुझे खुशी होगी।

**किशन:** (रुआंसा होकर) थैक्यू डाक्टर साहब थैक्यू वेरी मच, मैं आपका यह अहसान कैसे चुकाऊँगा, (नीचे झुक कर उनके पैर छू लेता है वह उसे आशीर्वाद देते हैं और अपने गले लगा लेते हैं।)

### दृश्य-11

**सूत्रधार** – गांव में किशन का भाई परेशान है जंगल गायों को चरा रहा है। बांसुरी बजा रहा है इस बीच स्कूल में साथ पढ़ने वाली लड़की ऊंधर से घास लेकर जा रही है। बांसुरी की धुन सुनकर उसकी ओर आती है।

**बीना:** अरे रोशन तुम। क्या बात है बड़ी खुदेड़ (मार्मिक) बांसुरी बजा रहे हो।

**रोशन:** हाँ बीना, क्या करूँ यार मेरे तो रोने के दिन किस्मत में लिखे हैं। मैं बहुत परेशान हूँ आगे पढ़ना चाहता था पर क्या करें बाप के पास दाढ़ पीने के लिए पैसे हैं पर हमारी पढाई के लिए। दुकान थी वह भी पिट गई। अब क्या करूँ समझ नहीं आ रहा।

**बीना:** घबराते क्यों हो, देखों ज्यादा पढ़ लिख कर भी नौकरी पाना इतना आसान नहीं है। तुम्हारे पास दुकान है उसे तुम सम्भालो और पिता को आराम करने दो। दुकान में बैठोगे तो दुकान फिर से चल पड़ेगी और तुम पढाई भी कर सकोगे और घर परिवार की देखभाल भी अच्छी तरह से कर सकोगे।

**रोशन:** शायद तुम ठीक कह रही हो।

**बीना:** अपना ध्यान रखना और जैसा कहा कर के देखो ..... अच्छा चलती हूँ देर हो गई। (जाती है।)

### दृश्य-12

(रोशन खड़ा होकर दुकान को निहार रहा है)

**कीड़ू:** क्या देख रहा है रोशन। मैंया अब तू बड़ा हो गया है, मामा जी के बस का कुछ रहा नहीं इसलिए तू इस दुकान को सम्माल वरना सब नष्ट हो जाएगा।



रोशन: हाँ वो भी ऐसे ही कह रही थी।

कीड़ू: कौन?

रोशन: कुछ नहीं ऐसे ही।

कीड़ू: हूं समझ गया खैर मैंने समझाना था समझा दिया आगे तेरी मर्जी।

**सूत्रधार** – (उसे समझ में आ जाता है, अब उसने दुकान सम्भाल ली धीरे-धीरे दुकान चलने लगती है।)

### दृश्य-13

**सूत्रधार** – मेडिकल का रिजल्ट आता है। किशन परीक्षा में अवल रहता है।

नैना: बधाई हो किशन, कान्यैचूलेशन, तुमने तो कमाल कर दिया।

किशन: तुम्हें भी नैना, तुमने भी कम कमाल नहीं किया है।

नैना: अच्छा किशन अब आगे क्या इरादा है। मेरा मतलब सरकारी प्रेक्टिस या अपना कुछ?

किशन: इस बारे में तो कुछ सोचा नहीं। पहले घर जाऊँगा माँ – पिताजी को यह खुशखबरी दे कर फिर विचार करूँगा कि क्या करना है।

(वह अपने घर जाने की तैयारी कर रहा है। नैना उसे मायूसी से देख रही है।)

### दृश्य-14

**सूत्रधार** – किशन गांव में पहुँचता है। उसे देखकर उसके माता पिता और बहन बहुत खुश होते हैं। सबको बुलाते हैं : देखो मेरा बेटा डाक्टरी पास करके आ गया है। देखो मेरा भाई डाक्टर बन गया है। बाप दारू पीता है और गाँव के लोगों को भी दारू पिलाता है। सब बड़े खुश हैं। लेकिन किशन एक ओर जहाँ गाँव आने पर खुश होता है वहीं दूसरी ओर पिता की हालत देखकर उसे बड़ा दुख होता है। गांव के लोग धीरे-धीरे उसके पास आते हैं और उससे बात करते हैं।

रात को अचानक गांव में रहने वाले रामू के बच्चे की तबीयत खराब हो जाती है। बच्चे की माँ मालती अपने सास ससुर को बुलाती है।

मालती: पिता जी देखिए बबलू को क्या हो गया लगातार उलटी कर रहा है और पेट में दर्द से तड़प रहा है।

दादा: क्या हुआ बेटा, कुछ उल्टा सीधा तो नहीं खा लिया।

दादी: अरे हटो लगता है किसी की नजर लग गई है। लाओ इधर लाओ।

(गांव की रीति रिवाज के अनुसार झाड़-फूंक करती है उसे कोई फरक नहीं पड़ता।)

दादी लगता है कोई गंदा साया है जो मेरे बच्चे को परेशान कर रहा है। अरे जरा पंडित को बुला लाओ कोई।

(एक लड़का दौड़ कर पंडित को बुला लाता है। पंडित आता है।)

पंडित: लगता है कहीं पीपल के पेड़ पास चला गया वहां गंदा साया है। घबराओं नहीं अभी ठीक हो जाएगा। (वह भी भूमूल लेकर झाड़ फूंक करता है, पर कोई फर्क नहीं पड़ता)

दीनू: अरे इसे तो कोई फरक नहीं पड़ रहा। ये तो रोये ही जा रहा है। मेरी सलाह मानों तो अपने लच्छू का बेटा आज ही डाक्टरी पास करके आया है, एक बार उसे दिखा दें तो कैसा रहेगा।

(सब उसकी सलाह मान लेते हैं और बच्चे को किशन के पास लाते हैं)

मालती: अरे बेटा किशन, जरा देख तो मेरे बेटे को क्या हो गया।

किशन: क्या हुआ चाची।

मालती: पेट में दर्द बता रहा है और उल्टियां कर कर के बेहाल होकर गिर पड़ा।

किशन: हटो यहाँ लाओं, यहाँ लेटा दो इसे, (बच्चे की नज़ देखता है उसके पेट में हाथ लगा कर देखता औँखें देखता है) अरे चाची इसे तो डाइरिया की शिकायत है इसे तो फौरन ड्रिप देनी होगी, आस पास कोई दवाई की दुकान है क्या?

मंगलू: नहीं बेटा दवाई की दुकान तो यहां से 10–15 कि.मी. पर है। कुछ कर बेटा, मेरे बेटे को बचा ले।

किशन: चाचा, बिना दवा के तो कुछ नहीं हो सकता। ऐसा करो गाड़ी बुक करके इसे नजदीकी प्रार्थमिक स्वास्थ्य केन्द्र में ले जाओ। देर मत करो वरना खतरनाक हो सकता है।

(सब हड्डबड़ाहट में बच्चे को उठाकर चलते हैं, सड़क की तरफ भागते हुए जाते हैं)

**सूत्रधार** – गाड़ी का इंतजाम करने में थोड़ा विलम्ब हो जाता है, बच्चे ने दम तोड़ दिया। बच्चे की माँ की चीख गाँव तक सुनाई देती है। सब बच्चे को लेकर वापस गाँव में आ जाते हैं घर पर मातम का माहौल है किशन भी स्थिति का जायजा लेने



जाता है और देखता है कि बच्चे की माँ बिलख—बिलख कर रो रही है। वह दुखी मन से अपने घर आ जाता है। (किशन का प्रवेश)

**रामी:** रात बहुत हो गयी बेटा। सफर से आया है थक गया होगा, चल सो जा।

**किशन:** माँ वह बच्चा मर गया।

**रामी:** क्या करे बेटा, यहां तो ऐसा होता ही रहता है। तू आराम कर, चल।

(किशन बिस्तर पर लेट जाता है पर उसे नींद नहीं आ रही, करवटें बदलते हुए रात बीत जाती है, सुबह हो गई है। वह उठ कर गुमसुम सा बैठा है)

**रामी:** क्या बात है बेटा रात को नींद नहीं आई क्या।

**किशन:** कुछ नहीं माँ बस ऐसे ही।

**रामी:** कुछ बात नहीं तो इस तरह गुम—सुम सा क्यों है। लगता है रात वाली बात तेरे दिमाग से नहीं गई।

**किशन:** हाँ माँ मेरे डाक्टर बनने के बाद यह पहला मरीज था और मैं उसे भी नहीं बचा सका।

**रामी:** अरे जाने दे बेटा, जानें वाले को कौन रोक सकता है उसके भाग में इतना ही लिखा रहा होगा। तू अपना दिल छोटा न कर, चल हाथ मुँह धो ले मैं चाय लाती हूँ।

**किशन:** माँ मैंने सोचा है कि मैं अपने गाँव में ही एक डिस्पेंसरी खोल लेता हूँ। जिससे आगे ऐसे किस्से नहीं होंगे और मैं आपके पास रहकर आपकी देखभाल भी कर सकूँगा।

**रामी:** बेटा तूने सोचा है तो ठीक ही सोचा होगा पर एक बार अपने पिता से बात कर लेना।

(वह मौका देखकर पिता से बात करता है )

**किशन:** पिता जी मैं सोचता हूँ कि मैं गाँव में एक डिस्पेंसरी खोल लूँ जिससे मैं घर पर ही आपके नजदीक रहूँगा और गाँव के मजबूर लोगों को समय पर इलाज की सुविधा भी मिल जाएगी।

**लच्छ:** बेटा वह सब तो ठीक है पर डिस्पेंसरी खोलने में बहुत पैसा लगेगा।

**किशन:** चिंता मत करो पिताजी, पैसा कुछ खास नहीं लगेगा, पैसा जो लगना था वह आपने मुझे डाक्टर की डिग्री दिलाने में लगा दिया अब जो थोड़ा—बहुत पैसा लगेगा वह मैं ब्लॉक आफिस या बैंक से लोन लेकर लगा लूँगा। आप उसकी चिंता न करें।

**लच्छ:** अरे बाप रे ! लोन ! देख बेटा कर्जे के चक्कर में मत फंसना। मैंने अभी तक किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया और तू डाक्टर होकर कर्जा लेगा, गाँव के लोग क्या सोचेंगे।

**किशन:** गाँव वालों को सोचने दो पिताजी। कौन सा मैं किसी से भी खींच माँग रहा हूँ सरकार से लोन लेकर काम करके डिस्पेंसरी से जो इनकम होगी उससे सरकार को किस्तों से लौटा देंगे। इससे एक तरफ अपने गाँव और अडोस—पडोस के गाँव वालों को सस्ते में इलाज की सुविधा मिल जाएगी और मैं गाँव के मजबूर, दुखी लोगों की मदद करने के साथ अपने घर में रहकर माँ—बाप की सेवा भी करता रहूँगा।

**लच्छ:** ठीक है बेटा, हम ठहरे गाँव के अनपढ़ अंगूठा छाप लोग, तुम पढ़े—लिखे हो, जो करो सोच समझ कर करना।

**किशन:** ठीक है पिताजी, मैं जरा बैंक जाता हूँ।

## दृश्य—15

(बैंक में जाता है और बैंक के मैनेजर से मिलता है)

**किशन:** नमस्कार मैनेजर साहब।

**मैनेजर:** नमस्ते, आप ?

**किशन:** सर मैं किशन इसी गाँव का निवासी हूँ। मैंने एमबीबीएस की डिग्री ली है।

**मैनेजर:** कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

**किशन:** मैं आपके पास एक प्रार्थना लेकर आया था।

**मैनेजर:** हाँ—हाँ, बेझिझक कहिए।

**किशन:** सर, मैंने सोचा है कि मैं अपने इसी गाँव में एक डिस्पेंसरी खोल लूँ। लेकिन एक समस्या है।

**मैनेजर:** यह तो बहुत अच्छा सोचा है लेकिन समस्या क्या है।

**किशन:** समस्या पैसे की है मैनेजर साहब, अगर आप थोड़ा सहयोग कर दें तो मेरहबानी होगी।

**मैनेजर:** कहिए मैं किस तरह आपकी सहायता कर सकता हूँ। आप इतना अच्छा काम कर रहे हैं, मुझे आपकी सहायता करने में खुशी होगी।

**किशन:** अगर आप मुझे इस काम के लिए अपने बैंक से लोन दिला दें तो।

**मैनेजर:** इसमें कोई बड़ी बात नहीं डॉ. किशन, लीजिए यह फार्म भर कर कुछ फार्मलिटीज पूरी कर दीजिए मैं मैन ब्रांच से आपका लोन मंजूर करवा लूँगा।



किशन: बहुत बहुत धन्यवाद मैनेजर साहब, आपने मेरी समस्या एक मिनट में सुलझा दी, धन्यवाद।

(बैंक से लौटते हुए रास्ते में उसे नैना मिल जाती है दोनों साथ –साथ पैदल चल रहे हैं और बातें भी करते हैं।)

किशन: अरे नैना तुम यहाँ, ऐसी उम्मीद नहीं थी मुझे।

नैना: बस आना ही पड़ा। तुम तो यहाँ आकर मुझे बिलकुल भूल गए।

किशन: ऐसी बात नहीं नैना, यह तो सम्भव ही नहीं। जरा अपने घर की समस्याओं से धिर गया था इसलिए।

नैना: फिर आगे की क्या प्लैनिंग है।

किशन: नैना मैंने सोचा है, सोचा क्या बल्कि फैसला कर लिया है कि मैं यहाँ गाँव में एक डिस्पेंसरी खोलूँगा। उसी सिलसिले में बैंक गया था लोन के लिए।

नैना: (हैरत से) क्या? तुम इस गाँव में डिस्पेंसरी खोलोगे?

किशन: हाँ, क्यों अच्छा नहीं है क्या?

नैना: किशन, क्यों इस गाँव में अपना भविष्य बरबाद कर रहे हो, शहर के बड़े हॉस्पिटलों में अपने सीनियर्स के साथ काम करके जो तजुर्बा मिलेगा वह तुम्हें कहां से कहां पहुंचा देगा। इस गाँव में तुम्हें क्या मिलेगा? दो-चार खांसी-जुकाम वाले मरीज। कितना कमा लोगे?

किशन: मैं यहाँ पैसा कमाने के लिए काम नहीं रहा हूँ नैना। मेरे गाँव और आसपास वाले गाँव के कई लोगों को इलाज की सुविधा नहीं है। कोई भी बीमारी हो कोसों दूर जाना पड़ता है। कई तो बेचारे बिना इलाज के ही मर जाते हैं।

नैना: तो क्या हुआ, तुमने गाँव का ठेका ले लिया है क्या।

किशन: बात ठेके की नहीं नैना, मैं इस गाँव में पैदा हुआ, यहाँ की मिट्टी में खेल कर मैं बड़ा हुआ और आज जो भी हूँ इसी मिट्टी की बदौलत हूँ।

नैना: तुमने ठीक से सोच लिया, बाद में पछताओगे तो नहीं?

किशन: हाँ—हाँ, मैंने पक्का इरादा कर लिया है बल्कि मैंने बैंक से लोन भी मंजूर करा लिया है।

नैना: तो तुमने पक्का इरादा कर लिया है।

किशन: हाँ नैना, मैंने पक्का इरादा कर लिया है।

नैना: खैर, जैसी तुम्हारी मर्जी, लेकिन मेरे बारे में कुछ सोचा है।

किशन: तुम्हारे बारे में मतलब?

नैना: तुम्हें याद है, तुमने मेरे साथ क्या—क्या सपने सजाए थे। (नैना ने भारी आवाज में कहा।)

किशन: हाँ हाँ मुझे सब याद है, लेकिन .....

नैना: लेकिन क्या?

किशन: नैना हमारे सपने, यहाँ मेरे गाँव में पूरे नहीं हो सकते हैं क्या?

नैना: क्या? कैसी बाते कर रहे हो तुम, इस गाँव में? तुम क्या चाहते हो कि मैं भी तुम्हारी तरह अपना भविष्य इस गाँव में बरबाद कर दूँ।

किशन: मैं कब कहता हूँ कि तुम भी इसी गाँव में अपना भविष्य बरबाद करो। मैं अपने गाँव को नहीं छोड़ सकता, मैं यहाँ रह कर अपने गाँव के लोगों और माँ—बाप की सेवा करूँगा।

नैना: मेरे बारे में क्या सोचा?

किशन: तुम मेरी तरफ से आजाद हो नैना यदि मेरे साथ देखे सपने सच करने हैं तो मेरे साथ आओ मेरे गाँव में। आगे तुम्हारी मर्जी।

(नैना वहाँ से चली जाती है।)

## दृश्य—16 :

किशन की डिस्पेंसरी का काम पूरा हो गया है। कीड़ू आस-पास कुछ सजावट और बोर्ड वगैरह लगाने का काम कर रहा है। कुर्सी मेज सजा रहा है। उछल कूद कर रहा है।

कीड़ू: आओ डाक्टर सहाब बैठो आपकी कुर्सी तैयार है।

किशन: अरे वाह तुमने तो बड़ा अच्छा सजा दिया।

कीड़ू: अच्छा तो होना ही था, डाक्टर का कमरा है कोई पान का खोखा थोड़े ही खोला।

किशन: चल चल अब ज्यादा मक्खन मत लगा। अच्छा, मैं कल ही शहर जाकर दवा और कुछ जरूरी सामान ले आता हूँ।

(अगले दिन वह डिस्पेंसरी के लिए दवाइयां और जरूरी सामान लेने शहर जाता है। किशन सामान लेकर जाने लगता है अचानक उसे नैना देख लेती है तो वह पीछे से भागकर आती है उसे रोक लेती है।)



किशन: कैसी हो नैना ? क्या कर रही हो ?

नैना: किशन जब से तुम्हारे गाँव से आई हूँ, चैन से नहीं हूँ।

किशन: क्यों क्या बात हुई नैना ?

नैना: किशन मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि तुम इतने समझदार और होनहार डॉक्टर हो, तुमने गाँव में रहकर काम करने का फैसला कैसे कर लिया, कोई तो कारण होगा, क्या मुझे वह कारण नहीं बातओगे ?

किशन: अब तुमने पूछ ही लिया है तो सुनो नैना (अब बताता है।) उस रात बच्चे की मौत से मेरे दिल को पता नहीं क्या हो गया है कि मेरा मन शहर में काम करने का बिलकुल नहीं बन रहा है। बेचारे गाँव वालों को फर्स्टएड तक नहीं मिल पाती। तुम्हीं बताओ ऐसा नजारा देखने के बाद तुम क्या करती।

नैना: (भरी निगाहों से उसकी ओर देख रही है।) मैं तुम्हें एक अच्छा इंसान समझती थी आज तुम्हारे अन्दर के इंसान को देख कर मैं नतमस्तक हूँ। तुम्हारी डिस्पेन्सरी का मुहूर्त कब है ?

किशन: कल ही है। अच्छा मैं चलता हूँ देर हो जाएगी। अभी बहुत तैयारी करनी है।

### दृश्य-17

सुबह किशन, उसकी माँ, पिताजी, भाई, बहन, कीड़ू आदि दुकान पर जाते हैं। दूकान पर सब कुछ बिखरा हुआ है। वहाँ का हाल देखकर दंग रह जाते हैं।

कीड़ू: यह सब करतूत उस प्रधान के बच्चे की होगी।

किशन: किसी को दोष मत दो, कोई बात नहीं।

माँ: कोई बात क्यों नहीं, आज ही तेरी डिस्पेन्सरी का मुहूर्त होना था और आज ही।

किशन: कोई बात नहीं माँ हम आज ही मुहूर्त करेंगे। चलो ....

(नीचे बिखरा हुआ सामान उठता है, सब मिलकर सारे सामान को व्यवस्थित कर के रखते हैं।)

किशन: शुक्र है, दवाइयां और सामान घर पर थे। चलिए पंडित जी आप अपना काम शुरू कीजिए।

(तभी नैना वहाँ आती है)

नैना: बधाई हो किशन !

(नैना की बधाई सुनकर किशन पीछे मुड़ता है और सामने उसे देख कर उसके चहरे पर खुशी आ जाती है, वह कुछ बोल नहीं पाता है)

नैना: अरे भई क्या हुआ मैं हूँ नैना, जानते नहीं।

किशन: नैना, तुम यहां ?

नैना: हाँ मैं यहाँ.. क्यों ?

किशन: नहीं मेरा मतलब तुम !

नैना: हाँ भई हाँ मैं। गाँव में आ गई और अब यहीं रहँगी भी।

किशन: सच नैना, क्या ये सच है मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा ?

नैना: नहीं किशन ये सच है।

(किशन खुश होता है उसकी आँखें खुशी से छलक पड़ी हैं। सभी बड़े खुश हैं और नाच रहे हैं गा रहे हैं तभी सामने से नैना के पिता आते दिखाई देते हैं। किशन आगे बढ़कर उनका अभिवादन करता है।)

नैना: पिता जी आप ?

डॉ.: क्यों बेटी तुम मुझसे पूछती तो क्या मैं मना कर देता ? मैं किशन को अच्छी तरह जानता हूँ।

किशन: डाक्टर साहब मैंने सही निर्णय लिया है ना ?

डॉ.: बहुत खूब डॉ. किशन, मैंने भी अपना बचपन इन्हीं पहाड़ों में गुजारा है। यहाँ की दिक्कत परेशानी मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। चलो हमारे पहाड़ का एक नौजवान तो ऐसा निकला जिसने इन पहाड़ों में रहने वाले अपने लोगों के बारे में सोचा। शाबाश बेटा, मैं तुम्हारे साथ हूँ किसी चीज की जरूरत पड़े तो बेहिचक कहना।

(किशन गदगद होकर उनके पैर छूकर आशीर्वाद लेता है।)

### दृश्य-18

सूत्रधार – प्रधान को यह रास नहीं आ रहा कि जो लोग गाँव में सिर्फ उसी के आगे झुकते थे वे अब डाक्टर साहब की रट लगाए रहते हैं और डॉक्टर को सम्मान देते हैं। प्रधान दो आदमियों को शराब पिलाता है। उसकी डिस्पेन्सरी में तोड़फोड़ करने भेज देता है। शराब पीकर मंगलू नशे में धूत होकर डिस्पेन्सरी में आता है।

मंगलू: और भई डाक्टर हमें भी देख ले, कुछ दवा हमें भी दे दे।

किशन: क्या परेशानी है भाई ? अरे तुमने तो शराब पी रखी है।

मंगलू: शराब पी रखी है तो क्या है, तेरे बाप का क्या जाता है, तू इलाज कर।

किशन: देखों भाई गाली गलोच मत करो, मरीज को देख रहा हूँ मुझे परेशान मत करो।

मंगलू: मेरे बैठने से तुझे परेशानी हो रही है, हैं तो ले .....



(गुरसे में खड़ा होकर वहाँ रखी दवाइयां गिरा कर मेज पलट देता है। बाहर को निकलता है तभी किशन के चाहने वाले मंगलू को मारने दौड़ते हैं पर किशन बीच में आकर उसे बचा लेता है। किशन अपना सामान समेटता है लोग उसकी मदद करते हैं।)

## दृश्य—19

मंगल भाग कर प्रधान के पास जाता है, प्रधान उसे गाँव के जंगल की पगड़ंडी में मिल जाता है। मंगल नशे में लड़खड़ा रहा है।

मंगल: प्रधान जी... प्रधान जी...

प्रधान: अबे प्रधान जी बोलना सीख रहा है क्या ? कुछ बोलेगा भी ?

मंगल: मैंने डॉक्टर की दुकान का सब सामान बिखेर दिया और उसकी मेज भी पलट दी। पर प्रधान जी ये गाँव वाले उसके साथ हो गए और मुझे मारने के लिए आ गए। वो तो किशन ने बचा दिया नहीं तो उन्होंने मुझे मार ही दिया था।

(बोलते बोलते लड़खड़ा जाता है और नीचे खाई में गिरने लगता है। प्रधान उसे बचाने के लिए उसका हाथ पकड़ कर खीचता है उसे ऊपर खींच लेता है पर अपना संतुलन खो देता है और नीचे खाई में गिर जाता है)

मंगल: अरे प्रधान जी आप कहाँ गए। (इधर उधर देखता है। दूर से कीड़ू उन्हें देख रहा था, प्रधान को गिरते हुए देखकर ताली बजाता है)

कीड़ू: बहुत खूब, मिल गया करमों का फल हा...हा...हा....

(वहाँ से भागता हुआ गाँव की ओर जाता है डिस्पेंसरी के पास जाकर सब लोगों से बताता है।)

## दृश्य—20

कीड़ू: अरे सुनो सब लोग सुनो, प्रधान को उसके करमों की सजा मिल गई।

किशन: (खड़ा होकर उसके पास आता है) क्या हुआ कीड़ू, क्या हुआ प्रधान जी को ?

कीड़ू: वहाँ खाई में गिर गया।

किशन: अरे ! कैसे ? चलो

(भागता हुआ उस ओर जाता है पीछे पीछे गाँव वाले भी जाते हैं किशन गाँव वालों की मदद से उसे उठा कर अपनी डिस्पेंसरी में ले आता है और उसकी मरहम पट्टी करता है। प्रधान की पत्नी सरिता आती है और किशन को धन्यवाद देती है।)

सरिता: क्या हुआ इन्हें ?

किशन: चाची, प्रधान जी गिर गए थे। कुछ नहीं जरा बेहोश है और हल्की चोट आई है। ठीक हो जाएंगे।

सरिता: क्षमा कर दे बेटा किशन इन्होंने तुम्हारे साथ इतना बुरा किया और तुम। इनके करमों के लिए मैं माफी मांगती हूँ। इन्हें क्षमा कर दो बेटा।

किशन: अरे आप कैसी बाते कर रही हैं चाची, कोई बात नहीं सब ठीक हो जाएगा।

(इस बीच प्रधान को होश आता है तो किशन को अपनी सेवा करते देख रहा है। गाँव वाले सब इकट्ठा हो गए हैं)

प्रधान: बेटा क्यों मेरी जान बचाई मर जाने देता मुझे। मैंने तुझे इतना परेशान किया।

किशन: नहीं प्रधान जी आप हमारे बड़े हैं। मैंने जो किया एक डॉक्टर होने के नाते वह मेरा फर्ज था। आप चिन्ता न करें एक दो दिन में ठीक हो जाएंगे।

प्रधान: बेटा तुमने डाक्टर होकर एक डाक्टर का फर्ज निभाया। लेकिन मैं पिछले कई सालों से इस गाँव का प्रधान हूँ, मैं अपना कोई फर्ज ना निभा पाया? मुझे माफ दे किशन बेटा।

किशन: अरे नहीं प्रधान जी ऐसी कोई बात नहीं सब ठीक होगा।

प्रधान: भगवान् तुम जैसा बेटा उत्तराखण्ड के हर गाँव को दे। यहीं मेरा आशीर्वाद है। मुझे माफ कर दे किशन बेटा, मुझे माफ कर दे।

किशन: अरे प्रधान जी आप कैसी बाते कर रहे हैं, हम तो आपके बच्चे की तरह हैं और मैंने आप पर कोई अहसान नहीं किया मैं एक डाक्टर हूँ और डाक्टर को जो करना चाहिए मैंने वहीं किया।

प्रधान: तू डाक्टर है और तूने डाक्टर को जो करना चाहिए था वह किया पर मैं इस गाँव का प्रधान हूँ, किन्तु अपना कोई फर्ज नहीं निभा पाया, धिकार है मुझ पर।

किशन: सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते। अब आप अपना गाँव सभालें, गाँव की बीमारी मैं सम्भलता हूँ फिर देखों हमारा गाँव कितना खुशहाल हो जाएगा।

प्रधान: ठीक है किशन बेटा मैं कसम खाता हूँ। गाँव में कोई भी परेशानी हो या किसी किस्म की जरूरत पड़े तो बेहिचक मुझे याद कर लेना, ठीक है किशन बेटा ! सुनो सब गाँव वाले आज से मेरे गाँव में ना कोई शराब पिएगा और ना बेचेगा,

(सभी गाँव वाले खुश होते हैं, प्रधान और किशन की जय बोलते हैं और सब नाचते गाते हैं।)



# भारतीय मूल की प्रकृति प्रदत्त अग्नि-तत्त्व गुण प्रधान वनस्पति-अरणि-अग्निमंथः

श्री बाबूलाल शर्मा  
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

‘ईशावास्यमिदं सर्वयत्किंच जगत्यां जगतः’ ॥ (यजुर्वेद ४० ।२)

ईश्वर का बनाया हुआ यह चराचर जगत है और इसमें सर्वत्र कण—कण में इसी का वास अर्थात् उसी की सत्ता व्याप्त है ॥ उपनिषद् ऋषि के अनुसार :

‘यो देवऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमा विवेश ।  
यो औषधिषु यो वनस्पतिषु, तस्मै देवाय नमो नमः’ ॥  
(श्वेता.उप. ३ ।३)

अर्थात् जो ईश्वर अग्नि, जल, वायु एवं समस्त विश्व के भूतों भुवनों पदार्थों, औषधियों वनस्पतियों आदि तक में जिसकी सत्ता व्याप्त है, उस पर—ब्रह्म—परमात्म देव को नमस्कार है जो समस्त जगत का आत्मा व प्रकाशक है ।

उसने ही सर्वप्रथम अपनी ईक्षण शक्ति व प्रेरणा से जीव सृष्टि रचना से पूर्व ‘स्थावर सृष्टि’, जिसके अन्तर्गतः (जड़—जंगम) पर्वत, समुद्र, झीलें, सरोवर, नदियां आदि तथा वन, उपवन, वृक्ष, पौधे लतायें, झाड़ी, झुण्ड, गुल्म, उनमें उगने वाले पत्र, पुष्प, फलादि, भूमि से फूट कर निकलने वाली जीवन रक्षक औषध जड़ी बूटियां कन्द मूल और भूमि पर उगने वाले घासपात, तृणादि विभिन्न प्रकार के वनस्पतिक औषध गुण युक्त समस्त जीव जगत के निर्वहन भरण पोषण उनकी आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुये रचना की जिससे समस्त प्राणी समुदाय सुखपुर्वक जी सकें ।

शास्त्रों में ऐसा कहा जाता है कि स्थावर सृष्टि वनस्पति जगत में प्रकृति प्रदत्त सर्वप्रथम उन वनस्पति वृक्षों आदि का पृथ्वी पर जन्म हुआ (अर्थात् उत्पत्ति), जिनमें ‘अग्नि—तत्त्व गुण’ विशेष रूप से प्रधान थे । अग्नि की प्रतिभा तथा इसकी ओजस्विता इसमें विशेषतम माने गये हैं ।

बताते चलें पुरातन काल में जब मानव को अग्नि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं था, तब उस काल में पत्थर से पत्थर को रगड़ते हुये तोड़ते हुये, उससे उत्पन्न हुई चिनगारी से रुई कपास लेकर सूखी घासपात एकत्र कर जलाते हुये अपने खाना बनाने हेतु तथा तापन व प्रकाशव अन्यादि कार्यों में सूखी काष्ठ का प्रयोग किया करते थे । शास्त्रों में स्पष्ट यह भी कहा गया है कि सृष्टि की रचना, उत्पत्ति कार्य प्रजापति ब्रह्मा ने “यज्ञ” के द्वारा ही की है । ‘यज्ञ’ देवताओं की तुष्टि के लिए तथा समस्त प्राणी समुदायों के हेतु सुखदायक, कल्याणप्रद तथा प्रकृति प्रदत्त शुद्ध स्वच्छ वातावरण को

पर्यावरण की दृष्टिकोण से संतुलित बनाये रखना एक श्रेष्ठतम कर्म मानव के लिये आवश्यक बताते हुये, स्पष्ट शास्त्रों में निर्देश भी दिया गया है कि प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ न करने, अतिक्रमण, दोहनादि के दुष्प्रभाव से, कृपित होकर, अहितकर हो जाती है ।

काष्ठ में अग्नि छिपी हुई है प्रयोग कर जलाकर देख लीजिये, अतः ‘यज्ञ’ में इसका अति विशिष्ट महत्व परम्परागत चला आ रहा है, क्योंकि ‘यज्ञ’, सूखी समिधा (काष्ठ) के अभाव में सम्पन्न नहीं हो सकता । अतः यज्ञ कार्य हुआ, और काष्ठ कारण हुआ ॥

शास्त्रोक्त श्रुति भी स्पष्ट कहती हुई प्रमाणित करती है :

‘तिलैषु तैलम दधनीव सर्पिसवः स्त्रोत स्वरणीषु चाग्निः ।

एनामात्मा आत्मनि गृहयतैङ् सौ सत्यनैनं तपसा यो अनपश्यति’ ॥

अर्थात् जिस प्रकार तिलों में तेल, दधी (दही) में धी, स्रोतों में जल और अरणियों (काष्ठों) में “अग्नि” छिपी रहती है (प्रयोग मंथन कर देख लीजिये) इसी प्रकार, वह ईश्वर भी सब प्राणी—अप्राणी जड़—चेतन जगत में छिपा हुआ (प्राणी समुदाय के हृदय में) चेतन आत्मा प्रकाशक तथा अप्राणी (जड़—जंगम) में सत्ता के रूप में विद्यामन (व्याप्त) है । शास्त्रों में इसीकारण ‘अग्नि’ को विशिष्ट गुण तैजस, प्रकाशक युक्त होने के कारण उर्ध्व गति मान होने से, ईश्वर का रूप प्रतिनिधि मानते हुये, सर्वप्रथम सबका प्रकाशक (जगत का), बहुत महत्व दिया गया है और इसीलिये ऐसा कहा भी गया है :

“ऊँ अयन्त इष्म आत्मा जातवेदस्तेन इष्म स्वच वर्धस्व इद्द्य वर्धय” ॥

(आश्वलयन गृहा सूत्र— १ ।१० ।११)

हे अग्नि देव । आप प्रदिप्त हो और हमें भी प्रदिप्त करो । जो गुण आप में हैं, उन्हें हम धारण करें । इस वेद मत्र में ‘अग्नि’ को ईश्वर की ‘संज्ञा’ दी गई है तथा ऐसी मर्मस्पर्शी प्रार्थना वैदिक ऋषियों ने यज्ञायोजन करते समय प्रजापति ब्रह्मायज्ञ के प्रमुख देवता (पुरोहित) से सर्वकल्याण हेतु की गई है ।

“ऊँ अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारम रत्न धात्मस्” ॥

(ऋग्वेद १ ।१० ।११)



इस मंत्र में अग्नि देव को पुरोहित (ईश्वर) यज्ञ का ईश्वर बनाते हुये ऋषि स्तुति करते हैं कि आप यज्ञ के देवता, देवताओं के आह्यता हैं और श्रेष्ठतम रत्नों के खान हैं वे हमें श्रेष्ठतम रत्नों को प्रदान करें।

बताते चलें अग्नि का विशिष्ट गुण तैजस, प्रकाश, उष्णता है। अतः मनुष्य में जीवन को सार्थक, सफल बनाने हेतु तेजिस्वता, हृदय में स्वच्छता, पवित्रता, वाणी में सत्यता मधुरता होनी चाहिये, इनके अभाव में जीवन नीरस ही रहेगा उन्नतशील एवं सार्थक नहीं हो सकेगा। 'अग्नि' जहाँ—जहाँ प्रज्वलित होती है वहाँ—वहाँ उसका प्रकाश फैलता चला जाता है और अन्धकार दूर होता जाता है। अग्नि सदैव उर्ध्वगामी ऊपर की ओर चलने वाली, प्रकाश करते जाने वाली होती है।

अतः 'अग्नि' की ही सर्वप्रथम पूजा, यज्ञादि अनुष्ठान में देव पूजन धूप—दीप प्रज्वलित करते समय तथा अन्नादि पकाने उपरान्त अन्नादि भाग अग्नि को अपर्ण या आहुति के रूप में प्रदान करने की परम्परा पुरातनकाल से भारतीय संस्कृति में चली आ रही है।

शास्त्र में व्यवहार में काम में आने वाली 'अग्नि' के पांच रूप होते हैं जो इस प्रकार हैं (१) ब्राह्म (२) प्राजापत्य (३) ग्राहस्थय (४) दक्षिणाग्नि (५) क्रव्यदाग्नि।

ब्राह्म अग्नि यज्ञ में 'अरणी मंथन' से मन्त्र द्वारा प्रकट होते हैं, ये 'आहवनीय' 'अग्नि' हैं॥

(साभार—हिन्दु संस्कृति अंक – ५११)

'अग्नि' का कार्य है प्रकाश करना और अन्धकार को दूर करना। प्रकाश—ज्ञान है और अन्धकार—अज्ञान है। (१) इसलिए उपनिषद की प्रार्थना में भी ईश्वर से ऋषिजन कहते हैं— "तमसो मा ज्योतिर्गमय" (२) हे अग्नि प्रकाश स्वरूप परमेश्वर अज्ञान को दूर कर हमें प्रकाश की ओर ले चलो। अर्थात् ज्ञान मार्ग की ओर चलो, यानी अन्तः स्थल में ज्ञान का प्रकाश कराओ।

श्रीमद्भगवत् गीता में यह कहते हुये योगीराज श्रीकृष्ण ने 'अग्नि' को ही उसके विशिष्ट गुण सम्पन्न होने से ही महत्ता दी है: — 'ज्ञानाग्नि सर्वकर्मणिभष्मसात्कुरुते तथा'॥। (गीता ४।३६) जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को सर्वथा भष्म कर देती है ऐसे ही ज्ञान रूपी अग्नि भी (अन्तः स्थल में) प्रज्वलित हो जाने पर समस्त प्रकार के संचितमलीन संस्कारों, वासनाओं इच्छाओं, कार्मिक मलों दोषों आदि को भष्म कर देती है और तदुपरान्त जीवात्मा सब प्रकार के कष्टों दुखों आदि से मुक्त हो जाता है। अतः अपने अन्तः हृदय को स्वच्छ करते हुए ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो।

'अग्नि तत्त्व', उसका महत्व तथा विशिष्ट गुण क्या है? संक्षेप में एक परिचय के रूप में समझाने हेतु लेखक का एक प्रयास मात्र है।

भारतीय मूल का 'अग्नि तत्त्व' विशिष्ट एवं औषध गुण युक्त वनस्पति वृक्ष—'अरणी' जिसे पुरातन काल में संस्कृत में अग्नि-मंथा के नाम से जाना जाता है तथा प्राचीन सदग्रन्थों में भी जिसका उल्लेख मिलता है, यह लेख विषय सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों व नवीन जानकारियों सहित प्रस्तुत है।

"अरणि" (अग्नि मंथा) एक सामान्य परिचय : यह एक बड़ी झाड़ी—नुमा अथवा छोटा वृक्ष प्रायः उत्तर भारत गंगा के मैदानों उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उडीसा, दक्षिण भारत) तक में भी पाया जाता है।

वृक्ष के भाषायी भेद से नाम : संस्कृत—अग्निमंथ, अग्निमंथः, अग्निमंथनीः, हिन्दी, गुजराती, मराठी—अरणि, तामिल में तरकरी।

भाव प्रकाश निघण्टु में इस वनस्पति वृक्ष के विषय में ऐसा कहा गया है :

**'अग्नि मन्थो जयः सस्यात् श्री पर्णी गणिकारिका ।**

**जया जयन्ती तर्करीनादेयी वैजयन्तिका:''' ॥**

(नाम— अग्निमंथ : जय, श्रीपर्णी गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्करी, नादेयी, वैजयन्तिका, ये अरणी के संस्कृत—नाम हैं)।

भाषा भेद से नाम भेद : हिन्दी—अरनी, अरणी, गर्नयारी, अगेथ; बंगाली—गार्णर, आगगन्त; मराठी—थोर, अरेण; गुजराती—अरणी कन्नड—नरुबल; तैलगु—नेलीचेट।

**अरणी के औषध गुण :** अरणी उष्णर्वीय, चरपरी, कडुवी कसैली, मधुर, अग्निवर्द्धक और सूचन कफ़, बात तथा पाण्डु रोग हरने वाली है।

**अरणी वनस्पति वृक्ष का लैटिन नाम :** क्लेरोडेण्ड्रोन फ्लामोइडिस (*Clerodendron phlomoides*) है। अरणी सर्वज्ञात वृक्ष है तथा भारत में प्रायः सर्वत्र पैदा होता है। इसके पेड़ काफी ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते किंचित् नुकीले और कोमल होते हैं। पुष्प सफेद होते हैं इसमें से बहुत गन्ध निकला करती है। बसन्त ऋतु में इन पर पुष्प लगते हैं आते हैं। पत्तों से भी एक सुन्दर मोहक गन्ध आती है। डालियां नीचे झुकी रहती हैं। इसकी लकड़ी में पीलापन अधिक पाया जाता है। इसकी दो लकड़ियों को परस्पर रगड़ने से आग निकलती है, अतः इसका नाम 'अग्नि मंथः' है। यह (वनस्पति) दशमूल की प्रधान औषधि है। गर्भी को देना इसका खास लक्षण है। यदि इसका अर्क जीर्णज्वर में दिया जाय, तो तापक्रम बढ़ जाया करता है। (साभार—भाव प्रकाश निघण्टु)।

**अरणी वनस्पति वृक्ष :** वैज्ञानिक वनस्पतिक नाम, कुल : क्लेरोडेण्ड्रोन फ्लामोइडिस लिन॥। (*Clerodendron phlomoides* Linn-Family-Verbenaceae) वनस्पति विषय सम्बन्धित विद्वजनों ने अरणी (*C. phlomoides* Linn) वनस्पति



के गुण लक्षण, इसी कुल की प्रजाति—प्रेमना मुकरोनाटा (*Premna mucronata Roxb.*) से समान रूप से मिलते जुलते होने तथा इसे भी—‘अग्निमंथ’ की ही वैरायटी (Variety) अग्निमंथः नाम होने से भी, व्यवहार किया गया है। दोनों की लकड़ियों को अलग—अलग परस्पर रगड़ने से “अग्नि” भी उत्पन्न होती है तथा उष्णता उत्पन्न करना दोनों का कार्य है। अतः इसी कारण इन दोनों को ‘अग्निमंथ’ के नाम से शास्त्रों में जाना व पुकारा जाता है। दोनों की काष्ठ भी, पीले रंग की होती है, उनमें पीलापन होता है।

प्रसिद्ध विश्वविख्यात वृक्ष काष्ठ वैज्ञानिक जे. एस. गैम्बल—ए मैनुअल ऑफ इन्डियन टिम्बरस—१६२२ में—*Premna mucronata Roxb.* के विषय में लिखते हैं : Bark-light-dark or reddish grey. Wood hard a good fuel, used for lighting fires by friction. Vern:- Agniun (ag, fire). A small tree. Sub-Himalayan tract and other outer ranges extending north west as far as Chenab and ascending to 3500ft.

बताते चलें शास्त्रों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि यज्ञ प्रेमी लोग—‘अरणी मंथन’, सूर्यकान्तमणि आदि के द्वारा ‘अग्नि’ प्रज्ज्वलित किया करते थे। हिन्दु सांस्कृतिक सदग्रन्थों वेद, पुराण, वात्मीक रामायण, महाभागर, रामचरित्रमानस एवं आयुर्वेद ग्रन्थों में ‘अरणी’, अग्निमंथः के विशिष्ट गुण सम्पन्न होने से उसके प्राचीन वनस्पति होने का उल्लेख प्रमाण रूप में मिलता है।

इस सुगान्धित अरणी वनस्पति मूल का क्वाथ (काढ़ा) ग्राही होने से पौष्टिक, के रूप में विकल्प है। इसके पत्र, मूल और छाल औषध रूप में लाये जाते हैं। यह एक प्रसिद्ध भारतीय मूल की “दशमूलारिष्ट” आयुर्वेद औषध है। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता में भी इसका उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत लेख में विषय सम्बन्धित दी गई जानकारी प्रमाणित सदग्रन्थों से लोकहित में ज्ञान कराने हेतु आंशिक संकलन है।

साभार — चयनित प्रमाणित भारतीय संदर्भग्रन्थ संदर्भसूची

- (1) यजुर्वेद ऋचा ४० ।२, ईश्वास्योपनिषद्
- (2) श्वेताश्वर उपनिषद् ३ ।३
- (3) वनस्पति से दीर्घ आयु
- (4) आश्वलयन गृह्य सूत्र १ ।१० ।११
- (5) श्रीमद्भगवद् गीता — ४ ।३७
- (6) फलोरा नार्थ वेस्ट एण्ड सैन्ट्रल इन्डिया, डी. ग्रान्डिस १६२२
- (7) भाव प्रकाश निघण्टु
- (8) ए मैनुअल आफ इन्डियन टिम्बरस, जे. एस. गैम्बल—१६२२
- (9) यज्ञ का विज्ञान—आचार्य श्रीराम शर्मा (९०) हिन्दु संस्कृति अंक—५११—कल्याण
- (10) हिन्दु संस्कृति अंक—५११—कल्याण



## लेखक परिचय

### भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् देहरादून

नाम एवं पता	नाम एवं पता
<b>डॉ. अश्विनी कुमार</b> महानिदेशक  	<b>श्री शैवाल दासगुप्ता</b> उप महानिदेशक विस्तार निदेशालय  
<b>श्री विवेक खाण्डेकर</b> सहायक महानिदेशक (प्रशासन) प्रशासन निदेशालय  	<b>श्रीमती नीना खंडेकर</b> सहायक महानिदेशक मीडिया एवं विस्तार प्रभाग विस्तार निदेशालय  
<b>श्री सुधीर कुमार</b> वैज्ञानिक – एफ पर्यावरण प्रबन्धन प्रभाग  	<b>श्री विजयराज सिंह रावत</b> वैज्ञानिक – ई वन एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग  
<b>डॉ. सतीश शर्मा</b> वैज्ञानिक – सी शिक्षा निदेशालय  	<b>डॉ. ओम कुमार</b> वैज्ञानिक – सी पर्यावरण प्रबन्धन प्रभाग  
<b>डॉ. विश्वजीत कुमार</b> वैज्ञानिक – सी पर्यावरण प्रबन्धन प्रभाग  	<b>डॉ. आर. एस. रावत</b> वैज्ञानिक – सी वन एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग  
<b>श्री अनूप सिंह चौहान</b> अनुसन्धान अधिकारी वन सांख्यिकी प्रभाग  	<b>श्रीमती अर्चना जोशी</b> निजी सचिव विस्तार निदेशालय  
<b>श्री छत्रपाल सिंह सैनी</b> सहायक आहरण एवं संवितरण अधिकारी कार्यालय प्रशासन निदेशालय  	<b>श्रीमती कला नैथानी</b> डाटा एंट्री ऑपरेटर, क्रय अनुभाग प्रशासन निदेशालय  



## भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा पदिष्ठद देहरादून

नाम एवं पता	नाम एवं पता
<p><b>सुश्री अंशु गर्ग</b> कम्प्यूटर ऑपरेटर मीडिया एवं विस्तार प्रभाग विस्तार निदेशालय</p> 	<p><b>श्री केशव सिंह मन्द्रवाल</b> संविदा कर्मी प्रशासन निदेशालय</p> 
<p><b>कुमारी रूपेन्द्रिका</b> संविदा कर्मी सूचना का अधिकार कार्यालय</p> 	<p><b>कुमारी अंजिपा</b> संविदा कर्मी पंचायत तथा मानव आयाम</p> 
<p><b>श्री प्रताप सिंह बिष्ट (से.नि.)</b> लेखा नियन्त्रक</p> 	

## वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

<p><b>श्रीमती जयश्री आरडे</b> डीन, वन अनुसन्धान संस्थान सम-विश्वविद्यालय</p> 	<p><b>डॉ. लक्ष्मी रावत</b> प्रमुख तथा वैज्ञानिक – एफ पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण प्रभाग</p> 
<p><b>श्री वी. के. वार्ष्णेय</b> वैज्ञानिक – ई रसायन प्रभाग</p> 	<p><b>डॉ. एम. के. गुप्ता</b> वैज्ञानिक – ई वन मृदा एवं भूमि सुधार प्रभाग</p> 
<p><b>डॉ. पारुल भट्ट कोटियाल</b> वैज्ञानिक – डी वन मृदा एवं भूमि सुधार प्रभाग</p> 	<p><b>डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल</b> वैज्ञानिक – सी वनस्पति विज्ञान प्रभाग</p> 
<p><b>डॉ. रामबीर सिंह</b> वैज्ञानिक – सी विस्तार प्रभाग</p> 	<p><b>श्री नीलेश यादव</b> वैज्ञानिक – सी वन सूचना विज्ञान प्रभाग</p> 



वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

नाम एवं पता

डॉ. के. पी. सिंह  
वैज्ञानिक – सी  
वन कीट विज्ञान प्रभाग



नाम एवं पता

डॉ. चरन सिंह  
वैज्ञानिक – बी  
विस्तार प्रभाग



श्री महेन्द्र सिंह  
अनुसन्धान अधिकारी  
वनस्पति प्रभाग



श्री वी. के. धवन  
अनुसन्धान अधिकारी  
वन संवर्धन प्रभाग



श्री नवनीत गुप्ता  
मुख्य लिपिक  
वनोपज प्रभाग



श्री रमेश सिंह  
उच्च श्रेणी लिपिक  
हिन्दी अनुभाग



सुश्री ज्योति काण्डपाल  
क्षेत्र सहायक  
पादप शरीर विज्ञान प्रभाग



सुश्री सुधा पाण्डेय  
(धर्म पत्नी श्री वी. पी. पाण्डेय)  
सामाजिक वानिकी एवं  
पारि-पुनर्स्थापन केन्द्र, इलाहाबाद



सुश्री हिमानी पाण्डे  
अनुसन्धान अध्येता  
रसायन प्रभाग



श्री लुत्फुलहक खान  
अनुसन्धान अध्येता  
रसायन प्रभाग



श्री प्रशांत शर्मा  
संविदा कर्मी  
काष्ठ संशोषण शाखा  
वनोपज प्रभाग



श्री बाबूलाल शर्मा  
अनुसन्धान अधिकारी (सेवा निवृत)  
काष्ठ शरीर शाखा

वन उत्पादकता संस्थान, रांची

डॉ. ए. के. पाण्डेय  
वैज्ञानिक – एफ



डॉ. संजय सिंह  
वैज्ञानिक – ई एवं प्रमुख  
वन कार्यकी एवं आणविक  
जीवविज्ञान प्रभाग



डॉ. शरद तिवारी  
वैज्ञानिक – ई



श्री पंकज सिंह  
अनुसन्धान अधिकारी – प्रथम  
वानस्पतिक एवं अकाष्ठ वन उत्पाद





**वन उत्पादकता संस्थान, रांची**

नाम एवं पता	नाम एवं पता
<b>श्री रवि शंकर प्रसाद</b> अनुसन्धान अधिकारी – द्वितीय वन कार्यकी एवं आणविक जीवविज्ञान प्रभाग	<b>श्री रविन्द्र राज लाल</b> अनुसन्धान सहायक – प्रथम
<b>श्री महेश कुमार चंचल</b> अनुसन्धान सहायक – प्रथम (सा.)	<b>श्री एस. एन. वैद्य</b> अनुसन्धान सहायक – प्रथम विस्तार प्रभाग
<b>श्री आशुतोष कुमार पाण्डे</b> सहायक	<b>श्री बसंत कुमार</b> तकनीकी सहायक (सी)
<b>सुश्री कंचन कुमारी</b> वरिष्ठ अनुसन्धान अध्येता वन कार्यकी एवं आणविक जीवविज्ञान प्रभाग	<b>श्री हरि शंकर लाल</b> कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता वन कार्यकी एवं आणविक जीवविज्ञान प्रभाग
<b>सुश्री अमृता सिन्हा</b> कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता वन कार्यकी एवं आणविक जीवविज्ञान प्रभाग	<b>श्री अजय कुमार</b> परियोजना सहायक आनुवंशिकी, जैवप्रौद्योगिकी एवं वृक्ष सुरक्षा प्रभाग
<b>कुमारी प्रिया</b> क्षेत्र सहायक वन कार्यकी एवं आणविक जीवविज्ञान प्रभाग	<b>श्री प्रवीण कुमार नाग</b> क्षेत्र सहायक

**काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर**

<b>डॉ. एस. के. शर्मा</b> वैज्ञानिक – जी एवं राजभाषा अधिकारी	<b>डॉ. शक्ति सिंह चौहान</b> काष्ठ क्रिया प्रभाग
---	--



## शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

नाम एवं पता

डॉ. डी. के. मिश्रा  
वैज्ञानिक – एफ  
वन संवर्धन प्रभाग



नाम एवं पता

श्री एस. आर. बालोच  
वैज्ञानिक – बी  
वन पारिस्थितिकी प्रभाग



श्री कैलाश चंद गुप्ता  
हिन्द अधिकारी



डॉ. एन. के. बोहरा  
अनुसन्धान अधिकारी  
वन संवर्धन प्रभाग



डॉ. मीता शर्मा  
अनुसन्धान अधिकारी  
वन संरक्षण प्रभाग



श्रीमती अनुराधा भाटी  
पुस्तकालयाध्यक्षा



श्री प्रेमसिंह सांखला  
अनुसन्धान सहायक – द्वितीय



सुश्री नूपुर शर्मा  
कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता  
वन संरक्षण प्रभाग



डॉ. अशोक गाड़ी  
कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता



श्री कैलाश चौधरी  
अनुसन्धान सहायक



श्री के. एस. परमार  
आशुलिपिक



डॉ. हेमलता  
सहायक



## उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

डॉ. एन. रायचौधरी  
प्रभागाध्यक्ष  
वन कीट प्रभाग



डॉ. नितिन कुलकर्णी  
प्रभागाध्यक्ष  
वन विस्तार प्रभाग





## तरुचिंतन 2014

### उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

नाम एवं पता	नाम एवं पता
<p>डॉ. पी. बी. मेश्राम वैज्ञानिक – एफ तथा प्रमुख जैवविविधता तथा सतत प्रबन्धन प्रभाग</p> 	<p>डॉ. राजीव राय वैज्ञानिक – ई वन विस्तार प्रभाग</p> 
<p>श्रीमती नीलू सिंह वैज्ञानिक – ई तथा प्रमुख</p> 	<p>डॉ. ननीता बेरी वैज्ञानिक – डी</p> 
<p>डॉ. ममता पुरोहित अनुसन्धान अधिकारी वन विस्तार प्रभाग</p> 	<p>श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव पुस्तकालय सूचना सहायक पुस्तकालय</p> 
<p>डॉ. राजेश कुमार मिश्रा अनुसन्धान सहायक – प्रथम सूचना एवं प्रौद्योगिकी अनुभाग</p> 	<p>श्री संजय पौनीकर अनुसन्धान सहायक – प्रथम वन कीट प्रभाग</p> 
<p>श्री आनन्द दास</p> 	

### हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला

<p>डॉ. वनीत जिष्टू वैज्ञानिक – सी गैर-प्रकाष्ठ वन उत्पादक प्रभाग</p> 	<p>श्री दिनेश धीमान आशुलिपिक (ग्रेड – प्रथम)</p> 
<p>श्री जोगिन्द्र सिंह चौहान आशुलिपिक (ग्रेड – प्रथम)</p> 	<p>श्री धर्म देव वरिष्ठ अनुसन्धान अध्येता गैर-प्रकाष्ठ वन उत्पादक प्रभाग</p> 



वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

नाम एवं पता

श्री विजय प्रधान  
उपवन संरक्षक  
झूम खेती प्रभाग



नाम एवं पता

श्री पवन कौशिक  
वैज्ञानिक – डी  
झूम खेती प्रभाग



डॉ. एस. सी. विश्वास  
वैज्ञानिक – बी



श्री संदीप यादव  
वैज्ञानिक – बी



श्री हंस राज शर्मा  
वैज्ञानिक – बी



डॉ. कृष्ण गिरी  
वैज्ञानिक – बी  
झूम खेती प्रभाग



डॉ. पापोरी फुकन बोरपुजारी  
अनुसन्धान अधिकारी



डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा  
अनुसन्धान अधिकारी  
झूम खेती प्रभाग



डॉ. प्रशांत हजारिका  
अनुसन्धान सहायक – प्रथम



श्री अरबिन्द डेका  
तकनीकी सहायक



श्री शंकर शर्मा  
हिन्दी अनुवादक



सुश्री प्रणामी बरुवा  
कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता



श्रीमती मंजु दास



अतिथि

श्री विजय जड़धारी  
बीज बचाओ आन्दोलन  
नगणी, टिहरी गढ़वाल





# आग जलनी चाहिए

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए  
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए  
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,  
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए  
हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में  
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए  
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,  
सारी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए  
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही  
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

- दुष्यंत कुमार





प्रकाशक

## मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

डाकघर - न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248 006

भारत